हिन्दी-साहित्य में सरस्वती पत्रिका का योगदान

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय को डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोधप्रबन्ध

•

प्रस्तुतकर्त्री

अंजू चतुर्वेदी, एम्० ए०

निर्देशक

डॉ० रुद्र देव तिवारी

प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

जनवरी १९८४ ई०

भूमिका

आज इस शोधप्रबन्ध की भूमिका लिखने के सन्दर्भ में अतीत की अनेक स्मृतियां मन में कौंध रही हैं । हिन्दी और संस्कृत वाङ्•गमय के प्रति नैसर्गिक अभिरुचि होने के कारण स्नातक कक्षाओं में इन विषयों का अध्ययन किया था । इस अवधि में जहाँ एक ओर इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के श्रेष्ठ गुरुजनों की छत्रछाया में, उनकी गुरु-गम्भीर-ज्ञानराशि से मन की जिज्ञासायें शान्त हुई थीं, वहीं एम० ए० कक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर शोधकार्य करने की बलवती इच्छा भी उत्पन्न हुई थी ।

मैंने प्रारम्भ से ही हिन्दी एवं संस्कृत को अभिन्न वाङ्•गमय समझा । मेरे परिवार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इन दोनों ही भाषाओं के प्रति एक गहन अनुराग प्रारम्भ से ही रहा है । पूज्यबालपितृ चरण श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी (भूतपूर्व न्यायाधीश उच्च न्यायालय एवं मेम्बर ला कमीशन) पाश्चात्य धर्म-दर्शन एवं भाषा के मर्मज्ञ होने के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति की विरासत बनने वाली इन भाषाओं के भी अनन्य उपासक हैं । आज अन्त:करण से इस सच्चाई का अनुभव करती हूं कि साहित्य के प्रति इस प्रगाढ़ अभिरुचि के मूल में उन्हीं का व्यक्तित्व और उन्हीं का आशीर्वाद काम कर रहा था ।

हिन्दी साहित्य में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर श्रद्धेय गुरुवर डा० रुद्रदेव तिवारी जी के स्नेह-सौजन्य निर्देशन में प्रस्तुत शोध-कार्य मैंने प्रारम्भ किया । प्रस्तुत विषय पर शोध करने का भी एक मनोरंजक कारण है । साहित्य-व्यसनी परिवार होने के कारण ड्राइंगरूप अनेक भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं से भरा रहता था, फलत: उन पत्रिकाओं से सहज अनुराग होना भी स्वाभाविक था । शोध-कार्य के सन्दर्भ में मेरी इसी साहित्य

लिप्सा ने मुझे विषय के चयन में बड़ा सहयोग दिया और अपना मनोनुकूल शोध-विषय पाकर सचमुच मुझे अपार सुखानुभूति हुई ।

लक्ष्य प्राप्त करने के अनन्तर भौतिक मानदण्ड की दृष्टि से पथ-शूलों का महत्त्व नहीं रह जाता, परन्तु पथशूलों का स्मरण ही तो साहित्य होता है । आज हिन्दी वाङ्मय में संस्मरण, रिपोर्ताज और डायरी के नाम पर जो भी साहित्य-सर्जना हो रही है वह एक प्रकार से पथशूल का स्मरण ही तो है । इस शोध-कार्य की अवधि में ऐसे ही अनेक भूले-बिसरे चित्र स्मरण आ रहे हैं । प्रयाग के इंडियन प्रेस से प्रकाशित होने वाली तथा हिन्दी गद्य-गंगा के भगीरथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा चिरकाल तक सम्पादित सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी वाङ्मय के विकास में एक सारस्वत-क्रान्ति का सूत्रपात किया था । दुर्भाग्यवश आज उसका प्रकाशन समाप्त हो गया है । उसके आजीवन प्रकाशित समस्त अंक भी दुष्प्राप्य हो चले हैं । ऐसी स्थिति में उस पत्रिका के योगदान पर शोध करने की मेरी सम्भावित कठिनाइयों का सहज ही अनुमान किया जा सकता है । पत्रिका के अनेक महत्वपूर्ण विशेषांकों के अन्वेषण में लखनऊ, बनारस आदि अनेक नगरों की यात्रा करनी पड़ी, पत्रिका को संरक्षण एवं आकार देने वाले अनेक मनस्वी साहित्यकारों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा, परन्तु आज शोध-प्रबन्ध परीक्षणार्थ प्रस्तुत करते समय वे सारी कठिनाइयां ही मेरे लिए वरदान बन गई हैं । गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा था -- 'अति आतप व्याकुल जो होइ,

तरु छाया जानइ सुख सोइ ।'

इस शोधप्रबन्ध की प्रस्तुति में सर्वाधिक सहयोग मुझे अपने पूज्य गुरुवर डा० रुद्रदेव तिवारी जी से प्राप्त हुआ । अपनी अनवरत व्यस्तता के होते हुए भी शोधप्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं के समाधान तथा निर्देशन में उनका सहर्ष सहयोग ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की आधारपीठिका रही । यद्यपि

उनके प्रति आभार प्रकट करना यह मेरी धृष्टता होगी किन्तु फिर भी ये पंक्तियाँ कृतज्ञता ज्ञापन करने की भावप्रवण मात्र कुछ पंक्तियाँ ही नहीं, अपितु ये उनके प्रति समर्पित मेरे कुछ श्रद्धासुमन हैं ।

पूर्णनिश्चिन्तता के साथ शोधप्रबन्ध के समापन में मेरे परिवार के सदस्यों ने जो मुझे सहयोग दिया उसके लिए मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं तथा विशेषरूप से श्रद्धेय पिता, पूज्यनीया माँ, श्रद्धेय ज्येष्ठभ्राता तथा संस्कृत वाङ्मय के समाराधक डा० राजेन्द्र मिश्र जी के प्रति भी हृदय से आभारी हूं ।

अत्यल्प समय में निर्दोष टंकण कार्य समाप्त करने के कारण श्री श्यामलाल तिवारी जी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं । अपनी अभिन्न मित्र गीता बनर्जी एवं अपनी छोटी बहनों के प्रति भी मैं आभारी हूं जिन्होंने कि शोधप्रबन्ध की इस अवधि में अनुकूल वातावरण प्रस्तुत कर मुझे अपार सहयोग दिया ।

इन्हीं स्वल्पतम शब्दों के साथ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करती हूं ।

भवदीया,
अंजू चतुर्वेदी
(अंजू चतुर्वेदी)

दिनांक : ९.२.८४.

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय १

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव एवं विकास

सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ मनुष्य समाचार का भूखा भी रहा है। आदिम काल में मनुष्य को यह जानते रहना आवश्यक रहा कि भोजन कहां सुलभ है, उसे प्राप्त करने में क्या साधन उसे अपनाने होंगे और इस कार्य में क्या कठिनाइयां होंगी। भाषा के विकास के पूर्व वह संकेतों से काम करता रहा होगा। भाषा के विकास के बाद उसे समाचारों एवं मनोभावों के विनिमय में सुविधा हो गई होगी। उस समय कबीलों की बैठकें, धर्म-सम्मेलन, मेले आदि विचारों एवं समाचारों के विनिमय के साधन बने। भाषा को लिपिबद्ध करने का आविष्कार मानव जाति के लिए क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ। उतना ही क्रान्तिकारी था मुद्रण का आविष्कार जिसके फलस्वरूप समाचारपत्र आधुनिक युग की देन बने।

प्राचीन काल में डुगडुगी पीटकर, शिलालेखों आदि के माध्यम से राजकीय घोषणाएं होती थीं। मौर्य काल में समाचारों के संकलन एवं वितरण की सुचारु व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। रोम साम्राज्य में पढ़े-लिखे गुलामों द्वारा 'संवादपत्र' लिखे जाते थे जिनमें राजनीतिक एवं आर्थिक समाचार रहते थे।

मुगल शासकों, छत्रपति शिवाजी और नाना फड़नवीस के दरबारों में 'वाक्यानवीस' रहते थे। राजपूत, सिख तथा मराठा दरबारों में भी समाचार-लेखक थे। लेकिन ये समाचार-लेखक जो समाचार-संकलन एवं लेखन करते थे, वह केवल शासन के उपयोग के लिए होता था। इनकी कोई नियतकालिकता भी नहीं थी। अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह ने 'सिराज-उल-अखबार' निकाला था जिसे श्री रामरतन भटनागर प्रथम एवं अन्तिम दरबारी पत्र मानते हैं। मुगलों की अन्तिम दरबार डायरी — 'उर्दू अखबार' थी जो १८५७ तक चलती रही। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने

भी इसी पद्धति को शुरु में अपनाया जो समाचारपत्रों के मुद्रण तक बराबर चलती रही। इन सब प्रयत्नों को समाचारपत्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि समाचारपत्र के लिए उसका सर्वसाधारण के समाचारों से युक्त, मुद्रित होना, नियमित निकलना तथा बिक्री के लिए हर किसी के लिए सुलभ होना आवश्यक होता है।

कागज तथा मुद्रण के आविष्कार ने मानव समाज की हस्त-लिखित के स्थान पर मुद्रित पुस्तकें एवं समाचारपत्रों को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बना दिया। पहले जो ज्ञान चंद लोगों का अधिकार था, उसे जनता तक पहुंचाने में मुद्रण ने जो योग दिया, उससे सामाजिक क्रान्ति ने नये आयाम ग्रहण किये।

कागज और चल टाइपों द्वारा मुद्रण का आविष्कार चीन ने किया जो विख्यात रेशम मार्ग से यूरोप पहुंचा और पर्याप्त विकसित हुआ। इसी प्रकार चीन को ही पहला समाचारपत्र निकालने का श्रेय भी प्राप्त है। इस पत्र का नाम 'पीपिंग गजट' या 'तिचाओ' (Tiehao) था जो सरकारी प्रकाशन था (श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री रामकृष्णरघुनाथ खाडिलकर एवं श्री एस० नटराजन भी पीपिंग के कोर्ट गजट को संसार का सर्वाधिक प्राचीन समाचारपत्र मानते हैं। यह पत्र १५०० वर्षों तक निकलता रहा और १९१२ में मांचू वंश के पतन के पश्चात् बंद हुआ।

भारत में पहला प्रेस पुर्तगाली मिशनरी द्वारा १५५० में लाया गया था। पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापारी भारत में आये जिनमें परस्पर संघर्ष हुए और अन्ततः अंग्रेज़ विजयी हुए। प्लासी की लड़ाई में नवाब सिराजुद्दौला को हराने के बाद अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी १७५७ से भारत की अघोषित शासक बन गई।

आधुनिक अर्थों में भारत में समाचारपत्रों का आरम्भ अंग्रेजों

द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में अंग्रेज़ों की खातिर हुआ । भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में पहला पत्रकार होने का श्रेय श्री विलियम बोल्ट्स को है । श्री बोल्ट्स जन्मत: डच थे और लिज़्बन में रहते थे । वहां भूचाल आने पर अपना सब कुछ गवां कर वह भारत आए और बंगला सीखी । बंगाल कौंसिल के दो सदस्यों की सहायता तथा अपनी कड़ी मेहनत एवं चतुराई से बोल्ट्स ने काफी धन कमाया । ईस्ट-इंडिया कम्पनी के साथ मतभेद एवं संघर्ष होने के कारण श्री बोल्ट्स ने सितम्बर १७८८ में कलकत्ता के कौंसिल हाल एवं प्रमुख स्थानों में एक नोटिस चिपकवाया जो इस प्रकार था :

'जनसाधारण से - - - - -- - - - - - - -- - - - - - - -

'श्री बोल्ट्स जनता को सूचना प्रदान करने के लिए यह तरीका अपनाते हैं । इस नगर में छापाखाना न होने से व्यापारी वर्ग को बहुत नुकसान रहता है और समाज को वे समाचार दिए जाना अत्यन्त कठिन है, जिनमें हर ब्रिटिश प्रजा की दिलचस्पी है । इसीलिए श्री बोल्ट्स उस या उन व्यक्तियों को सर्वाधिक प्रोत्साहन प्रदान करने को तैयार हैं, जो मुद्रण का काम जानते हैं, प्रेस टाइपों तथा अन्य सामान का प्रबन्ध कर सकते हैं । इसके साथ ही वह जनता को सूचित करना चाहते हैं कि उनके पास लिखित रूप में ऐसी जानकारी है, जिसमें हर व्यक्ति की गहरी दिलचस्पी होगी । जो जिज्ञासु व्यक्ति चाहें, उन्हें श्री बोल्ट्स के घर में वह सामग्री पढ़ने एवं नकल करने की अनुमति होगी। एक व्यक्ति प्रात: दस से बारह बजे तक इच्छुक व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने के लिए रहेगा ।'

यह भारत में पत्रकारिता की शुरुआत थी । ब्रिटेन के अनुभवों के कारण भारत में अंग्रेज अधिकारी पत्रकारिता की शक्ति जानते थे और वे आशंकित भी थे कि यदि भारत में पत्रकारिता पनपी तो उनकी हरकतों का भंडाफोड़ हो जाएगा जिनके द्वारा वे ईस्ट इंडिया को घाटा दिखाकर स्वयं

मालामाल हो रहे थे । ये अधिकारी नहीं चाहते थे कि भारत के इन कार्यों की कोई खबर इंग्लैंड पहुंचे । श्री बोल्ट्स के इस प्रयास को वे समूल नष्ट कर देना चाहते थे । अत: श्री बोल्ट्स को जबरदस्ती एक जहाज में डालकर भारत से ले जाया गया । बाद में श्री बोल्ट्स ने दो पुस्तकें लिखकर भारत में कम्पनी प्रशासन का भंडाफोड़ किया था ।

उन दिनों कम्पनी के सिवा भारत के व्यापार से मालामाल होने के लिए स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने आये, अंग्रेजों ने पाया कि कम्पनी के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार धार मोचरी करने के दो ही उपाय थे --
(१) इस देश के लोगों में शिक्षा का प्रचार करके लोकमत जाग्रत करना और
(२) सब स्वतन्त्र व्यापारियों को संगठित करना । इनमें से सबसे सुगम उन्हें पहला उपाय लगा । इस दिशा में विलियम बोल्ट्स ने `भारतीय विषयों पर विचार` नामक पुस्तक लिखी और जेम्स अगस्त हीकी ने २८ जनवरी १७८७ को `हिकीज़ बंगाल गजट` या कैलकट्टा जनरल एडवरटाइजर नामक साप्ताहिक पत्र निकाला ।

इस पत्र के पहले ही अंक में स्पष्ट किया गया था कि यह `राजनीतिक और आर्थिक विषयों का साप्ताहिक है और इसका सम्बन्ध हर दल से है मगर यह किसी दल के प्रभाव में नहीं आयेगा ।` अपने सम्बन्ध में हिकी ने लिखा था, `मुझे अखबार छापने का विशेष चाव नहीं है, न मुझमें इसकी योग्यता है । कठिन परिश्रम करना मेरे स्वभाव में नहीं है, तब भी मुझे अपने शरीर को कष्ट देना स्वीकार है ताकि मैं मन और आत्मा की स्वाधीनता प्राप्त कर सकूं ।`

`बंगाल गज़ट` दो पृष्ठ का पत्र था जो १२ ` लम्बा और ८ ` चौड़ा था । तीन कालमों में दोनों और छपता था । इस पत्र ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासन और तत्कालीन अंग्रेजों के भ्रष्टाचार का जमकर

पर्दाफाश किया । इस प्रक्रिया में उसने गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स तक को नहीं बक्शा । उन दिनों समाचारपत्र सम्बन्धी कोई नियम न थे, इसलिए मौका पाते ही वारेन हेस्टिंग्स ने हिकी के इस पत्र का गला घोट दिया और हिकी को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया । हिकी के इस पत्र में पत्रकारिता की दृष्टि से अनेक कमियां थीं और लेखन भी अतिरेक भरा होता था, फिर भी भारत में पत्रकारिता को जन्म देने का श्रेय हिकी को ही है ।

इस प्रकार भारत में पत्रकारिता के उदय के साथ दो तत्व मुख्य रूप से जुड़ गये --(१) सरकार एवं भ्रष्टाचार की आलोचना और (२) सरकार की ओर से उनका दमन । ये दोनों तत्व न्यूनाधिक रूप में हमारे देश की पत्रकारिता पर छाए रहे हालांकि १८५७ के विद्रोह के बाद अंग्रेजों के अंग्रेजी पत्रों का स्वर सरकार समर्थक हो गया और भारतीय भाषाओं के पत्रों में विदेशी शासन के विरोधी की तीव्रता अत्यधिक बढ़ गई जिससे अन्तत: पत्रों ने देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए जनमत तैयार करने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सरकारी दमन को कभी तीखा तथा कभी नरम बनाने के लिए अनेक कानून बने लेकिन पत्रों की पूर्ण स्वतंत्रता, मौलिक अधिकारों की घोषणा के बाद भी अभीप्सा बनी ही रही ।

दिग्दर्शन —

भारतीय भाषाओं का पहला पत्र 'दिग्दर्शन' मासिक तथा जो अप्रैल १८१८ में श्रीरामपुर (जिला हुगली बंगाल) के बैपटिस्ट मिशनरियों ने निकाला और इसके सम्पादक जेन क्लार्क मार्शमैन थे । अप्रैल १८१८ से मार्च १८१९ और जनवरी से अप्रैल १८२० तक इसके कुल १६ अंक अंग्रेजी और बंगला में निकले । प्रकाशकों ने हिन्दी में भी इस पत्रिका को निकालने की बात सोची और दिल्ली से इसके लिए दो विद्वान भी बुलाये गये थे । कूरी महोदय की देखरेख में इन हिन्दी विद्वानों के सहयोग से इस पत्रिका के तीन अंक निकालने

की सूचना केवल रिपोर्ट में मिलती है । इस पत्रिका का कोई अंक देखने में नहीं आया है ।

यह शिक्षाप्रद मासिक था और भारतीय छात्रों एवं नवशिक्षकों के लिए ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा एवं मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य था । अत: वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार इस पत्रिका को हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र नहीं कहा जा सकता ।

दरबार रोजनामचा —

कर्नल जेम्स टाड ने `एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान` भाग २ में लिखा है कि बूंदी से १८१८-१८२० के बीच एक `दरबार रोजनामचा` (कोर्ट जनरल) निकलता था । कर्नल टाड ने इस पत्र की भाषा की कोई चर्चा नहीं की है लेकिन बूंदी हिन्दी भाषी क्षेत्र में है अत: यह माना जा सकता है कि इस पत्र की भाषा हिन्दी ही रही होगी । कर्नल टाड ने पृष्ठ ६०१ पर इस `अखबार` में निकले १८ अक्टूबर १८२० के अंक का एक अंश भी दिया है । किन्तु इस पत्र की कोई प्रति राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुलभ नहीं हुई है और न बूंदी से ही इसके प्रकाशन का कोई प्रमाण मिलता है ।

भारतवर्ष में सबसे पहला समाचारपत्र जनवरी १७८० ई० में अंग्रेज़ों द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में और उनकी अपनी आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण निकला । इस सम्बन्ध में सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ने लिखा है -- `उस समय कम्पनी के सिवा भारत के व्यापार से मालामाल होने के लिए बहुत से अंग्रेज स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने बंगाल में आये थे । इन्होंने देखा कि कम्पनी के कर्मचारी उसकी आड़ में अपना स्वतंत्र व्यापार चलाते हैं और अन्य लोगों के व्यापार में बाधा डालते हैं । इस बाधा का

निवारण करने के लिए दो उपाय थे -- एक इस देश के लोगों में शिक्षा का प्रचार करके लोकमत जाग्रत करना और दूसरा सब स्वतन्त्र अंग्रेज व्यापारियों का ऐसा संगठन करना, जिससे अन्याय यदि पूर्णरूप से बन्द न हो जाय, तो कम तो अवश्य ही हो जाय । पहला उपाय श्रमसाध्य था, इसलिए दूसरे उपाय की ओर ध्यान दिया गया । इस दिशा में पहला काम विलियम बोल्ट नामक के व्यापारी ने `भारतीय विषयों पर विचार` नामक ग्रन्थ लिख कर किया । दूसरा उपाय जेम्स आगस्ट हिकी ने `बेंगाल गजट आफ कैलकेटा जेनरल एडवाइजर` नामक पत्र प्रकाशित करके किया । हिकी का यह `बेंगाल गेजेट` वारेन हेस्टिंग्स की नीति का विरोधी था ।

उन दिनों समाचारपत्र सम्बन्धी कोई नियम नहीं था, अत: मौका पाकर वारेन हेस्टिंग्स ने हिकी के इस पत्र का गला घोंट दिया । इसके साथ ही समाचारपत्रों के नियन्त्रण के लिए कड़े नियम बनाए ।

सन् १७८० से १७९० ई० तक कलकत्ता से हिकी के `बेंगाल गेजेट` के अतिरिक्त और भी चार पत्र निकले— `इंडिया गेजेट` (१७८०), `कैलकटा गेजेट` (१७८४), `बेंगाल गेजेट ( १७८५ ) और `इंडियन वर्ल्ड`/ (——) । इसी के आस-पास `ओरियन्टल मेगजीन` नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित हुआ । इसी अवधि में मद्रास से `मद्रास क्रानिकल` (१७८५), `बम्बई हेरल्ड` (१७८६) आदि सब मिलाकर लगभग १५ पत्र प्रकाशित हुए । किन्तु सभी अंग्रेजी में निकले और सभी पर अंग्रेजों का नियन्त्रण था ।

जिस प्रकार मिशनरियों ने धर्मप्रचार के लिए स्कूल- कालेज खोले, छापाखानों की स्थापना की, उसी प्रकार उन्होंने देशी भाषा में समाचारपत्र भी निकाला । सिरामपुर के बैपटिस्ट मिशनवालों ने सन् १८१७ ई० में `दिग्दर्शन` नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया । इसका सम्पादन भी कोई

अंग्रेज़ सज्जन करते थे। इसके कुछ ही दिनों बाद बंगला भाषा में दो पत्र निकले कलकत्ता से 'बंगाल गेजेट' (इसका हिकी के गजट से कोई सम्बन्ध नहीं था) और सिरामपुर से 'समाचार दर्पण'। इस समय राजाराम-मोहनराय शिक्षित, उदार और प्रगतिशील विचार के बंगालियों के नेता थे। वे अंग्रेज़ी, फारसी, संस्कृत और बंगाल के प्रकांड विद्वान् थे। ईसाई धर्म के आक्रमण का उन्होंने विरोध किया। इसी संघर्ष के प्रवाह में पहले तो बंगला में 'संवाद कौमुदी' (१८२०) तथा बाद में अंग्रेजी और बंगाल में 'ब्राह्मैनिकल मैगजीन' का प्रकाशन हुआ। आगे चलकर अपने विचारों के प्रचार के लिए राजा साहब ने फारसी भाषा में 'मीरात-उल-अखबार' भी निकाला। विचारों के संघर्ष के कारण कलकत्ते में दो दल हो गए। एक उदार विचार वाले प्रगतिशील सुधारकों का दल था, जो समाज और राजशासन दोनों में सुधार चाहता था। इस दल के नेता राजाराममोहनराय थे। इस दल के विचारों का प्रचार 'संवादकौमुदी', 'कैलकटाजनरल' और 'मीरात-उल-अखबार' द्वारा होता था। दूसरा दल कट्टर, रूढ़िवादी, सुधारविरोधी और सरकारी राजनीति के समर्थकों का था। इसके विचारों का प्रचार 'समाचार चन्द्रिका', 'जानबुल' और 'एशियाटिक जरनल' द्वारा होता था। धीरे-धीरे उदार नीति वाले समाचारपत्रों का प्रभाव बढ़ने लगा। भारत में कम्पनी सरकार और इंग्लैण्ड में कम्पनी के डायरेक्टरों में घबराहट पैदा हो गई। समाचारपत्रों के नियन्त्रण का उपाय सोचा जाने लगा। ४ अप्रैल १८२३ ई० को ऐडम ने सुप्रीमकोर्ट के सामने समाचारपत्रों के नियन्त्रण के प्रस्ताव रखे। उन सब पर विचार होने के बाद गवर्नरजनरल ने रैग्युलेशन जारी किए। इसके अनुसार सरकारी अनुमति के बिना पुस्तकों, कागजों का छापना और प्रेस का उपयोग करना निषिद्ध ठहराया गया। बिना लाइसेंस के चलने वाले प्रेसों को जब्त कर लेने और उन्हें सरकार की मर्जी के मुताबिक बेच देने का भी नियम बना। लाइसेंस के लिए सरकार के पास दरखास्त देना और उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करना सरकार पर

छोड़ा गया। यह ऐसा काला कानून था कि राजा राममोहनराय जैसे सन्तुलित विचार के व्यक्ति ने इसके प्रतिवाद का नेतृत्व किया। सबसे पहला वार राजा साहब के 'मीरात-उल-अखबार' पर ही हुआ। राजा साहब ने प्रतिवाद में अखबार बन्द कर दिया। दूसरा वार 'कैलकटा जनरल' पर हुआ। उसके सह संपादक सैंडर्स आरनाट निर्वासित कर दिए गए। कुल मिलाकर यह प्रगतिशील सुधारक दल पर आक्रमण था।

सरकार ने उदार विचार के सुधारक समाचारपत्रों को बन्द तो किया किन्तु उन्होंने जिन विचारों का प्रचार जनता में किया था उसके प्रभाव को न रोका जा सका। राजा रामोहनराय ने सती प्रथा के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन छोड़ दिया था। सरकार पर उसका प्रभाव पड़ा और सरकार ने एक कानून बनाकर सती दाह की प्रथा पर रोक लगा दी। इससे नए विचारों के प्रसार को बल मिला। इस समय बंगाल, मद्रास, और बम्बई में नए-नए पत्र निकले। देशी पत्रकारिता की दृष्टि से यह काल बड़ा महत्त्व का था।

----

१ सरस्वती पत्रिका - हीरकजयन्ती विशेषांक

हिन्दी का पहला पत्र `उदंत मार्तण्ड` ३० मई १८२६ ई० को निकला। भारतीय नवजागरण का आरम्भ कलकत्ते से ही हुआ। कलकत्ते में जीविकार्जन के लिए हिन्दी भाषा-भाषी भी रहते थे उन्हीं में कानपुर निवासी पं० युगलकिशोर शुक्ल भी थे। १६ फरवरी १८२६ ई० को सरकार ने उन्हें `उदंत मार्तण्ड` नामक पत्र निकालने का अधिकार पत्र दिया था। `उदंत मार्तण्ड` की अल्पकालीन सफलता और लोकप्रियता के कारण अन्य व्यक्तियों को भी हिन्दी में पत्र निकालने की प्रेरणा मिली।

राजा राममोहनराय ने अंग्रेज़ी `हिन्दू हेरल्ड` को देशी रूप भी दिया। बंगला, हिन्दी और फारसी का मिलाजुला यह पत्र `बंगदूत` कहलाया। `बंगदूत` साप्ताहिक के प्रथम वर्ष के सम्पादक नीलरतन हालदार थे। इसका पहला अंक १० मई १८२६ ई० को निकला था। `बंगदूत` अल्पायु निकला।

१८४५ ई० में `बनारस अखबार` का प्रकाशन हुआ। हिन्दी प्रदेश से निकलने वाला यह पहला हिन्दी पत्र माना। `बनारस अखबार` हिन्दी पत्र होने पर भी भाषा की दृष्टि से उर्दू का ही समझा जाना चाहिए। उसमें प्रकाशित होने वाले लेख देवनागरी लिपि में छपते थे अवश्य, किन्तु इसकी भाषा उर्दू रहती थी। इन सबका उत्तरदायित्व अखबार के मालिक शिवप्रसाद सितारेहिंद पर था, जो हिन्दुस्तानी नामक की नई भाषा चलाने के पक्षपाती थे तथा जिनकी निज की भाषा हिन्दी से अधिक उर्दू होती थी।

१८५० ई० में बनारस से बंगला भाषा-भाषी तारामोहन मैत्र ने `सुधाकर` का प्रकाशन किया। इसकी भाषा `बनारस अखबार` से कहीं अच्छी होती थी। यह हिन्दी और बंगला दोनों में प्रकाशित होता था।

१८४६ ई० में कलकत्ते से `इंडियनसन` प्रकाशित हुआ । यह `बंगाल हेरल्ड` और `बंगदूत` की तरह पांच-पांच भाषाओं में प्रकाशित होता था ।

तासी ने १८४६ ई० में प्रकाशित `ज्ञानदीपक` की चर्चा की है जिसका विवरण नहीं मिलता ।

१८४८ ई० प्रेमनारायण ने `मालवा` अखबार हिन्दी, उर्दू में निकाला ।

१८४६ ई० में कलकत्ते से किसी बंगाली सज्जन ने बंगला हिन्दी में `जगदीपक भास्कर` का प्रकाशन किया किन्तु इसका भी विवरण नहीं मिलता ।

१८५२ ई० में आगरे से `बुद्धिप्रकाश` निकला । इसके संपादक लाला सदासुखलाल थे । इसी समय भरतपुर दरबार की ओर से एक उर्दू हिन्दी पत्र `मजहरुल सरूर` निकाला गया था । यह एक उर्दू प्रधान मासिक पत्र था ।

१८५३ ई० में मुंशी लक्ष्मणदास ने ग्वालियर से `ग्वालियर गजट` निकाला । पहले यह उर्दू हिन्दी में साथ-साथ छपता था परन्तु बाद में अलग-अलग छपने लगा ।

१८५४ ई० में श्यामसुन्दर सेन नामक एक बंगाली सज्जन ने `समाचार सुधावर्षण` नामक हिन्दी और बंगला दैनिक कलकत्ते से प्रकाशित करना प्रारम्भ किया ।

१८५५ ई० में आगरे से `सर्वहितकारक` प्रकाशित हुआ । इसके प्रकाशक शिवनारायण थे ।

१८५७ ई० में स्वातंत्र्य आन्दोलन के नेता अजीमुल्ला खां ने दिल्ली से `पयामे आजादी` का प्रकाशन किया । पहले यह पत्र उर्दू में निकलता था किन्तु शीघ्र ही हिन्दी में निकलने लगा ।

१८५६ ई० में मनसुखराम ने अहमदाबाद से `धर्मप्रकाश` का संपादन और प्रकाशन किया ।

१८६१ ई० में हिन्दी प्रदेश से कई पत्र निकले । इनमें आगरे से गणेशीलाल के संपादकत्व में `सूरजप्रकाश` और शिवनारायण के संपादकत्व में `सर्वोपकारक` तथा अजमेर से सोहनलाल के संपादकत्व में `जगलाभचिन्तन` और इटवा से जवाहरलाल के संपादकत्व में `प्रजाहित` प्रसिद्ध है ।

१८६३ ई० आगरा नगर के पास से मशनरियों ने `लोकहित` का प्रकाशन किया । पत्र शुद्ध हिन्दी में निकलता था । १८६४ ई० में आगरे से `भारतखंडामृत` नामक पत्र का प्रकाशन लल्लूलाल जी के समकालीन पंडित वंशीधर ने किया ।

१८६१ ई० में आगरे से एक और हिन्दी पत्र प्रकाशित हुआ जिसका नाम था `ज्ञानदीपक` या `ज्ञानप्रकाश` ।

१८६४ ई० में जोधपुर दरबार से हिन्दी अंग्रेजी में `जोधपुर गवर्नमेन्ट गजट` निकला ।

१८६५ ई० में बरेली में गुलाबशंकर के संपादकत्व में `तत्वबोधिनी पत्रिका` प्रकाशित हुई ।

१८६६ ई० में लाहौर से नवीनचन्द्रराय ने `ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका` का प्रकाशन किया । इसके संपादक एक कश्मीरी पंडित मुकुन्दराम थे ।

१८६६ ई० में `मारवाड गजट` का प्रकाशन हुआ । इसी समय बम्बई से `शक्तिदीपक` नामक पत्र निकला ।

१८६७ ई० में जम्मूकश्मीर से `वृतान्तविलास` आगरे से `सर्वजनोपकारक` और रतलाम से `रतनप्रकाश` प्रकाश में आए । जम्मूकश्मीर से एक और पत्र हिन्दी उर्दू में निकला जिसका नाम था `विद्याविलास` ।

द्वितीय उत्थान—

१८६८ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काशी से `कविवचन सुधा` का प्रकाशन किया । इसमें कविताओं का संग्रह रहता था । पहले ये मासिक पत्रिका थी, बाद में पाक्षिक हुई । फिर साप्ताहिक तथा हिन्दी अंग्रेजी दोनों में प्रचलित हुई । भारतेन्दु जी ने इस पत्रिका के माध्यम भाषा को खूब सुधारा और संवारा । १८७५-८५ ई० के बीच इसमें राजनीति और समाजनीति पर स्वतन्त्र लेख भी निकलने लगे । अधिकतर लेख स्वयं `भारतेन्दु` के ही रहते थे ।

१८६८ ई० में प्रयाग से `वृतान्तदर्पण` निकला । इसके संपादक सदासुखलाल थे । १८७० ई० में अनेक पत्रों के प्रकाशन हुए । इस वर्ष कानपुर से `हिन्दूप्रकाश` और प्रयाग `प्रयागदूत` । जोधपुर से `मुहब्बे मारवाड़` (हिन्दी, उर्दू में) और ललितपुर से `बुन्देलखण्ड अखबार ` (हिन्दी,उर्दू में) मेरठ के `म्यूर गजट` (पहले उर्दू में और बाद में हिन्दी में) और सहारनपुर से `सांडर्स गजट` (हिन्दी में) तथा बम्बई से `मनोविहार` (हिन्दी, मराठी, गुजराती, संस्कृत में) का प्रकाशन हुआ । इन सभी पत्रों से जहां एक ओर हिन्दी पत्रकारिता के विकास की सूचना मिलती है, वहीं यह भी मालूम पड़ता है कि किस प्रकार हिन्दी भाषा का प्रसार हो रहा था और उसकी लोकप्रियता में वृद्धि हो रही थी ।

१८७२ ई० में बाबू कीर्तिप्रसाद ने कलकत्ते से `हिन्दी दीप्ति प्रकाश` निकाला। १८७२ ई० में ही पं० केशवराम भट्ट तथा पं० मदनमोहन भट्ट के उद्योग से `बिहारबंधु` नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह लगातार १६०५ ई० तक चलने के बाद बन्द हो गया।

१८७३ ई० में पत्रकारिता जगत में पुन: हलचल हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने काशी से हरिश्चन्द्र मैगज़ीन` का प्रकाशन किया। १८७४ ई० में इसी का नाम बदलकर `हरिश्चन्द्र चन्द्रिका` कर दिया गया।

इसी वर्ष भारतेन्दु जी की `कविवचन सुधा` का (साप्ताहिक) प्रकाशन हुआ। इन दिनों पत्रों की अच्छी प्रसिद्धि थी और इनसे पत्रकारिता को यश मिल रहा था। अमृतसर से `हिन्दी प्रकाश` हिन्दी, उर्दू तथा पंजाबी में निकला। `जबलपुर समाचार` जबलपुर से (हिन्दी, अंग्रेजी) में निकला। लखनऊ से `भारतपत्रिका` (अखबारे अंजुमने हिन्दी का संस्करण) अवध के ताल्लुकेदारों से निकला। आगरे से `मर्यादा परिपाटी समाचार हिन्दी, संस्कृत में निकाला गया। इसके संपादक पं० दुर्गाप्रसाद शुक्ल थे।

१८७४ ई० में भारतेन्दु जी ने ही स्त्रियों के लिए `बालबोधिनी` का प्रकाशन किया। इसमें स्त्रियों के लिए कुछ उपदेश भी रहते थे। प्रयाग से `नाटकप्रकाश` का प्रकाशन हुआ। मेरठ से `नागरीप्रकाश` निकला गया। अलीगढ़ के वकील तोताराम वर्मा ने `भारतबन्धु` निकाला। लाला श्रीनिवास ने `सदादर्श` दिल्ली से प्रकाशित किया था।

१८७५ ई० में पं० शिवनारायण शुक्ल ने `धर्मप्रकाश` मासिक का प्रकाशन प्रयाग से आर्यसमाज की ओर से हिन्दी, संस्कृत में प्रारम्भ किया।

भारतेन्दु की लीलाभूमि काशी से `कविवचनसुधा`, `बालबोधिनी` और `हरिश्चन्द्रचन्द्रिका` तो निकलती ही थी, भारतेन्दु की ही प्रेरणा से

१८७६ ई० में `काशीपत्रिका` भी निकली ।

१८७७ ई० में पं० मुकुन्दराम के सम्पादकत्व में `मित्रविलास` निकला । `भारतदीपिका` और `भारतहितैषी` इसी वर्ष प्रकाशित हुए थे । प्रयाग से `नागरी पत्रिका`, `धर्मपत्र` और `धर्मप्रकाश` का प्रकाशन हुआ । इन तीनों पत्रों के सम्पादक सदासुखलाल थे । इसी समय पं० बालकृष्ण भट्ट का प्रयाग से `हिन्दीप्रदीप` निकला ।

१८७८ ई० में प्रयाग से `कायस्थ समाचार` निकला । इसी वर्ष जो सबसे प्रभावशाली पत्र निकला, वह कलकत्ते का `भारतमित्र` था । इसके संपादक पं० छोटूलाल मिश्र और पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र थे ।

`भारतमित्र` का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व घटना थी । `भारतमित्र` ने हिन्दी पत्रकारिता को बड़ा ऊंचा उठाया । यह एक युग में हिन्दी का सबसे प्रभावशाली पत्र था ।

१८७८ ई० में ही जयपुर से `जयपुर गजट` का प्रकाशन हुआ ।

१८७९ ई० में कलकत्ता से पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने अपने तीन और साथियों के साथ सारसुधानिधि प्रेस से `सारसुधानिधि` नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया । १८७९ ई० में ही कलकत्ते से `जगतमित्र` का प्रकाशन भी हुआ । कानपुर से `शुभचिन्तक`, प्रयाग से `ज्ञानचन्द्रोदय` और काशी से `काशीपंच` का प्रकाशन भी इसी वर्ष हुआ ।

१८८० ई० में कलकत्ते का तीसरा विख्यात पत्र `उचितवक्ता` प्रकाशित हुआ । इसके अतिरिक्त भी १८८० ई० में कई और पत्र निकले -- `जैन पत्रिका` (प्रयाग), `धर्मनीतितत्व` (पटना), `क्षत्रियपत्रिका` (पटना) इसके सम्पादक बाबू रामदीन सिंह थे ।

१८८१ ई० में `नवीनवाचक` साप्ताहिक पत्र गोण्डा से प्रकाशित

हुआ । मासिक पत्रिकाओं में `भारतदीपिका` (लखनऊ),संपादक बाबू अम्बिकाचरण घोष, `आरोग्यदर्पण ` प्रकाशित करने वाले पं० जगन्नाथ प्रसाद वैद्य (प्रयाग) और चौधरी पं० बदरीनारायण उपाध्याय द्वारा सम्पादित और प्रकाशित `आनन्दकादम्बिनी ` (मिर्जापुर) निकली ।

१८८३ ई० में प्रतापगढ़ के तालुकेदार राजा रामपाल सिंह ने इंग्लैण्ड से हिन्दी और अंग्रेजी में `हिन्दोस्थान` नाम का पत्र निकाला । इसी वर्ष पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से `ब्राह्मण` नामक बड़ा तेजस्वी अखबार निकाला था । इस पत्र को निकालने वाले लखनऊ के बाबू गंगाप्रसाद वर्मा थे । इसके अतिरिक्त `धर्मोपदेश ` (बरेली), `भारत-हितैषिणी ` (लाहौर), `विद्योदय` (कलकत्ता) `यज्ञविलास`(पटना), `सदाचार मार्तण्ड` (जयपुर), `कविकुलकुंजदिवाकर` (बस्ती), `इन्दु` (लाहौर), `वैष्णवपत्रिका` (काशी), `हिन्दी समाचार` (भागलपुर) और `व्यापारबन्धु` (बम्बई) भी निकले ।

१८८४ ई० में भागलपुर से `वैष्णवपत्रिका` का प्रकाशन पं० अम्बिकादत्त व्यास के संपादकत्व में हुआ । इसका नाम इसी वर्ष `पीयूष-प्रवाह` कर दिया गया ।

बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते समय जो बात सबसे पहले आकर्षित करती है वह है युग का राष्ट्रीय जागरण । इस युग में राष्ट्रीय जागरण । इस युग में धर्म और समाज सुधार के आन्दोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया । फलत: अधिकांश पत्र साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले ।

इन बीस वर्षों की अवधि में लगभग बीस हिन्दी दैनिक

समाचार पत्र निकले, पर इनमें अधिकतर पत्रों का जीवन बड़ा अल्प था । यथा -- `अभ्युदय`, `भारतजीवन`, श्री वेंकटेश्वर समाचार`, `जायसी-प्रताप`, `आनन्द`, `आज`, `वर्तमान `, `दैनिकप्रताप`, `भविष्य `, `विजय` सन् १६२० में निकले, जिनमें `आज` ही ऐसा पत्र है जो आज तक पूरे यश के साथ हिन्दी साहित्य जगत की सेवा कर रहा है ।

`सिपाही` (१६०३), `राजस्थान समाचार` (१६०४), `हिन्दोस्थान` (१६०८), `भारतमित्र` (१६१२), `हिन्दी बिहारी` (१६१३), `कानपुर गजट` (१६१३), `कलकत्ता समाचार` (१६१४), भी दैनिक रूप में निकले पर इनमें कोई भी दीर्घजीवी न हो सके ।[1]

भारतमित्र (१८७८) —

पं० छोटूलाल मिश्र के संपादकत्व में कलकत्ता से इसका प्रकाशन हुआ । इसके मुख्य पृष्ठ पर ही इसका उद्देश्य छपा रहता था ।

`ज्यो स्तु सत्यनिष्ठानां येषां सर्वे मनोरथा ।`[2]

आरम्भ में यह पत्र पाक्षिक था, तत्पश्चात् साप्ताहिक हो गया । १८६७ तक दैनिक रूप से निकलने लगा । पर सन् १६१२ में यह स्थायी रूप से दैनिक हुआ । इसके संपादन का कार्य अनेक लोगों ने संभाला । आलोच्य काल में इसका संपादन बालमुकुन्द गुप्त, पं० अमृतलाल शर्मा, बाबू शिवनारायण सिंह, पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर तथा लक्ष्मण नारायण गर्दे ने किया ।

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास`, संपादक सुधाकर पाण्डेय, तेरहवां भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

2. भारतमित्र, फरवरी १६०५ ई. एवं २१ अगस्त १८६६ ई. ।

'भारतमित्र' एक तेजस्वी राजनीतिकपत्र के रूप में विख्यात हुआ। देश की राजनीति, वाणिज्य, भाषा और समग्र जातीय चेतना का विकास ही इसका लक्ष्य था ।

२- आनन्द कादम्बिनी (१८८१ ई०)—

पं० बदरीनारायण उपाध्याय के संपादकत्व में निकलती थी । पत्रिका में अधिकांश कविता और लेख चौधरी जी के रहते थे । आलोचना के क्षेत्र में इस पत्रिका का योगदान स्तुत्य है ।

३- भारतजीवन (१८८४ ई०)-

रामकृष्णवर्मा के संपादकत्व में काशी से निकलता था । १६१४ ई० में यह कुछ दिन के लिए दैनिक भी हुआ । यह भी विविध विषय समन्वित पत्र था । नाटक, उपन्यास, कहानी, गज़ल, कवित्त आदि से सज्जित होकर इस पत्र ने हिन्दी के विकास में अपना योग देने का प्रयास किया ।

४- मित्र (१८८८ ई०) -

काशी उपन्यास कार्यालय से बाबू बालमुकुन्द शर्मा के संपादकत्व में मासिक रूप में प्रकाशित होता था । 'मित्र' में कवित्त, लेख, उपन्यास आदि विविध विषय निकलते थे । (समाचारपत्रों का इतिहास, पृ०२०२)

५- भारतभागिनी (१८८८-१६०६ ई०)-

श्रीमती महादेवी नामक महिला के संपादकत्व में सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी । इस पत्रिका में निबन्ध, कविता, कहानी आदि विविध विषय निकलते थे । (भारतभागिनी मई १६०५)

६- हिन्दी बंगवासी (१८९०) -

पं० अमृलाल चक्रवर्ती के संपादकत्व में इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इनके संपादकत्व में १८ वर्ष तक यह चलता रहा, इसके पश्चात् बाबू बालमुकुन्दगुप्त, बाबू विष्णुपराड़कर, अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी तथा लक्ष्मण नारायण गर्दे ने भी इसके संपादन का कार्य किया था ।

७- नागरी प्रचारिणी पत्रिका (सन् १८९६ से अब तक)-

यह त्रैमासिक रूप में बाबूश्यामसुन्दरदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, श्री कालिदास और राधाकृष्णदास के संपादकत्व में नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुई । १९०७ ई० में इसके संपादक श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्रशुक्ल, रामचन्द्रवर्मा, वेणीप्रसाद बनाए गए । १९०२ में पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, श्यामसुन्दरदास,चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और मुंशी देवीप्रसाद संपादक हुए ।

इसमें इतिहास, साहित्य, भाषातत्व, पुरातत्व आदि के बारे में लेख प्रकाशित होने लगे थे ।

८- भाषाचन्द्रिका (१९०० ई०)-

हरे कृष्ण अगरवाला द्वारा तारा यन्त्रालय, काशी से प्रकाशित होती थी ।

९- छत्तीसगढ़ मित्र (१९०० ई०) -

सर्वश्री रामराव चिंचोलकर और माधवराव सप्रे के संपादकत्व में विलासपुर से यह मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी । तत्कालीन साहित्यिक गतिविधि के प्रति जागरूक इस पत्रिका में निबन्ध, जीवन-चरित्र, कविता, व्यंग्य, आदि विषय रहते थे ।

१०- सुदर्शन (१६००-१६१६ ई०)-

पं० माधवप्रसाद मिश्र तथा बाबू देवकीनन्दन खत्री के संपादकत्व में काशी से निकला । आधुनिक हिन्दी आलोचना के सूत्रपात में इसका अमूल्य योगदान रहा ।

११- समालोचक (१६०१ ई)-

यह मासिक पत्र पं० चन्द्रधरशर्मा गुलेरी के संपादकत्व में जयपुर से निकला। इसके द्वारा गुलेरी जी एक अनूठी शैली लेकर साहित्य क्षेत्र में आये । यह पत्र अल्पायु हुआ, किन्तु उतने ही समय में हिन्दी जगत् पर अपनी छाप छोड़ गया। मूलत: यह साहित्यिक पत्र था ।

१२- हितवार्ता (१६०३ ई०) -

पं० कालीप्रसन्न काव्यविशारद के संपादकत्व में निकली । उसके बाद बाबूराव विष्णु पराड़कर इसके संपादक हुए । हितवार्ता के माध्यम से ही देउसकर जी ने विभक्ति आन्दोलन छेड़ा था ।

१३- लक्ष्मी (१६०३ ई०) -

श्री गोरेलाल मंजु के संपादकत्व में यह मासिक पत्रिका गया से निकली । तदुपरान्त बनारस के लाला भगवानदीन द्वारा संपादित होने लगी। यह साहित्यिक पत्रिका थी ।

१४- अबलाहितकारक (१६०३ ई०) -

श्री मित्र जगदीदत्त के संपादकत्व में यह स्त्रियोपयोगी सामाजिक पत्रिका निकलती थी । इसका उद्देश्य समाजसुधार था ।

१५- स्त्रीदर्पण (१६०३ ई०) -

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के संपादकत्व में तथा स्त्रियों के ही प्रबन्ध से प्रयाग से यह सचित्र मासिक पत्र निकलता था ।

१६- वैश्योपकारक (१६०४ ई०)-

शिवचन्द्र जी भरतिया के संपादकत्व में कलकत्ते के राम प्रेस की ओर से मासिक के रूप में यह पत्रिका प्रकाशित हुई ।

१७- भारतेन्दु (१६०८ ई०)-

यह मासिक पत्र एक संपादक समिति द्वारा चौखम्भा, काशी से निकलता था । इसकी संपादक समिति में बाबू ब्रजचन्द्र, श्री शिवप्रसाद जी गुप्त, बाबू राजाराम, मुन्नीलाल गर्ग, गोकुलदास जी तथा लक्ष्मणदास जी थे । यह मूलत: साहित्यिक पत्रिका थी । पत्रिका में निबन्ध नाटक,कहानी, समालोचना आदि सभी विधाओं का समावेश था ।

१८- बालप्रभाकर (१६०७ ई०)-

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के संपादकत्व में निकली । बालकों के लिए यह एक उपयोगी पत्रिका थी ।

१६- आर्यवनिता (१६०६ ई०) -

श्रीमती सुमित्रादेवी के संपादकत्व में सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर से मासिक रूप में निकलती थी ।

२०- हिन्दी केसरी (१६०७-१६०६ ई०) -

पं० माधवप्रसाद सप्रे के संपादकत्व में यह पत्रिका निकली ।

सन् १९०९ में अपनी राजनैतिक गतिविधि के कारण बन्द हो गई । १९१५(सन्) में यह दुबारा पाक्षिक के रूप में निकली ।

२१- नृसिंह (१९०७ ई०) -

अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी के संपादकत्व में कलकत्ते से यह पत्र निकला था । यह एक राजनीतिक पत्र था ।

२२- अभ्युदय (१९०७-१९१८ ई०)-

पं० मदनमोहन मालवीय के संपादकत्व में साप्ताहिक रूप में निकला । पर बाद में राजनीति से अवकाश न मिलने के कारण इसका दायित्व पुरुषोत्तमदास टण्डन को सौंप दिया गया । बाद में उन्हें भी समय का अभाव हो गया और पं० कृष्णकान्त मालवीय `अभ्युदय` का संपादन करने लगे ।

२३- देवनागर (१९०७ ई०)-

श्री यशोदानन्द अखौरी के संपादकत्व में तथा `एक लिपि विस्तार परिषद्` के तत्वावधान में मासिक रूप में निकला ।

२४- कमला (१९०८ ई०) -

जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ के संपादकत्व में कलकत्ते से प्रकाशित होने लगी । सन् १९१६ में यह `श्रीकमला` नाम से भागलपुर से प्रकाशित होने लगी ।

२५- इन्दु (१९०९ ई०) -

ं० अम्बिाप्रसाद गुप्त के संपादकत्व में काशी से प्रकाशित हुई । जयशंकरप्रसाद जी ने `इन्दु` का प्रकाशन `सरस्वती` के संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के लिए किया जिससे `सरस्वती` और

`इन्दु` की प्रवृत्ति भिन्न दिशाओं की ओर जाती है । `इन्दु` के ही माध्यम से प्रसाद ने अपने काव्य के द्वारा आधुनिक काव्य के विकास में योगदान दिया।

२६- चाँद (१६२० ई०) -

लगभग १६२० में ही श्री रामरखसिंह सहगल ने `चाँद` निकालने का निश्चय किया था । किन्तु इसका प्रकाशन नवम्बर १६२२ ई० में हुआ ।

२७- माधुरी (१६२२ ई०) -

लखनऊ से `माधुरी` मासिक पत्रिका का प्रकाशन ३० जुलाई १६२२ ई० में हुआ । इस पर लिखा था `विविध-विषय-भूषित साहित्य सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र` । इसके संपादक थे -- श्री दुलारेलाल भार्गव और श्री रूपनारायण पाण्डेय । पृष्ठ संख्या १०४ थी और वार्षिक मूल्य ६।।) था । इसमें प्रमुख स्तम्भ निम्न थे --

(१) विविध विषय, (२) सुमन संचय, (३) विज्ञान वाटिका, (४) महिला मनोरंजन, (५) पुस्तक परिचय ।

२८- सुधा (१६२७ ई०) -

माधुरी से अपना सम्बन्ध त्यागकर लखनऊ से ही श्री दुलारेलाल भार्गव ने `सुधा` नामक मासिक पत्रिका का प्रकाश किया । `सुधा` में उच्चकोटि के साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर लेख तथा निबन्ध रहते थे।

२६- विशालभारत (१६२८ ई०)-

जनवरी १६२८ ई० में श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने अपने प्रवासी प्रेस कलकत्ते से विविध-विषय-विभूषित सचित्र मासिक पत्र `विशालभारत` निकाला । यह साहित्यिक राजनीतिक और सामाजिक विषयों का उच्चकोटि का मासिक पत्र था ।

३०- हंस (१६३०-१६३१ ई०)-

श्री प्रेमचन्द जी ने सम्भवत: १६३०-३१ ई० में काशी से `हंस` नामक मासिक पत्र निकाला । `हंस` के द्वारा प्रेमचन्द जी ने हिन्दी कथा साहित्य को बहुत ऊंचे धरातल पर उठाया । प्रेमचन्द जी की मृत्यु के उपरान्त `हंस` का सम्पादन श्री शिवदान सिंह चौहान ने किया ।

३१- गंगा (१६३० ई०) -

नवम्बर १६३० ई० में सुल्तानगंज (भागलपुर) में गंगा नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इसके संपादक बनैली राज के कुमार कृष्णानन्द सिंह थे । प्रधान संपादक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी और संपादक पं० गौरीनाथ झा तथा श्री शिवपूजन सहाय थे ।

३२- हिन्दुस्तानी (१६३१ ई०) -

१६३१ ई० में उत्तर प्रदेश में सर तेजबहादुर सपर की अध्यक्षता में हिन्दुस्तानी एकेडमी की स्थापना हुई । एकेडमी के प्रधानमन्त्री डा० ताराचन्द जी थे । उनकी ओर से `हिन्दुस्तानी` नामक एक त्रैमासिक शोध पत्रिका भी १६३१ ई० में प्रकाशित हुई । इसके संपादक मण्डल में डा० ताराचन्द, डा० बेनीप्रसाद, डा० धीरेन्द्रवर्मा, श्री कृष्णदेव वर्मा और श्री रामचन्द्र टण्डन ।

३३- सरस्वती (१६०० ई०) -

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में `सरस्वती` का आविर्भाव इण्डियन प्रेस के स्वामी श्री चिन्तामणि घोष की अध्यक्षता तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्थापक श्री श्यामसुन्दर दास के सम्पादकत्व में सन् १६०० में मासिक रूप में हुआ । इसके उद्देश्य तथा विषय के सम्बन्ध में ही पत्रिका में लिखा हुआ है —

`इसके नवजीवन धारण करने का केवल यही मुख्य उद्देश्य है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भण्डार की अंगपुष्टि, वृद्धि और यथार्थ पूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रन्थराशि को प्रसव करे।'

`इस पत्रिका में कौन-कौन से विषय रहेंगे यह केवल इसी से अनुमान करना चाहिए कि इसका नाम `सरस्वती' है। इसमें गद्य-पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, चंपू, इतिहास, जीवनचरित, पंच, हास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कलाकौशल आदि साहित्य के यावत् विषयों का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रन्थादि की यथोचित समालोचना की जायगी।'

इससे स्पष्ट है कि `सरस्वती' का उद्देश्य बड़ा व्यापक था। वह संकुचित अर्थ में साहित्यिक पत्रिका नहीं थी। हिन्दी के सभी अंगों को पुष्ट करके पाठकों में साहित्यिक अभिरुचि सम्पन्न करने के साथ ही उन्हें आधुनिक और प्राचीन ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी लेख देकर ज्ञानवर्धन करना उसका उद्देश्य था।

संपादन और प्रकाशित सामग्री के उच्च स्तर का होते हुए भी आरम्भ में `सरस्वती' को हिन्दी जगत् से उत्साहवर्धक समर्थन नहीं मिला। परन्तु इतना होने पर भी प्रथम तीन वर्षों में ही `सरस्वती' ने हिन्दी संसार में अपना स्थान बना लिया था। उस समय वह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाने लगी थी। उसकी छपाई, सफाई, चित्र और अलंकरण बेजोड़ थे। ऐसे समय में सन् १६०३ में `सरस्वती' की कमान महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथों में आई। आरम्भ में द्विवेदी जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर धीरे-धीरे उन्होंने `सरस्वती' के लेखकों का एक मण्डल बना लिया जिसमें विविध विषयों के विशेषज्ञ थे।

द्वितीय अध्याय

-o-

सरस्वती पत्रिका का स्वरूप और क्रमिक विकास

'सरस्वती' पत्रिका का आविर्भाव सन् १९०० ई० में हुआ था । सन १९०० ई० से लगातार प्रति वर्ष दर्जनों पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती रहीं । इनमें से प्रमुख साहित्यिक मासिक पत्रों की मान्यता और विवेचना आवश्यक है ।

इंडियन प्रेस प्रयाग के संस्थापक श्री चिन्तामणि घोष ने अगस्त सन् १८९९ ई० में नागरी प्रचारिणीसभा से अनुरोध किया कि सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका सरस्वती के सम्पादन का भार ~~वह~~ ग्रहण करें । इंडियन प्रेस के इस अनुनय का २१ अगस्त सन् १८९९ ई० को सभा की प्रबन्ध समिति में विचारार्थ विषय की तेइसवीं संख्या पर स्थान लिए प्राप्त चार पुस्तकों की सूचना थी और अन्तिम प्रस्ताव सभापति के धन्यवाद प्रकाश के लिए था । उस दिन सभा के कार्य-विवरण पंजिका पर जो निर्णय अंकित हुआ है उसमें लिखा है -- "इस विचार को आगामी अधिवेशन पर उपस्थित किया जाए ।" आगामी साधारण सभा के ११ सितम्बर सन् १८९९ ई० की समिति श्री गोविन्ददास जी (श्री प्रकाश के पितृव्य) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई । 'सरस्वती' के सम्बन्ध में निर्णय किया गया कि सभा इंडियन प्रेस के सचित्र मासिक पत्र सम्बन्धी सम्पादन का या किसी कार्य का भार नहीं ले सकती परन्तु इंडियन प्रेस को सभा राय देती है कि भाषा के उपकार के लिए वह उक्त पत्र अवश्य निकाले और यदि इंडियन प्रेस के स्वामी चाहें तो सभा उन्हें योग्य सम्पादक का नाम बता सकती है जो सम्पादन का कार्य करने के उपयुक्त हैं । उनसे सब बातें इंडियन प्रेस के संचालक स्वयं निश्चय करलें ।

अपने विशिष्ट कार्य करने की प्रणाली के कारण सभा विश्व-विख्यात हो चुकी है । सन् १८९३ ई० से लेकर सन् १९९९ ई० तक सभा ने

अपने प्रयत्नों से अदालतों में हिन्दी और नागरी के व्यवहार की सरकारी आज्ञा प्राप्त करली और आज की सभा अत्यन्त दृढ़ता से हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने में अग्रणी है ।

इंडियन प्रेस की सचित्र पत्रिका के लिए श्री चिन्तामणि घोष ने पुन: सभा को साग्रह प्रेरित किया कि १३ नवम्बर सन् १८६६ ई० के सभा के साधारण सदस्यों के अधिवेशन में इस प्रश्न का निर्णय कर दिया जाए । उस दिन साधारण सभा के चौथे अंक पर `सरस्वती` सम्बन्धी निर्णय में लिखा है --

`इंडियन प्रेस का १४ अक्टूबर का पत्र उपस्थित किया गया और निश्चय किया गया कि निम्नलिखित पांच महाशयों के नाम सम्पादक समिति के लिए लिख दिए जायें । इस निश्चय के डेढ़ महीने बाद `सरस्वती` का प्रथम अंक निकला । आवरण के बीचोंबीच `सरस्वती` सम्पादक मण्डल के सदस्यों का नाम इस प्रकार छपा है --

(१) बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) बी० ए०
(२) बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
(३) बाबू राधाकृष्णदास
(४) पं० किशोरीलाल गोस्वामी
(५) बाबू कीर्तिप्रसाद खत्री

आवरण पृष्ठ पर सहज सादे आकर्षण के अतिरिक्त हिन्दी के चार स्तम्भों का चारों कोनों में वृत्ताकार चित्र छपा है । ऊपर की ओर सूरदास, तुलसीदास और नीचे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के चित्र हैं । मध्य में साक्षात् सरस्वती का मोहक चित्र है, उसके नीचे देवनागरी लिपि में साक्षात् `सरस्वती ` है और उसके नीचे लिखा है -- `काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित ।`

'सरस्वती' का जनवरी सन् १६०० ई० का प्रथम अंक अनेक मौलिक बिशेषताओं को लेकर हिन्दी में अवतीर्ण हुआ । 'सरस्वती' को सम्पादन कला में नागरीप्रचारिणी सभा के संचालकों का विशिष्ट मनोयोग था । विषय-चयन एवं सामग्री सम्पादन में सभा की कलम का उपयोग 'सरस्वती' के लिए किया गया था । प्रथम अंक में 'सरस्वती' के अचल और दिगन्त व्यापिनी स्थायित्व की उद्घोषणा की गई । एक साल तक 'सरस्वती' इसी सम्पादन समिति के निर्देश पर निकलती रही । 'सरस्वती' के दिसम्बर सन् १६०० ई० के अंक में श्री चिन्तामणि घोष ने 'प्रकाशक का निवेदन' शीर्षक गवेषणा में अपूर्व और मार्मिक विचार व्यक्त किए । उन्होंने अनेक प्रकार के कटाक्षों के प्रहार से सरस्वती को नष्ट करने के लिए उतारु लोगों की भी चर्चा की है । 'सरस्वती' को आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण के लिए सभा से अनुमोदन और प्रतिष्ठा सन् १६०२ ई० में भी प्राप्त हुई और इस वर्ष केवल बाबू श्यामसुन्दरदास इसके सम्पादक थे । तीसरे वर्ष डा० श्यामसुन्दरदास तथा सभा अपने व्यस्ततम जीवन में हिन्दी के अन्य निर्माणात्मक कार्यों में लगे रहे । इसकी सेवा वे आगे न कर सके । दिसम्बर सन् १६०२ ई० के 'सरस्वती' अंक में बिविध वार्ता के प्रसंग में पृष्ठ ३६१ पर निवेदन किया गया है कि 'दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके सम्पादन का भार पूरा-पूरा मेरे ऊपर रहा । परन्तु चौथे वर्ष के प्रारम्भ से यह कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के अधीन रहेगा ।'

'सरस्वती' के इस परिवर्तन का कारण सभा द्वारा सम्पादन के लिए समय का अभाव था । सभा और डा० श्यामसुन्दरदास नाम के लिए 'सरस्वती' का सम्पादन नहीं करना चाहते थे इसीलिए 'सरस्वती' के प्रति उनकी सहानुभूतिमयी दृष्टि 'सरस्वती' की उन्नति के लिए हिन्दी का मार्ग प्रशस्त करती रही । द्विवेदी जी झांसी में रहकर 'सरस्वती' का सम्पादन करते थे । सन् १६०३ ई० से सभा की उक्त अनुमोदित प्रतिष्ठा का

उपयोग `सरस्वती ` में सदैव आवरण पृष्ठ पर किया गया । सन् १९०५ ई० तक यह प्रतिष्ठा प्राप्त करने का सौभाग्य `सरस्वती ` को मिला -- `परन्तु कुछ सैद्धान्तिक विवादों को लेकर सभा ने दुख के साथ `सरस्वती` के प्रकाशक के अपवाद पूर्ण लेखों को छापने से न रोक सकने के कारण अपना सम्बन्ध तोड़ लिया ।

हिन्दी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित सरस्वती का अपना मौलिक, ठोस और महत्वपूर्ण स्थान है । `सरस्वती के प्रथम अंक में सम्पादन समिति सदस्यों ने अपनी रचनाएं छपवाकर `सरस्वती` को हार्दिक प्रतिष्ठा प्रदान की । `सरस्वती` के द्वारा केवल आधुनिक हिन्दी साहित्य का ही निर्माण नहीं हुआ अपितु हिन्दी भाषा के इतिहास में उसका निश्चित विशिष्ट स्थान बन गया है । वर्तमान हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों ने सरस्वती के माध्यम से हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया । आज भी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक आधे से अधिक ज्ञानार्जन `सरस्वती ` की पुरानी फाइलों से करते हैं । `सरस्वती ` साहित्य की चिर यशस्विनी संस्थान है । उसकी सेवायें स्वर्णाक्षरों में चिर स्मरणीय रहेंगी । खड़ी बोली में कविता लिखने की प्रेरणा सरस्वती ने ही दी और `सरस्वती` ने ही प्रौढ़ता हिन्दी को प्रदान की । देश की जनता के लिए साहित्यिक भाषा के विशाल जंगल को काट-छांट कर उपजाऊ धरती बनाने का कार्य भी सरस्वती ने ही किया । `सरस्वती` में प्रकाशित रचनाओं में हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर इतिहास लिखने की समस्त सामग्री बिखरी हुई है । साहित्य का अभ्युदय और नि:श्रेयस का कारण अनेक अर्थों में `सरस्वती ` है। सरस्वती की फाइलों से अनुप्राणित होकर आलोचकों ने आधुनिक युग और द्विवेदी युग की स्थापना की है । `सरस्वती` की तुलना में भारत की किसी भी भाषा की एक भी साहित्यिक पत्रिका नहीं टिक सकती । डा० श्री कृष्णलाल की मान्यता है, `बीसवीं शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्षों में `सरस्वती ` ही सबसे अच्छी पत्रिका थी जिसने हिन्दी भाषा की अपूर्व

अनुपम सेवा की ।`

स्वर्गीय निराला जी ने `सरस्वती` के लिए आभार व्यक्त करते हुए कहा था, `जिसकी हिन्दी के प्रकाश के परिचय के समक्ष मैं आंख नहीं मिला सका लजाकर हिन्दी शिक्षा के संकल्प से कुछ दिनों बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हिन्दी हीन प्रान्त में बिना शिक्षक के `सरस्वती` की प्रतियां लेकर पद-साधना की और हिन्दी सीखी ।`

सरस्वती पत्रिका को जन्म देने का श्रेय इंडियन प्रेस के अलावा काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को था । सभा के तत्वावधान में ही पहले पत्रिका निकलती थी । द्विवेदी जी स्वयं सभा के सदस्य थे । किसी हद तक यह टक्कर सभा से नहीं श्यामसुन्दरदास जी से थी । द्विवेदी जी की तरह श्यामसुन्दरदास भी हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर चुके थे । नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने अभ्युदयकाल में जो महत्वपूर्ण कार्य किया उसका श्रेय सबसे अधिक श्यामसुन्दरदास जी को है ।

श्यामसुन्दरदास की तरह द्विवेदी जी में भी अधिकार-भावना काफी थी । उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त को सचेत किया था, `आगे से आप सरस्वती के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छपाने का विचार छोड़ दीजिए । जिस कविता को हम चाहें उसे छापेंगे । जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइये, न किसी को दिखाइये । ताले में बन्द करके रखिये ।`[१]

कामता प्रसाद गुरु सरस्वती के प्रमुख लेखकों में थे । `सरस्वती`

----

१. द्विवेदी पत्रावली, पृष्ठ ४६

के द्विवेदी स्मृति अंक में कामताप्रसाद गुरु ने अपने लेख में बताया है कि नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिन्दी व्याकरण लिखने का काम द्विवेदी जी की 'सिफारिश' से सौंपा था। व्याकरण लिखते समय गुरु जी के सामने यह प्रश्न आया कि द्विवेदी जी के प्रयोगों की आलोचना करें या न करें। उनके व्याकरण का संशोधन करने के लिए जो समिति बनाई गई उसके सभापति द्विवेदी जी ही थे। इस सम्बन्ध में गुरु जी ने लिखा है, 'इस समिति की बैठक काशी में हुई थी, जहाँ द्विवेदी जी ने मेरे विशेष आग्रह पर सहर्ष पधारने की कृपा की थी। नियमों पर बाद-विवाद होते समय मैंने द्विवेदी जी से उनके कुछ चिन्त्य प्रयोगों की चर्चा की, जैसे - राजे, योद्धे, जुदा जुदा नियम, हजारहा इत्यादि। इस पर उन्होंने मुझसे कहा कि आप मेरे जिन प्रयोगों को अशुद्ध समझते हैं उनकी स्वतन्त्रता से समालोचना कर सकते हैं। ऐसे प्रयोगों का मैंने अपने व्याकरण में उचित खण्डन-मण्डन कर दिया है, पर उनके विषय में उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा-सुना।'

द्विवेदी जी की कोमलता और कठोरता, दोनों का स्रोत एक ही था। यह स्रोत था हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा। इस निष्ठा के कारण जिसे वह अवांच्छित समझते थे, उनकी कठोर आलोचना करते थे, किन्तु इसमें व्यक्तिगत रागद्वेष बहुत कम होता था। जितना होता था उसे भी निकालने का प्रयत्न निरन्तर करते रहते थे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने अहंकार-शत्रु की बात कुछ बढ़ा-चढ़ाकर की है। उनकी आलोचना हिन्दी की उन्नति और विकास के भाव से प्रेरित होती थी। यही कारण है कि शायद ही कोई उनके द्वारा आलोचित व्यक्ति ऐसा हो जिसने कुछ समय तक आलोचना का बुरा मानने के बाद उनके सामने सिर न झुका दिया हो। हिन्दी लेखकों को सरस्वती पत्रिका से केन्द्रबद्ध करना आसान काम नहीं था। जब यह पत्रिका प्रसिद्ध हो गई, तब भी उपयुक्त लेख प्राप्त करते रहना सरल नहीं था। यदि द्विवेदी जी अपना दल बनाकर सरस्वती में इस दल के लेखकों

की चीज़ें ही छापते, जो कुछ छापते, उसके स्तर का ध्यान न रखते तो सरस्वती हिन्दी की जातीय पत्रिका न होती, वह हिन्दी प्रतिनिधि-पत्रिका न होती। इसका कारण द्विवेदी जी के चरित्र की यह विशेषता थी कि उनके लिए हिन्दी के प्रति निष्ठा सर्वोपरि थी ।

सरस्वती की लोकप्रियता का एक कारण हिन्दी नवजागरण की अपनी शक्ति थी । यह शक्ति बिखरी हुई थी । द्विवेदी जी की युगान्तकारी भूमिका यह थी कि उन्होंने बिखरी हुई शक्ति को एक पत्रिका के माध्यम से एकताबद्ध किया ।

हिन्दी में सरस्वती से पहले, उसके साथ-साथ और उसके बाद बहुत सी पत्रिकाएं निकलीं और निकलती रहीं पर किसी भी पत्रिका में हिन्दी लेखक अपनी रचनाएं छपाने के लिए आतुर और उत्सुक नहीं दिखाई देते जैसे सरस्वती में । मैथिलीशरण गुप्त ने अपने संस्करण में लिखा है, 'इसी बीच कलकत्ते के वैश्योपकारक मासिकपत्र में मेरे पद्य छपने लगे थे । इससे मुझे कुछ अभिमान भी हो गया था । परन्तु हिन्दी की एक मात्र प्रतिष्ठित पत्रिका सरस्वती थी । मन मेरा उधर ही लगा था ।' (द्विवेदी पत्रावली, पृष्ठ ४७) । लेखकों को सरस्वती में अपनी रचनाएं छपाने की यह उत्सुकता इसलिए थी कि द्विवेदी जी भाषा का परिष्कार करेंगे । पर सरस्वती के महत्व का कारण यह नहीं था । यदि द्विवेदी जी द्वारा सम्पादित सरस्वती के पुराने अंक उठाकर किसी भी नई-पुरानी पत्रिका के अंकों से मिलाये जायें तो ज्ञात होगा कि पुराने हो चुकने पर भी इन अंकों में सीखने-समझने के लिए अन्य नवीन पत्रिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सामग्री है । सरस्वती सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी, वह हिन्दी नव जागरण का मुख पत्र थी, और हिन्दी भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका थी । ज्ञान की पत्रिका होने के अतिरिक्त वह कलात्मक साहित्य की पत्रिका थी, ऐसे साहित्य की जो रीतिवादी रूढ़ियों का नाश करके नवीन सामाजिक ज्ञ

सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रचा जा रहा था । इसलिए उसने हिन्दी साहित्य में और उसके बाहर व्यापक स्तर पर भारतीय साहित्य में वह प्रतिष्ठा प्राप्त की जो बीसवीं सदी में अन्य किसी पत्रिका को न प्राप्त हुई। प्रेमचन्द और कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित माधुरी और निराला द्वारा सम्पादित सुधा, पुन: प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित हंस, अपने-अपने ढंग की विशिष्ट पत्रिकाएं थीं पर सरस्वती की तरह इन्हें सर्वमान्य जातीय गौरव प्राप्त नहीं था ।

सरस्वती पत्रिका का मुख्य उद्देश्य था कि हिन्दी के पाठकों का मनोरंजन करना और उसके साथ ही साथ भाषा को सुव्यवस्थित करना यही नहीं अपितु सरस्वती का उद्देश्य था कि इसमें हिन्दी की वृद्धि तो हो ही साथ ही यथार्थ का भी चित्रण हो । इस समय के लेखकों के लेखनी को उत्साहित तथा उत्तेजित 'सरस्वती' ने ही किया । यह पत्रिका अपनी लोकप्रियता के कारण सभी लेखकों को कुछ लिखने के लिए उत्तेजित करती थी। प्रारम्भ में तो सरस्वती पत्रिका सचित्र प्रकाशित होती थी किन्तु बाद में इसमें चित्रों का प्रकाशन समाप्त प्राय: हो गया था ।

सरस्वती पत्रिका एक ऐसी पत्रिका थी जिसमें सभी विषयों से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते थे । इसमें गद्य, पद्य, काव्य, इतिहास, जीवनचरित, पंचहास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान शिल्प, कला-कौशल आदि साहित्य के विषयों का समावेश रहा, साथ ही विषयों की समालोचना भी प्रस्तुत की जाती थी । भाषा के विषय में यह पत्रिका अपने में प्रथम थी । इसमें केवल सुलेखकों के लेखों को ही प्रकाशित किया गया जिसमें हिन्दी भाषा की उन्नति हुई । इसके अतिरिक्त सरस्वती का उद्देश्य बड़ा व्यापक था । यह संकुचित अर्थों में 'साहित्यिक' पत्रिका नहीं थी । हिन्दी के सभी अंगों को प्रस्तुत कर, पाठकों की रुचि उत्पन्न करने के साथ ही उन्हें आधुनिक तथा पुरातनज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेखों से उनका ज्ञान

बढ़ाना ही इसका उद्देश्य था । बीच-बीच में सरस्वती में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए किन्तु वह सब कुछ ही समय तक चल सका ।

सम्पादन कार्य के लिए सम्पादक मंडल ही उत्तरदायी था और इस सम्पादक मण्डल ने अपने पूरे मनोयोग से सम्पादन का कार्यभार वहन किया जिसके फलस्वरूप सरस्वती के प्रथम वर्ष में ही ५६ लेख प्रकाशित हुए । सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों से सम्बन्धित सूची को इस प्रकार रख सकते हैं :—

(१) यात्रा, भूगोल, स्थान वर्णन से सम्बन्धित लेखों में काश्मीर यात्रा, रैस्ट नगर का देव मन्दिर तथा डा० नानसैन का उत्तरी ध्रुव का भ्रमण ।

(२) भाषा साहित्य की दृष्टि से सरस्वती में नागरी अक्षर का प्रचार, महाकवि भारवि, हम्मीर हठ, नैषध चरित-चर्चा और सुदर्शन, पं० श्रीधर पाठक की कविता 'हिन्दी-काव्य' ।

(३) इतिहास पुरातत्व से सम्बन्धित भारतवर्ष की पुरानी इमारतें, लंका का आविष्कार, कोहनूर, दामोदरराव की आत्म कहानी, पिट(हीरा) आदि लेख प्रकाशित हुए ।

(४) सरस्वती में जीवनचरित भी प्रकाशित हुए जिनमें कुछ महान् विभूतियों के जीवन चरितों का उल्लेख इस प्रकार है —
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अर्जुन मिश्र, शिवप्रसाद सितारेहिन्द, अप्पयदीक्षित, लार्डकर्जन, मौलवी सैयदअली बिलग्रामी, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, सर सैयद अहमद खां, जमशेदजी नसरवानजी ताता, प्रोफेसर फ्रेडरिक मेक्समूलर, राजालक्ष्मण सिंह, सरदार दयालसिंह मजीठिया आदि ।

(५) विज्ञान, विदेशी साहित्य और विविध जैसे विषयों में सिम्बेलिन, प्रकृति की विचित्रता, फोटोग्राफी एथेंसवासी टाइमन, जन्तुओं की

सृष्टि, पैरिक्लिस, रेलगाड़ी, कौतुकमय मिलन, एक साधारण प्रश्न, मानवी शरीर, भारतवर्ष की शिल्पविद्या आदि भी सरस्वती की ही देन पाठकों को थी ।

इन सभी विषयों को यदि देखा जाय तो हमें यह ज्ञात होगा की सरस्वती के सम्पादक मंडल की दृष्टि कितनी व्यापक और विशाल थी । सरस्वती के प्रथम वर्ष में जो जीवन-चरित प्रकाशित हुए उनमें हिन्दू,मुसलमान, पारसी, सिक्ख, अंग्रेज सभी थे । साहित्यिक, राजनीतिज्ञ, संस्कृतज्ञ, उद्योगपति, समाजसेवी— सभी वर्गों के महान् पुरुषों का परिचय हमें सरस्वती द्वारा मिलता है । इस प्रकार आरम्भ ही से सरस्वती को अखिल भारतीय बनाने का प्रयत्न किया गया ।

विषयों की विविधता से स्पष्ट है कि सरस्वती के संस्थापक और सम्पादक सरस्वती को एक ज्ञानवर्द्धक साहित्यिक पत्रिका बनाना चाहते थे । सरस्वती में जहां एक ओर संस्कृत के महाकवि भारवि और प्राचीन एथेंस के वाग्मी पैरिक्लीज पर लेख हैं, वहां दूसरी ओर डा० नानसन की उत्तरीध्रुव यात्रा का भी वर्णन है । हम्मीरहठ और पं० श्रीधरपाठक की कविता आधुनिक प्रणाली की समालोचना के हिन्दी पत्रों में सर्वप्रथम लेख थे । कहानी साहित्य को यदि देखा जाय तो हिन्दी की पहली कहानी `इन्दुमती` भी सर्वप्रथम सरस्वती में ही प्रकाशित हुई थी जिससे हिन्दी कहानी साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है । कविताओं के क्षेत्र में सर्वप्रथम ब्रजभाषा के युग में सरस्वती में संस्कृत कविताओं का अनुवाद तथा कुछ खड़ी बोली की कविताएं भी प्रकाशित हुई । जिसमें पहली खड़ी बोली की कविता पं० किशोरी लाल गोस्वामी जी की थी तथा दूसरी खड़ी बोली की कविता पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की थी ।

नागरी लिपि और हिन्दी प्रचार एवं प्रसार का आरम्भ

सरस्वती पत्रिका से ही माना जाता है । नागरी अक्षरों के लेखों में भारतेन्दु, राजा शिवप्रसाद और राजालक्ष्मण सिंह के जीवन चरित्रों को प्रकाशित कर हिन्दी आन्दोलन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया तथा संयोग से अप्रैल में उत्तर प्रदेश में फोट लाट सर एंथनी मैकडानल ने नागरी लिपि को कचहरियों में भी स्थान दे दिया । इस प्रकार यदि देखा जाय तो सरस्वती ने सभी क्षेत्रों में विस्तार किया ।

सरस्वती पत्रिका के जन्म के चार महीने के अन्दर उत्तर प्रदेश में हिन्दी को यह पहली सफलता मिली थी । सरस्वती ने जिस ढंग से तत्कालीन शैली में उसका वर्णन किया है उससे उसकी हिन्दी सम्बन्धी नीति का पता चलता है ।

द्विवेदी जी इस बात के लिए उत्सुक रहते थे कि पाठकों को नयी-नयी बातों की जानकारी प्राप्त हो और उनका ज्ञान-वर्द्धन हो । `विविध विषय' शीर्षक के अन्तर्गत वे अंग्रेजी और दूसरी भारतीय भाषाओं के पत्रों में प्रकाशित लेखों से प्राप्त जानकारी सरल शैली में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जाती थी । किन्तु सबसे महत्वपूर्ण उनकी सम्पादकीय टिप्पणियां होती थीं । ये टिप्पणियां विविध विषयों पर होती थी । सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर उनकी टिप्पणियां ज्ञानवर्द्धक और विचारों को उत्तेजक करती थीं । नियमित रूप से सम्पादकीय टिप्पणियां लिखना सबसे पहले सरस्वती ने ही आरम्भ किया था ।

आरम्भ में सरस्वती में केवल ३६ पृष्ठ होते थे और वार्षिक मूल्य केवल ३ रुपया था । किन्तु बाद में पृष्ठ संख्या ४० कर दी गई और मूल्य वही रहा । सन् १६१६ में एक अंक की पृष्ठ संख्या बढ़ाकर ७२ पृष्ठ हो गयी । उसका वार्षिक मूल्य ४ ।।) रु० कर दिया गया । अन्त में १६२० में द्विवेदी जी का स्वास्थ्य इतना गिर गया कि उन्होंने सम्पादन से निवृत्ति चाही ।

द्विवेदी जी के बाद सन् १९२१ में सरस्वती के सम्पादक श्री पुन्नालाल पदुमलाल बख्शी नियुक्त हुए, किन्तु १९२५ के अन्त में वे उसे छोड़कर चले गये । १९२६ में देवीदत्त शुक्ल जी को यह भार ग्रहण करना पड़ा । शुक्ल जी ने द्विवेदी जी के साथ रहकर सरस्वती के सम्पादन में सहायता की थी और वे द्विवेदी जी कार्य-विधि और परम्पराओं से पूर्णरूप से परिचित थे । उन्होंने अपना कार्य बड़े सुचारु रूप से आरम्भ किया । १९२७ में बख्शी जी लौट आये, किन्तु डेढ़ साल बाद फिर लौट गये और शुक्ल जी पूर्ववत् सम्पादन कार्य करने लगे । द्विवेदी जी के समय में ही सहायक-सम्पादक पद की सृष्टि की गयी थी । उनके समय में इस पद पर पं० उदयनारायण बाजपेयी, पं० हरिभाऊ उपाध्याय (अजमेर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, राजस्थान के वर्तमान वित्त मंत्री) और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी रह चुके थे । शुक्ल जी के समय में पं० ठाकुरप्रसाद मिश्र ने कई वर्षों तक उनकी सहायता की । पं० शम्भूनाथ शुक्ल (बिन्ध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री तथा मध्य प्रदेश के वर्तमान वन-मंत्री) भी कई वर्षों तक सरस्वती के सहायक रहे । उनके जाने के बाद ठाकुर श्रीनाथसिंह सरस्वती के संपादक नियुक्त किये गये । ठाकुर साहब को साहित्य के साथ-साथ राजनीति में भी रुचि थी । तत्कालीन जनरल मैनेजर श्री हरिकेशव घोष को भी सरस्वती को अधिक उपयोगी और अधिक जनप्रिय बनाने का उत्साह था । अतएव सरस्वती में राजनीतिक लेख छपने भी प्रारम्भ हो गये । इस समय सरस्वती में प्रकाशित भाई परमानन्द के एक लेख का उत्तर पं० जवाहरलाल नेहरू ने सरस्वती में दिया था । नेहरू जी के कई लेख सरस्वती में छपे । किन्तु ठाकुर श्रीनाथ सिंह सन् १९३५ में 'दल' के सम्पादक होकर चले गये और उनके स्थान पर पं० उमेशचन्द्र मिश्र संयुक्त संपादक बनाये गये । शुक्ल जी ने १९२५ से १९२७ तक और फिर १९२९ से १९४६ तक लगातार सरस्वती का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया । किन्तु १९४६ में उनकी आंखें खराब हो गयीं और प्रेस ने उन्हें पेंशन दे दी । उनके स्थान पर

पं० उमेशचन्द्र मिश्र सम्पादक नियुक्त हुए किन्तु कुछ ही समय बाद उनकी होने के फलस्वरूप प्रेस ने बख्शी जी को फिर से निमन्त्रित किया और पं० देवीदयाल चतुर्वेदी उनके सहायक नियुक्त हुए। बख्शी जी फिर यह कार्य अधिक समय तक न कर सके और फिर पं० देवीदयाल चतुर्वेदी जी ने जून १६५५ तक संम्हाला।

सन् १६८० में श्री हरिकेशव घोष ने वर्तमान सम्पादक स्वीकार करने का आग्रह किया किन्तु उनके मध्य भारत में शिक्षा संचालक पद पर नियुक्त होने के कारण बीच में ही काम रह गया तथा १६५३ में उनकी मृत्यु हो गई।

सरस्वती इस बात में भाग्यशाली रही कि उसे सभी प्रकार के लेखकों का सहयोग प्राप्त हुआ। पिछले वर्षों में हिन्दी का शायद ही कोई बड़ा लेखक हो जिसने सरस्वती में न लिखा हो। आरम्भिक तीन वर्षों में काशी के साहित्यिकों ने विशेष सहयोग दिया, और बाद में सारे देश के विद्वानों और लेखकों की कृपा होती रही।

भारतेन्दु युग के ऐसे लेखक जैसे - बाबू राधाकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी से आरम्भ कर उन पन्नों में हम प्रत्येक दशक के प्रमुख लेखकों और साहित्यिक प्रवृत्तियों की झलक पा सकते हैं। खड़ी बोली में कविता का पूरा विकास सरस्वती के पुराने अंकों में देखा जा सकता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचरित उपाध्याय की कविताओं से लेकर बाबू मैथिलीशरणगुप्त के युग तक पहुंचने में बहुत कम देर लगती है। पं० नाथूरामशंकरशर्मा, रायदेवीप्रसादपूर्ण, सत्यशरण रतूड़ी, आदि कितने ही कवि सरस्वती द्वारा चमके। गुप्तजी ने खड़ी बोली की कविता को स्थायित्व दिया और उसे प्रतिष्ठा दी। फिर छायावाद का उदय होता है। पं० सुमित्रानन्दन पंत ने सरस्वती के माध्यम से ही उसे हिन्दी-जनता

तक पहुंचाया । और फिर सरस्वती में जयशंकर प्रसाद, निराला और महादेवी जी की कविताओं को हिन्दी संसार के पास पहुंचाया । प्रसाद जी ने कामायनी के कुछ सर्ग सरस्वती में उसके प्रकाशन के पूर्व प्रकाशित करवाये थे । उसी प्रकार बच्चन जी की मधुशाला का भी प्रथम प्रकाशन सरस्वती में ही हुआ । श्री सनेही, श्री हितैषी, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा आदि सभी कवियों की कविताएं प्रकाशित करने का गौरव सरस्वती को प्राप्त है ।

इसी प्रकार कहानी तथा लेखों के सम्बन्ध में भी पं० किशोरी लाल गोस्वामी जी की पहली कहानी `इन्दुमती` तथा चन्द्रधरशर्मा गुलेरी जी की `उसने कहा था ` सरस्वती में प्रकाशित हुई थी । विशम्भरनाथ कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंदजोशी, उषादेवी मित्र, अमृतलाल नागर आदि बीसों लेखक कहानी लिखने लगे और सरस्वती उनसे अलंकृत होने लगी ।

आरम्भ से सरस्वती सचित्र प्रकाशित होती थी जिसमें अवीरन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बोस, जामिनीमोहनराय, गगनेन्द्रनाथ टागोर, असित हालदार, आदि बंगला शैली के कलाकारों के चित्र प्रकाशित हुए ।

सरस्वती को इस बात का गर्व है कि उसमें अजन्ता के चित्रों से लेकर, मध्यकाल की विभिन्न शैलियों तथा आधुनिककाल के राजा रविवर्मा और अवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर देवकृष्ण जोशी, सुधीर खारतगीर और क्षितीश मजुमदार तक की कला का रसास्वादन कराकर पाठकों के सौन्दर्य-बोध की वृद्धि की ।

अध्याय २

सरस्वती का स्वरूप और विकास

सरस्वती पत्रिका का आविर्भाव उस समय हुआ जब हिन्दी कविता रीतिकालीन प्रवृत्तियों को त्याग कर आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियों से शनैः शनैः ओतप्रोत हो रही थी । सरस्वती में हिन्दी कविता के इस संक्रान्तिकाल की कवितायें दृष्टिगोचर होती हैं । सरस्वती के प्रारम्भिक अंकों में रीतिकालीन परम्परा की कवितायें मिलती हैं, साथ ही साथ उदीयमान छायावादी काव्य की भी प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से दृष्टिगोचर होती हैं ।

रीतिकाल के अन्तर्गत भक्तिकाल के अलौकिक आलम्बन को लौकिक धरातल पर उतार कर उसके रूप-सौन्दर्य एवं भाव-व्यापार का वर्णन किया गया । राधा-कृष्ण रीतिकाव्य में सामान्य नायक और नायिका के रूप में चित्रित किए गए और इनके माध्यम से आलम्बन और आश्रयगत विविध चेष्टाओं, मनोभावों और अनुभूतियों की अभिव्यंजना हुई । रीति सम्बन्धी प्रवृत्ति का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में भी रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का समावेश दिखलाई देता है । अष्टयाम, दिनचर्या नख-शिख-सौन्दर्य, संयोग-वियोग की विविध स्थितियों का वर्णन, मान, ऋतु-वर्णन सुलभ उद्दीपन तथा अलंकारिकता इस प्रवाह की कविताओं में प्रचुर मात्रा में मिलती है ।

प्राचीन काल से कृष्ण-काव्य का सबसे अधिक लोकप्रिय विषय राधा-कृष्ण प्रेम और गोपी-कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं के प्रसंग रहे हैं । रीतिकाल भी प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं वरन् अप्रत्यक्ष रूप से इससे प्रभावित दिखाई पड़ता है । रीतिकाल के शृङ्गारी साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें शृङ्गार के आश्रय भी उस युग के धर्म और आध्यात्म के आश्रय की भाँति श्रीकृष्ण ही हैं ।

रीतिकाल के काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी । इस धारा का

अधिकांश काव्य ब्रजभाषा में है, अत: कवियों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हम इस भाषा में विशेष निखार, प्रांजलता एवं माधुर्य समाविष्ट देखते हैं।

'सरस्वती' में परम्परागत रीतिकालीन काव्यात्मक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। छायावाद के अभ्युदय के पूर्व और छायावाद के समानान्तर इस प्रकार की कवितायें सरस्वती में समय-समय पर प्रकाशित हुई हैं। जिनमें रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह हुआ है।

'राधाकृष्णदास' कृत 'छप्पन की विदाई', युगीन चेतना से जुड़ी हुई आधुनिक काल के प्रारम्भिक चरण की ब्रजभाषा की कविता है[1]। इसी प्रकार 'प्रतापविसर्जन' ब्रजभाषा की इस कविता में अतीत के गौरव का स्मरण दिलाकर राष्ट्रीय चेतना मुखरित की गई है[2]।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' कृत 'वियोग' में ब्रजभाषा का टकसाली रूप (घनाक्षरी छन्द) परम्परानुमोदित वर्णन है[3]। 'ब्रजबाला' भ्रमरगीत परम्परा में परिनिष्ठित ब्रजभाषा तथा घनाक्षरीछन्द का प्रयोग है और इनकी गोपियां तर्कशीला हैं[4]।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'कोकिलाष्टक' में ब्रजभाषा के प्रयोग के साथ-साथ हमें सवैया छन्द, काव्यानुविधा के लक्षण भी मिलते

---

१. राधाकृष्णदास 'छप्पन की विदाई' १६०० ई०, सरस्वती हीरक-जयन्ती अंक, पृ० सं० १।
२. राधाकृष्णदास, 'प्रतापविसर्जन' १६०२ ई०, सरस्वती हीरकजयन्ती अंक, पृ० सं० २।
३. बाबूजगन्नाथदास 'रत्नाकर' कृत 'वियोग' १६२७ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृ० सं० ६।
४. बाबूजगन्नाथदास 'रत्नाकर' कृत 'ब्रजबाला' १६३१ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृ० सं० ६।

है[१]। इनकी `गंगावतरण` ब्रजभाषा में लिखी हुई वर्णनात्मक कविता है। इसमें धार्मिक आस्था तो है ही साथ में नवीन सन्दर्भों से सम्पृक्त करने में कवि को महारत हासिल हुआ है। इसमें राष्ट्रीयता के स्वर हैं[२]।

पं० रामचन्द्रशुक्ल की `शिशिर-पथिक` ब्रजभाषा में है। भावात्मक उच्चता में बेजोड़ यह कविता एक विरह-व्यथिता नायिका के लिए आकस्मिक प्रिय-मिलन का संदेश एवं आदान लेकर प्रस्तुत हुई है। भावों के वर्णन के सन्दर्भ नायिका का आतुर मन रीतिकालीन नायिकाओं के समतुल्य है। शैली में भाषागत कसावट होने के कारण सहज प्रवाह का अभाव मिलता है[३]।

पं० नाथूराम `शंकर` शर्मा `सरस्वती की महावीरता` ब्रजभाषा में रचित यह कविता घनाक्षरी छन्द की परम्परा का पोषण करती है। सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप यह `सरस्वती-पत्रिका` का प्रभाव-वर्णन करके उसका प्रचार करने का प्रयास है[४]। `वसन्तसेना` शूद्रक

---

१. पं० किशोरीलाल गोस्वामी `कोकिलाष्टक` १९०१ ई०, सरस्वती हीरक-जयन्ती अंक, पृ० सं० ६।

२. पं० किशोरीलाल गोस्वामी, `गंगावतरण` १९०२ ई०, सरस्वती हीरक-जयन्ती अंक, पृ० सं० ९।

३. पं० रामचन्द्रशुक्ल `शिशिरपथिक` १९०५ ई०, सरस्वती हीरकजयन्ती अंक, पृ० सं० ३३।

विकल, पीड़ित पीय पयान ते, चहुं रह्यो नलिनी-दल घेरि जो,
मुजन भेंटि तिन्हैं अनुराग सों, गमन-उद्यत भानु लखत हैं।

४. पं० नाथूराम `शंकर` शर्मा `सरस्वती की महावीरता`, १९०७ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृ० सं० ३७।

कृत मृच्छकटिकम् की नायिका वसन्तसेना का आख्यान ब्रजभाषा में घनाचारी छन्द में संयोजित किया गया है । वर्णन रीतिकालीन परम्परा का सा आभास देता है । वसन्तसेना के रूप-सौन्दर्य का नख-शिख वर्णन शृङ्गारिकता की चरम सीमा को स्पर्श करता है तथा यह वर्णन `शंकर ` शर्मा ने अत्यन्त जिन्दादिली के साथ अभिप्रस्तुत किया है[1] ।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र का `कृष्ण की वंशी ` ब्रजभाषा काव्य है । यह काव्य कृष्णभक्ति परम्परा पर आधारित है[2] ।

पं० मन्नन द्विवेदी `गजपुरी `, `भगवान श्रीकृष्ण` देशानुराग व्यंजक भक्ति भावनापूर्ण यह कविता कृष्ण भक्ति परम्परा में समाविष्ट की जा सकती है[3] ।

उक्ति वैचित्र्य का तात्पर्य है किसी भी बात को आलंकारिक रूप में कहना । यह बात हमें रीतिकाल में दिखाई देती है जिसका प्रभाव हमें कविताओं में भी देखने को मिलता है ।

श्री `ईश्वरी प्रताप नारायण राय` कृत `रहस्यकाव्य-शृङ्गार` से `प्रतिज्ञा` कविता में मिलती है ।

----

१. पं० नाथूराम `शंकर` शर्मा `वसन्तसेना` १६०७ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ३८ ।

२. पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, `कृष्ण की वंशी ` १६२८ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ७८ ।

३. पं० मन्नन द्विवेदी `गजपुरी ` `भगवान श्रीकृष्ण`, १६१० ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ४८ ।

रीतिकाल के कलाकाल के साहित्य को देखा जाये तो उसमें जितनी अधिक प्रकृति की विविधरूपता है उतनी अधिक हिन्दी साहित्य के किसी काल में नहीं है । ऋतु-वर्णन की शैली में प्रत्येक ऋतु का सौन्दर्य और उसका मनोभावों पर जो प्रभाव है, उसका चित्रण, संयोग और वियोग दोनों पक्षों में बड़ी सरलता के साथ चित्रित किया है ।

पं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' 'वसन्त' परम्परापोषित ऋतुवर्णन ही नहीं अपितु कवि की समर्थ लेखनी ऋतु विशेष के समग्र क्रिया-कलापों को अभिव्यञ्जित करती है[1]।

पं० श्रीधरपाठक 'वर्षाऋतुवर्णन' कालिदास के ऋतुसंहार के वर्षा वर्णन से प्रभावित भावानुवाद, शृंगारवर्णन संस्कृतनिष्ठ शैली में किया गया है । इसमें मनहरण छन्द, प्रकृति-चित्रण किया है[2]।

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार 'कोकिल' कोयल के गुणों का वर्णन तथा प्रकृति वर्णन है[3]।

पं० सत्यनारायण कविरत्न 'हेमन्त' कवि ने हेमन्तऋतु के पारम्परिक वर्णन के साथ ही साथ सामाजिक विषमता पर प्रकाश-क्षेपण करके व्यंग्य के माध्यम से राष्ट्रोत्थान की परिकल्पना की है[4]।

---

१. पं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' 'वसन्त', १६०० ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ५ ।
२. पं० श्रीधरपाठक 'वर्षाऋतुवर्णन', १६०३ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ २० ।
   जिनके उपल नील - उत्पल- निभ,
   जल-भर-विनत, नवल-घन-चुम्बित - - - --
३. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार 'कोकिल' सरस्वतीहीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ २५
४. पं०सत्यनारायण कविरत्न 'हेमन्त', ,, ,, पृष्ठ २७

बाबू सत्यशरण रतूड़ी `बुलबुल` खड़ी बोली में है । बुलबुल के गुणों का प्रकृति के सापेक्ष जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है वह मानवीय संवेदना से एक आयाम पर सम्पृक्त होता है[१]।

श्री कुंवरचन्द्र प्रकाशसिंह `गीत` संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली का काव्य है । वैयक्तिक अनुभव का संगीतात्मक स्वरूप प्रकृति-वर्णन के सापेक्ष में वर्णित हुआ है[२]।

---

१. बाबू सत्यशरण रतूड़ी, `बुलबुल` १६०४ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ २८ ।

२. श्री कुंवरचन्द्र प्रकाशसिंह, `गीत` १६३७ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ १११ ।

आकर्षण विश्व तुम्हारा !
मज्जित इस छवि के समुद्र में
मिलता नहीं किनारा ।

अध्याय ३

कविता

छायावाद- रहस्यवाद

रीतिकाल एक प्रकार से सूक्ष्म के प्रति स्थूल का विद्रोह था । रीतिकालीन कविता में स्थूल के प्रति अत्यधिक आग्रह है । इसमें काव्य की चेतना और विषय-वस्तु स्थूल चित्रण पर विशेष महत्त्व देती थी । कविता का बाह्य साज-श्रृंगार आन्तरिक भाव से अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण माना जाता था । यह स्थूल इतना अधिक व्यापक हो गया था कि सूक्ष्म ने पुन: विद्रोह किया, परिणामस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ । छायावाद के सम्बन्ध में अनेक मत-मतान्तर मिलते हैं - डा० नगेन्द्र के अनुसार राजनीति में जो गाँधीवाद था साहित्य में वही छायावाद हुआ । अन्य अनेक विद्वानों ने भी छायावादी कविता के उद्गम से सम्बन्धित विचार व्यक्त किये हैं । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, 'छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुसार स्थापना करता है[१]।' जयशंकर प्रसाद के शब्दों में, 'वेदना के आधार पर जब स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगे तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया । रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई ।[२]' कुल मिलाकर छायावाद रीतिकालीन स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म और समकालीन जीवन समस्याओं से पलायन की प्रकृति से अनुप्राणित था ।

छायावादी कविता बाह्य ऐन्द्रिय बोध तथा चेतन मन की

---

१. आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ३१६-२०

२. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ १४३

सीमाओं को पार कर अचेतन के रहस्य लोक तक पहुंचती है और जाने-अनजाने उसका नर्मोद्घाटन करती है। ऐसे कार्यों में मुक्तिकामी मन की पैठ ही गहरी हो सकती है। यह मुक्ति उनके प्रेम-चित्रण में है। जो उसे द्विवेदी युग की मर्यादाओं से विजड़ित प्रेम-वर्णनों से पृथक कर देती है, उनके आध्यात्म-दर्शन में जो उन्हें भक्तिपरक काव्यों की बहुत कुछ साम्प्रदायिक तथा निर्वैयक्तिक अभिव्यक्तियों से अलग करने में समर्थ होती हैं, यह उनके प्रकृति वर्णन में है जो उन्हें उद्दीपनात्मक प्रकृति-वर्णन की काव्य-परम्परा से विछिन्न करके एक नूतन प्रवर्तन की ओर उन्मुख करती है। छन्द के बन्धन को तोड़ने में यही क्रियाशील है। मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना, अनुभूति और चिन्तन के भीतर से निकली हुई वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग की स्वत: समुच्छ्वित अभिव्यक्ति बिना किसी आयास के और बिना किसी प्रयत्न के, स्वयं निकल पड़ा हुआ भावस्रोत - ही छायावादी कविता का प्राण है।

छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में इतिवृत्तात्मकता, आशावाद, गांधी दर्शन, प्रकृति पर अन्नत-अलक्ष्य परमात्मा की छाया का आरोप गांधीदर्शन, आशावाद आदि की गणना की जाती है। `सरस्वती` में प्रकाशित रचनाओं में छायावादी कविता की उपर्युक्त विशेषतायें दृष्टि-गोचर होती हैं।

आशावाद का तात्पर्य यहां इस बात से है कि रचना में यह दिखाया है कि कष्ट सहते हुए भी वह प्रभु से मिलन की आकांक्षा रखता है। श्री जानकी वल्लभ शास्त्री का `नाविक` आशावादी काव्य है। इसमें प्रकृति-वर्णन छायावादी चेतना से सम्पृक्त है[१]। श्री सुमित्रानन्दन पन्त `दीपक`

----

१. श्री जानकीवल्लभशास्त्री, `नाविक`, १६३८ ई, सरस्वती पत्रिका

परम्परा में यह कविता व्यतिरेक शैली को अपनाकर व्यक्ति, समाज, व प्रकारान्तर से राष्ट्र-कल्याण के प्रति सचेष्ट हैं। यह खड़ी बोली में है[1]।

महात्मागांधी जी द्वारा प्रणीत साहित्य लोक-कल्याणार्थ साहित्य है। उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये। जन सामान्य का प्रतीक किसान है, जो मिट्टी में लिपटा हुआ सबके कल्याणार्थ अन्नोत्पादन करता है। उसकी समझ में आ पाने वाला साहित्य नितान्त सरलतम ही हो सकता है। उसका सृजन सामान्य और सरल भाषा में ही हो सकता है।

जीवन का उद्देश्य ही है आध्यात्मिक एकता से सानिध्य प्राप्त करना अर्थात् आत्मैक्य की अनुभूति कर पाना। डा० नगेन्द्र के अनुसार गाँधीवादी ही खुले रूप में रहस्यवाद है। इस प्रकार तत्कालीन वातावरणानुसार काव्य का सृजन किया गया -- सूत कातने से सम्बन्धित, सत्य-अहिंसा पर विश्वास तथा गांव आदि का वर्णन गांधीवादी काव्य के मुख्य विषय थे।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की `सरस्वती` पत्रिका में प्रकाशित `सेवावृत्ति की विगर्हणा` राष्ट्रीय चेतना से सम्पृक्त संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में युगीन सन्दर्भों से जुड़ी द्विवेदी युगीन कविता है[2]।

पं० सोहनलाल द्विवेदी `उठ उठ री मानस की उमंग`

----

१. पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र `निर्मल`, `स्वार्थी` १६२३ ई०

२. पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, `सेवावृत्ति की विगर्हणा` १६०२ ई० सरस्वती पत्रिका।

चाहे कुटी अति घने बन में बनावे,
चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे।.......

अभ्युत्थान का संदेश, प्राकृतिक अवयवों का वर्णनात्मक चित्रण, माधुर्य मिश्रित प्रसाद गुण चित्रित हैं[१]। श्रद्धा जलि महात्मागांधी की हिंसा पर कवि ने करुणा विगलित स्वरों से युग पुरुष की प्रशस्ति की है[२]।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी की `भौंरा और कली प्रेमोपहार` की संवाद शैली, खड़ी बोली आदि में छायावादी चेतना का बीज इनकी कविता में १९०० ई० में प्रकाशित `भौंरा और कली प्रेमोपहार` में परिलक्षित होता है[३]। इसी प्रकार बाबू मैथिलीशरण गुप्त `हेमन्त` में विशुद्ध प्रकृति वर्णन और छायावादी चेतना का सूत्र प्राप्त होता है[४]। `सरस्वती` पत्रिका में प्रकाशित पं० गिरिधर शर्मा, `नवरत्न` `शरद` सामान्य परम्परानुरूप सरल खड़ी बोली में शरद-ऋतु का वर्णन किया गया है। इसमें स्वर प्रकम्पित है तथा यत्किञ्चित् रूप से नीतिकथन को भी स्थान दिया गया है[५]। बाबू जयशंकर प्रसाद कृत `जलद आवाहन` कविता वर्णनात्मक शैली में है। जिसमें प्रकृति का सजीव-चित्रण अपने अन्तस में छायावादी मांसलता को छिपाये हुए है[६]। जयशंकर प्रसाद जी की `मुझको

---

१. पं० सोहनलाल द्विवेदी `उठ उठ री मानस की उमंग`, १९३९ ई० सरस्वती पत्रिका।

२. पं० सोहनलाल द्विवेदी, `श्रद्धांजलि`, १९४८ ई० सरस्वती पत्रिका।
बाबू मैथिलीशरणगुप्त, `हेमन्त`, १९०५ ई० सरस्वती पत्रिका

३. पं० किशोरीलाल गोस्वामी, `भौंरा और कली प्रेमोपहार` १९०० ई० सरस्वती पत्रिका।

४. बाबू मैथिलीशरणगुप्त, `हेमन्त`, १९०५ ई० सरस्वती पत्रिका।

५. पं० गिरिधरशर्मा `नवरत्न` `शरद` सरस्वती पत्रिका हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ४१।

६. बाबू जयशंकरप्रसाद `जलद आवाहन`, १९१२ ई०, सरस्वती पत्रिका।

न मिला है कभी प्यार ` छायावादी विशेषताओं से युक्त इस कविता में मानवीय अनुभूतियों को कोमलकान्त पदावली के साथ सम्पृक्त कर एक निश्चित आयाम पर समायोजित करती है । इसमें प्रेम का उदात्त स्वरूप अभिलषित है[1]। `प्यार ` छायावाद युगीन रचना है । इसमें प्राकृतिक बिम्बविधानों का अन्तरतम निष्णात भावनाओं के साथ सांगीतिक सामंजस्य स्थापित किया गया है[2]। `कामायनी` के ( १०५ वें सर्ग का एक अंश ) सरस्वती में प्रकाशित हुआ, जो छायावादी रचना तथा खड़ी बोली का श्रेष्ठतम महाकाव्य है[3]। बाबू पारसनाथ सिंह `प्रश्नोत्तर ` रवीन्द्रबाबू के बंगला से नैसर्गिक सौन्दर्य एवं शाश्वत सौन्दर्यशील वस्तुओं का प्रेमीकवि इस खड़ी बोली की कविता में छायावादी चेतना का प्रतिभाषित होता है[4]। पं० बालकृष्ण शर्मा `नवीन ` `कहो कब हो सकेगा दग्ध यह जीवन सजल सावन` खड़ी बोली की यह कविता १६८७ में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई । यह कविता जहाँ एक छायावादी रचना है वहीं दूसरी ओर अस्तित्व के संघर्ष में सन्नद्ध होने के कारण इसमें प्रगतिवाद के भी लक्षण प्राप्त होते हैं[5]। श्री सुमित्रानन्दनपन्त `स्वप्न ` छायावादी रचना में प्रकृति के अनेकानेक बिम्बों को मानवीय चेतना के भावों से सम्पृक्त कर सुकुमार शैली का सफल निदर्शन

---

१. प्रसाद, `मुझको न मिला है कभी प्यार `, १६३३ ई० सरस्वती पत्रिका।

२. प्रसाद, `प्यार ` १६३४ ई० सरस्वती पत्रिका ।

३. प्रसाद, `कामायनी` १६३६ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

४. बाबू पारसनाथ सिंह, `प्रश्नोत्तर `, १६१४ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

५. पं० बालकृष्ण शर्मा, `नवीन `, `कहो कब हो सकेगा दग्ध यह जीवन सजल सावन ` १६५७ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

होता है[1]। `मुस्कान` पन्त जी की `सरस्वती` में प्रकाशित एक और छायावादी रचना है जिसमें कोमलभावों को मृदुल शब्दावली में व्यञ्जित किया है[2]। `पतझड` कवि की शब्द योजना, चित्रोपम सजीवता से युक्त है। छायावादी इस रचना में प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कवि ने युग मंगल की कामना की है[3]।

श्री राजशेखरप्रसाद नारायण सिंह ने अपनी १६२५ ई० में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित `माली` कविता में खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। इस छायावादी रचना में मानवीय भावों को प्राकृतिक उपादानों पर आरोपित किया गया है[4]। श्री आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव `नयन` कविता खड़ी बोली की छायावादी रचना है। नयन के हाव-भाव, नयन के गुण तथा नयनों की भाषा का जीवान्त तथा यथायोग्य वर्णन इस कविता में प्राप्त होता है। कविता में नेत्रों की अपरिहार्य आवश्यकता को निरूपित करके नेत्रों की प्रशस्ति की गई है[5]। इसी प्रकार पं० पद्मकान्त मालवीय की `दुख-सुख` छायावादी कविता में खड़ी बोली, प्रसादगुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग हुआ है[6]। श्री अनूप `प्राप्तिस्थान` छायावाद युग की रचना

---

१. श्री सुमित्रानन्दन पन्त `स्वप्न` १६२४ ई, सरस्वती पत्रिका।
२. ,, `मुस्कान` सरस्वती हीरक जयन्ती, पृष्ठ ६७
३. ,, `पतझड़` ,, ,, पृष्ठ ७२
४. श्री राजशेखरप्रसाद नारायण सिंह, १६२५ ई० `माली` सरस्वती पत्रिका।
५. श्री आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव `नयन` १६२७ ई०, सरस्वती पत्रिका।
६. पं० पद्मकान्त मालवीय, `दुख-सुख` १६२६ ई०, सरस्वती पत्रिका।

में कृष्ण के प्रति भक्ति एवं अनुराग है[१]। पं० जगदम्बाप्रसाद मिश्र `हितैषी` जी की `सुमन` रचना १६२६ ई० में सरस्वती में प्रकाशित हुई जिसमें पुष्प का प्राकृतिक बिम्बविधान के अन्तर्गत वर्णन करके उसके माध्यम से नीति कथन को मानवजीवन पर आरोपित किया गया है[२]। श्री मनोरंजन एम० ए० जी की `नीरव-उपहार` खड़ी बोली में विरचित यह कविता छायावादी चेतना से सम्पृक्त है। इस कविता में एक वियोगिनी रात्रि के निस्तब्ध वातावरण में अपना आशुहार अपने प्रेमी को नीरव-उपहार के रूप में प्रस्तुत करती है[३]।

छायावादी रचनाओं में श्री बालकृष्णराव की `नयनों की भाषा` १६३१ ई० में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। छायावाद की यह रचना नेत्रों का न केवल दृश्यजगत से अपितु भावजगत से भी गम्भीर सम्पर्क मानती है। खड़ी बोली में नयनों की भाषा को समझने के लिए कवि के अनुसार सहृदय तथा विशेषकर प्रेमी अवश्य होना चाहिए[४]। श्री प्रणयेश शुक्ल `यह क्या ?` संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली की छायावादी रचना में प्रेम एवं सौन्दर्य से संदर्भित मानवीय संवेदना का चित्रोपम वर्णन है[५]। श्री केसरी `निर्वासित विहग` छायावादी रचना में वियोगी विहग की विगत स्मृतियाँ प्रकृति के सापेक्ष अभिवर्णित की गई हैं। लौकिक सौन्दर्य और भावात्मक चेष्टाओं का सफल निरूपण है[६]। इसी प्रकार श्री केशवप्रसाद

---

१. श्री अनूप `प्राप्तिस्थान` १६२६ ई०, सरस्वती पत्रिका
२. पं० जगदम्बाप्रसादमिश्र `हितैषी` `सुमन` १६२६ ई०,सरस्वती पत्रिका
३. श्री मनोरंजन एम० ए० `नीरव-उपहार` १६२६ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ८१
४. श्री बालकृष्णराव, `नयनों की भाषा`, १६३१ ई०,सरस्वती पत्रिका।
५. श्री प्रणयेश शुक्ल, `यह क्या ?` १६३१ ई०, ,, ,,
६. श्री केसरी, `निर्वासित-विहग` १६३१ ई०, ,, ,, ।

पाठक `पूछ रहे हो मेरा घर ` कविता में कोमलकान्त शब्दावली में खड़ी बोली का छायावादी काव्य है । इसमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है[१]। श्री भगवतीचरण वर्मा की `वन्दना` कविता आद्यशक्ति जगन्माता मातृशक्ति की अभ्यर्थना विषयक छायावाद युगीन शैली में संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का नमूना प्रस्तुत करती है । भक्तिपरक इस रचना में परम्परापोषण प्राप्त होता है[२]।

श्री रामकुमार वर्मा जी की `रूपराशि` छायावादी चेतना में कवि की अनुभूति संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में विरचित है[३]। श्री नरेन्द्र `हरलिया क्यों शैशव नादान`, १९३२ ई० में सरस्वती में प्रकाशित छायावादी रचना है । इस कविता में बालजीवन की अबोधता का वर्णन किया गया है। यौवन का आगमन बाल सुलभ प्रेमपूर्ण चेष्टाओं के सम्बन्धों का अपहर्ता है[४]। इसी प्रकार इनकी `प्रयाग` रचना में तीर्थराज प्रयाग के नैसर्गिक सौन्दर्य का सफल चित्रण किया गया है । छायावादी युगीन खड़ी बोली के इस काव्य में एक ओर वर्णन शैली परम्परापोषण मिलता है तो दूसरी ओर स्तवन मिश्रित चित्रोपम वर्णन मिलता है[५]। श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र `मिलिन्द` की

---

१. श्री केशवप्रसाद पाठक, `पूछ रहे हो मेरा घर ` १९३२ ई०,सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री भगवतीचरण वर्मा, `वन्दना` १९३२ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, पृष्ठ ८४

जगति-जननि जग-तारिनि वन्दे !
हे सुख-दुख - स्वच्छन्दे ! - - - - - -

३. श्री रामकुमार वर्मा, `रूपराशि`, १९३२ ई, सरस्वती पत्रिका ।
४. श्री नरेन्द्र, `हरलिया क्यों शैशव नादान`? १९३२ ई०,सरस्वती पत्रिका।
५. ,, `प्रयाग ` १९३६ ई० ,, ,, ।

`लघुता की महिमा` कविता छायावादी रचना में परम्परित बिम्बों का प्रयोग कवि ने खड़ी बोली में करते हुए `लघु` की महिमा प्रतिष्ठित की है[1]।

श्रीमती महादेवी वर्मा की सरस्वती में कई रचनायें प्रकाशित हुई थीं। उनमें १६३३ ई० `गीत` में खड़ी बोली, छायावादी चेतना, रहस्यानुभूति प्रणाय के बहाने अभिव्यक्ति मिलती है[2]। दूसरा `गीत` १६३४ ई० में प्रकाशित हुआ जिसमें खड़ी बोली, कोमलकान्तपदावली, रूपसी के बाह्य सौन्दर्य को उसके अन्त: सौन्दर्य से सम्पृक्त करके विदुषी रचनाकार ने छायावादी काव्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है[3]। महादेवी जी की ही `सान्ध्यगीत` रचना छायावादी रचना है जिसमें रहस्यात्मक प्रवृत्ति का भी प्राधान्य है, प्रकृति का चित्रोपम वर्णन उसकी सुकुमारता के परिप्रेक्ष्य में मानवीकरण करते हुए अभिचित्रित किया गया है[4]। इसी प्रकार इनकी रचना `विदावेला` में करुण भावों का सहजोद्रेक प्राप्त होता है। भावों का लालित्य शब्दों की चयन क्षमता एवं सुकुमार भाषा के साथ तदाकार हो गया है। प्रकृति के बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हुए यह कविता हास्य एवं अश्रु में, मिलन एवं विरह में करुणा की सृष्टि करने वाले अवयवों को ही ग्रहण करती है[5]।

----

१. श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, `मिलिन्द` `लघुता की महिमा`, १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका।

२. श्रीमती महादेवी वर्मा, `गीत`, १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका।

३. ,, ,, `गीत`, १६३४ ई०, ,, ,, ।

४. ,, ,, `सान्ध्यगीत`, १६३६ ई०, ,, ,, ।

५. ,, ,, `विदावेला`, १६४१ ई०, ,, ,, ।

उदयशंकर भट्ट की `जरा` कविता में जीवन-यात्रा के यथार्थ सत्य जरावस्था के आगमन को कवि ने छायावादी दृष्टिकोण से देखा है। विभिन्न प्राकृतिक उदाहरणों के माध्यम से जरावस्था को मानवीकृत करके कवि ने खड़ी बोली में जिस काव्य की सृष्टि की है वह प्रथम दृष्ट्या ही जरावस्था के प्रति एक विषाद का सृजन करती है[१]। इसी प्रकार श्री आरसी प्रसाद सिंह जी की `शतदल` छायावादी रचना में प्रकृति का मानवीकरण, भावों की संवेदना को शैली की सुकुमारता से एकाकार करके कवि ने अपनी प्रियतमा के रूपगुण का वर्णन किया है[२]।

श्रीयुत हरिवंशराय बच्चन जी ने `मधुशाला` धार्मिक साम्प्रदायिक अन्तराल को दूर कर अनुभूति के धरातल पर कर्महीन मस्ती की एकता की स्थापना करती है। उमर खैय्याम की रुबाइयों से प्रभावित सीधी और स्पष्ट भाषा में कवि ने एक ओर उद्दाम यौवन की लालसा को अपनाया है तो दूसरी ओर उसी स्वर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर किया है[३]। इसी प्रकार `पग-ध्वनि` वैयक्तिक गीतिकाव्य में कवि ने स्वानुभूति-जन्य सुख-दुख, सौन्दर्य और प्रेम के उन्मुक्त सहज गीत गाये हैं। भाषा का सपाटपन, बिम्बों की जानी पहचानी दुनिया और कल्पना की उड़ान इन तीनों ने मिलकर बच्चन के काव्य-सौन्दर्य के धरातल को प्रभाव में तीव्र एवं मर्मस्पर्शी बना दिया है[४]। श्री उमेश जी की सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित १६३३ में `जीवन निशा` छायावादी रचना में प्रकृति का मानवीकरण तथा प्रेम एवं सौन्दर्य का वर्णन है[५]। रामेश्वरी देवी गोयल कृत `पागलपन`

---

१. उदयशंकरभट्ट, `जरा`, १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका

२. श्री आरसीप्रसाद सिंह `शतदल` १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका

३. श्री हरिवंशराय बच्चन `मधुशाला` १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका

४. ,, ,, `पग-ध्वनि` १६३५ ई०, ,, ,,

५. श्री उमेश ; `जीवननिशा` १६३३ ई०, ,, ,,

छायावादी रचना में प्रेमपूर्ण भावों का अभिनव चित्रण खड़ी बोली में हुआ है। इसमें संवेदनाओं का प्राकृतिक बिम्बों पर आरोप भी दृष्टिगोचर होता है[1]।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी कृत 'जीवन-संगीत' में अभिव्यक्ति की सरलता, भावों की निर्मलता, समधुर शब्दयोजना के माध्यम से प्रकट हुई है। इसमें मानवीय जीवन के प्रति सहजाकर्षण है[2]। इसी प्रकार कुंवर सोमेश्वरसिंह की 'दीवान' छायावादी काव्य-रचना है जिसमें प्रेम की पीर तथा तड़पन सहजरूप से अभिव्यक्त हुई है[3]। श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का सरस्वती पत्रिका में १६३४ ई० में प्रकाशित 'गीत' देवी सरस्वती की वन्दना है। जिसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों तथा खड़ी बोली भाषा का प्रयोग हुआ है[4]। 'सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति' भी इनकी खड़ी बोली की रचना है। यह कविता अपने अन्तस् में सामाजिक चेतना को अन्तर्भूत किए हुए है। रचनाकाल एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से यह कविता छायावादी संवेदना तथा प्रगतिवादी यथार्थ की सन्धिस्थली पर अवस्थित है[5]। इसी प्रकार निराला जी की 'वृद्ध हूं मैं' कविता में कवि की जीवनानुभूति का जो स्वर उभरा है वह टूटन

----

१. रामेश्वरीदेवी गोयल, 'पागलपन' १६३४ ई० सरस्वती पत्रिका
२. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'जीवन-संगीत' १६३४, सरस्वती पत्रिका
३. कुंवर सोमेश्वरसिंह, 'दीवाना', १६३४ ई० ,, ,,
४. श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'गीत' १६३४ ई०, सरस्वती पत्रिका।
५. श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति', १६३७ ई०, सरस्वती पत्रिका।

तथा पराजय का है[1]। `वर्षा के दो गीत` कविता में संस्कृतनिष्ठ भाषा में कवि ने गीत में प्रकृति-वर्णन को अनुभूतिपरक वाणी दी है किन्तु इसकी उल्लेखनीय विशेषता है कि लोकोन्मुखता है। यह लोकोन्मुखता कवि के प्रेम-सौन्दर्य बोध का प्रतिफलन भी है[2]।

डा० रामविलास शर्मा कृत `गीत` `सरस्वती` में प्रकाशित हुआ। इस गीत में छायावादी काव्य की विशेषताएं - प्रकृतिवर्णन, भावों की संवेदना के तादात्म्य के साथ एवं संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में प्राप्त होती है[3]। श्री रामधारी सिंह `दिनकर` की `भ्रमरी` कविता प्रेम एवं सौन्दर्य का काव्य छायावादी रचना है[4]। इसी प्रकार `अगेय की ओर` में कवि की नितान्त वैयक्तिक अनुभूति जो कि सहज रूप से नि:सृत हो रहे प्रश्नों के माध्यम से यथार्थ जीवन व चरमसत्ता का रहस्यान्वेषण करने में सन्नद्ध हैं, इसमें संस्कृतमयी संगीतात्मक खड़ी बोली है[5]। श्री हरिकृष्ण `प्रेमी` की `खिलौने` कविता छायावादी युग में रचित काव्य अनुभूति के स्तर पर गीतिकाव्य का आभास देता है, कवि का जीवन विवरण दृष्टव्य है[6]। श्री हरिश्चन्द्रदेव

---

१. श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` `वृद्ध हूं मैं`, सरस्वती हीरक जयन्ती, पृष्ठ १०५

जय तुम्हारी देख भी ली
रूप की, गुण की, रसीली।........

२. `निराला`, `वर्षा के दो गीत`, १९५८ ई० सरस्वती पत्रिका

३. डा० रामविलास शर्मा `गीत` १९३५ ई० सरस्वती पत्रिका

४. श्री रामधारीसिंह `दिनकर` `भ्रमरी` १९३५ ई०, सरस्वती पत्रिका

५. `अगेय की ओर` १९३७ ई० ,, ,,

६. श्री हरिकृष्ण `प्रेमी` `खिलौने` १९३५ ई० ,, ,, ।

वर्मा `चातक` कृत `सरिता` छायावादी रचना है । सरिता के वर्णन के बहाने कवि ने परम्परित बिम्ब-विधानों का प्रयोग करते हुए अपने प्रेम एवं सौन्दर्य बोध को व्यक्त किया है[1]। श्रीमती तारा पण्डेय कृत `गीत` में वैयक्तिक अनुभूति एवं संवेदना से सम्पृक्त छायावादी रचना में रहस्यानुभूति तथा प्रियमिलन की तड़पन से युक्त है । अरूप एवं अज्ञात सत्ता के प्रति आसक्ति है[2]।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय कृत `गीत` इस गीतिकाव्य में कवि की चेतना छायावादी सूक्ष्मता एवं मांसलता से पृथक दिखाई पड़ती है[3]। श्री सरदारनर्मदा प्रसाद सिंह की `मिलन` छायावादी काव्य संस्कृतमयी शैली में खड़ी बोली की संवेदना को अनुभूति के स्तर पर व्यक्त किया है[4]। इसी प्रकार श्री राजनाथ पाण्डेय की `बिदा` छायावादी रचना है जिसमें नियति प्रताड़ित असफल प्रेमी की विरह व्यथा का चित्रण है[5]। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी `उदय-अस्त` इस वर्णनात्मक काव्य में रहस्यात्मक या यों कहा जाय कि अनसुलझे प्रश्नों को खड़ी बोली में अभिव्यक्त किया गया है[6]। श्री रामेश्वर शुक्ल `अंचल` जी की `उच्छ्वास` कविता १९३७ ई० में `सरस्वती` में प्रकाशित हुई । छायावादी चेतना से सम्पृक्त इस कविता में प्रेमी के हृदय की व्यथा का चित्रण किया गया है । विगत स्मृतियां और प्राकृतिक उपादान मिलकर

---

१. श्री हरिश्चन्द्रदेव वर्मा `चातक` `सरिता` १९३५ ई० सरस्वती पत्रिका
२. श्रीमती तारा पाण्डेय, `गीत`, १९३६ ई०, सरस्वती पत्रिका
३. श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय, `गीत`, १९३६ ई०, सरस्वती पत्रिका
४. श्री सरदारनर्मदाप्रसाद सिंह `मिलन` १९३६ ई० ,, ,,
५. श्री राजनाथ पाण्डेय, `बिदा` १९३६ ई० ,, ,,
६. श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, `उदय-अस्त` १९३७ ई०,, ,,

जिस झंझावत का भावात्मक स्तर पर सृजन करती हैं वह स्पृहरणीय है[१]। सरस्वती पत्रिका में श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा की `मूकमार्ग` कविता छायावादी रचना है जो सहजप्रवाहमयी है। खड़ी बोली में रचित इस रचना में प्रेम तथा अन्त: सौन्दर्य की उद्भावना तथा आत्मबोध के स्वर मुखरित हुए हैं[२]। इसी प्रकार नर्मदाप्रसादखरे की `मिलन` में प्रेमी के द्वारा प्रियतमा से वियुक्त होने पर विरहगत स्मृतियों को ही मिलन का पर्याय मानने वाली यह कविता खड़ी बोली में रचित छायावादयुगीन काव्य का उदाहरण है[३]। श्री शिवमंगल सिंह `सुमन` की `मेरे पावन मेरे पुनीत` कविता बैयक्तिक काव्य है जिसमें भावों का प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करके कवि ने खड़ी बोली में काव्य की सर्जना की है[४]। पं० माखनलाल चतुर्वेदी जी की `कालिका से कालिका की ओर` छायावादी काव्य में परम्परित बिम्ब विधानों का वर्णन तथा खड़ी बोली का प्रयोग है[५]। श्री विश्वप्रकाश दीक्षित की `सम्बोधन` कविता में आत्मबोध तथा खड़ी बोली मन को लक्ष्य करके कही गई छायावादी चेतना से सम्पृक्त है[६]। इसी प्रकार श्री जितेन्द्रकुमार का `गीत` बैयक्तिक आत्मानुभूतिपरक संगीत की लहरी को व्यक्त करने वाली यह कविता खड़ी बोली में रचित है। इसका विषय प्रेमगान है[७]। श्री भैरव

---

१. श्री रामेश्वरशुक्ल `अंचल` `उच्छ्वास` १६३७ ई० सरस्वती पत्रिका
२. श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा `मूकमार्ग` १६३८ ई० सरस्वती पत्रिका
३. श्री नर्मदाप्रसाद खरे `मिलन` १६३८ ई० ,, ,,
४. श्री शिवमंगलसिंह `सुमन` `मेरे पावन मेरे पुनीत` १६३६ई,, ,,
५. पं०माखनलाल चतुर्वेदी `कालिका से कलिका की ओर`,१६३६ई,, ,,
६. श्री विश्वप्रकाश दीक्षित `सम्बोधन` १६४० ई०, सरस्वती पत्रिका
७. श्री जितेन्द्र कुमार `गीत` १६४० ई०, सरस्वती पत्रिका

प्रसाद गुप्त जी की `पपीहा `, `पी कहाँ ` न बोल` में विरह बर्णन है। बिरह को व्यक्त करने का प्रतीक पपीहा, अपनी सहज ध्वनि झंकृत कर रहा है, प्रियतमा उसी `पी कहा` उच्चारण करने से निवारित करती छायावादी काव्य चेतना की कबिता है[१]। श्री लहरी जी की सरस्वती में `उनके गीत` १६४० में प्रकाशित हुई। जिसमें भावों का संगीत संवेदना के स्तर पर व्यक्त हुआ है। यह बैयक्तिक गीतिकाव्य खड़ी बोली का छायावादी काव्य है[२]। इस प्रकार कबि का सर्वथा नवीन प्रयास है[३]। इसी प्रकार बाबू जगन्नाथदास `बियोग` की `बसन्त ` कविता में ब्रजभाषा का टकसाली रूप ( घनाक्षरी छन्द ) परम्परानुमोदित बर्णन है[४]। पं० किशोरीलाल गोस्वामी कृत `कोकिलाष्टक में से ` ब्रजभाषा की कविता है। इसमें सबैया छन्द का प्रयोग किया गया है तथा यह कविता काव्यानुवाद बिधा से सम्पृक्त है[५]। पं० श्रीधरपाठक की `बर्षाऋतु बर्णन ` में मनहरण छन्द तथा संस्कृतनिष्ठ शैली में शृंगार बर्णन हुआ है[६]। इसी प्रकार श्री केदारनाथमिश्र जी की सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित `एक उर्मिला छन्द ` भावात्मक संवेदनों का बर्णन खड़ी बोली में हुआ है तथा केचुंआ छन्द का प्रयोग है[७]।

---

१. श्री मैथप्रसाद गुप्त १६४० ई० `पपीहा ` `पी कहा ` न बोल `
सरस्वती पत्रिका।

२. श्री लहरी `उनके गीत ` १६४० ई०, सरस्वती पत्रिका

३. राधाकृष्णदास `रहिमनबिलास` १६०२ ई० सरस्वती पत्रिका

४. बाबू जगन्नाथदास `बियोग ` `बसन्त` १६२७ ई० सरस्वती पत्रिका

५. पं०किशोरीलाल गोस्वामी, `कोकिलाष्टक में से ` १६०१ ई०,
सरस्वती पत्रिका।

६. पं० श्रीधरपाठक `बर्षाऋतुबर्णन` १६०३ ई० सरस्वती पत्रिका

७. श्री केदारनाथमिश्र `एक उर्म्मिल छन्द` १६५३ ई० सरस्वती पत्रिका

श्री गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री जी की 'शीतल हवा' कविता छायावादी चेतना से युक्त है । इस काव्य में रहस्यवादी चेतना संचालित हुई है । यह वर्णनप्रधान प्रशस्तीमयी कविता है[1]। श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया की 'निर्झरिणी' कविता वैयक्तिक गीतिकाव्य छायावादी चेतना से सम्पृक्त है[2]। इसी प्रकार 'गायक' में भी हृदय की पीड़ा से व्यथित नायिका अपने भावमयी संवेदना को व्यंजित करते हुए रुदन को ही लक्ष्य मानती है । यह खड़ी बोली में रचित छायावादी चेतना से सम्पृक्त काव्य है[3]।

छन्दों की दृष्टि से यदि हम कविताओं का उन्मूलन करें तो यह प्रत्यक्ष है कि रीतिकाल में ही रचनाओं में छन्दों के बन्धनों को तोड़ने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे तथा छायावादी काव्य में तो हमें मुक्त छन्दों का प्रयोग स्पष्ट रूप में दिखाई देता है । इसलिए यह कहना कि छन्द का प्रयोग नहीं किया गया ऐसा तो सर्वथा गलत है किन्तु यह कहा जा सकता है कि कवि अपनी रचनाओं में छन्दों के प्रयोग के लिए स्वतन्त्र था । उसे किसी भी प्रकार की बाध्यता न थी, वह किसी छन्द विशेष का ही प्रयोग करने के लिए बाध्य हो । राधाकृष्णदास जी की 'रहिमन विलास' इस कविता में रहीम के दोहों में सन्निहित भावों को विस्तीर्ण कर कवि ने कुण्डलिया छन्द की रचना की है ।

---

१. श्री गाङ्गेयनरोत्तमशास्त्री 'शीतलहवा' १६४३ ई० सरस्वती पत्रिका

२. श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया 'निर्झरिणी' १६४५ ई० सरस्वती पत्रिका ।

३. श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया, 'गायक' १६४५ ई०, सरस्वती पत्रिका

प्रगतिवाद —

हिन्दी में प्रगतिवाद १६३० ई० के बाद पैदा हुआ । कविता में भी कल्पना के स्थान पर ठोस वास्तविकता और वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता का आग्रह `सन्` ३० के बाद से ही बढ़ने लगा था । प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों के इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भाव-भूमि और उच्च विचार के निरन्तर विकास का इतिहास है, जो केवल राजनीतिक जागरण से आरम्भ होकर क्रमश: जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर आदर्शवाद से आरम्भ होकर क्रमश: यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद से आरम्भ होकर क्रमश: स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है । श्री विजय राठौर `इंसान` (१६५८) कविता में इंसान के कर्त्तव्य को व्यक्त करता है । यह कविता मानव को जीवनपथ में कर्मठता का संदेश देती है । यह खड़ी बोली का ओजपूर्ण काव्य है[१] ।

प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं है, बल्कि यह एक निरन्तर विकासशील साहित्य-धारा है, जिसके लेखकों का विश्वास है कि प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अन्त:प्रेरणा से उद्भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है और उसके सिद्धान्त उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं ।

इस समय कविता में पहली बार किसानों विशेषत: मजदूरों के गंदे पैरों की पवित्र धूल दिखाई पड़ी । संध्या के झुरपुटे में पंत जी को चिड़ियों के `टी-वी-टी- टुट्-टुट्` के साथ ही उगमग डग घर का नापते हुए श्रमजीवी दिखाई पड़ गये, और फिर टीले पर उन्हीं के नंगे तन गदबदे बदन वाले लड़के भी आ गये । कविता में पहली बार, इतनी व्यापक

---

१. श्री विजय राठौर `इंसान` १६५८ ई० सरस्वती पत्रिका

सहानुभूति का प्रवेश हुआ । परिस्थितिवश यह सहानुभूति 'बौद्धिक' ही थी और यह मानवता भी केवल सहानुभूति रही, फिर भी हृदय की इस विशालता ने साहित्य में नवजीवन का संचार कर दिया और साहित्य का क्षेत्र व्यापक बना दिया और उसमें उच्चकोटि की नैतिकता प्रतिष्ठित कर दी ।

इस बौद्धिक सहानुभूति ने एक ओर लेखक को यथार्थ की ठोस धरती पर उतारा तो दूसरी ओर उसके सिर को आदर्शवाद के ऊंचे आकाश में उठा दिया । दार्शनिक स्तर पर इसे पन्त जी ने भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय समझा और सांस्कृतिक स्तर पर पश्चिम और पूरब का सम्मिलन । राजनीतिक जीवन में उन्हें यह मार्क्सवाद और गांधी-वाद का सामंजस्य जान पड़ा और कविता के रूप और भाव का मिश्रण ।

जिस तरह कल्पनाप्राण अन्तर्दृष्टि छायावाद की विशेषता है और अन्तर्मुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की, उसी तरह सामाजिक यथार्थ-दृष्टि प्रगतिवाद की विशेषता है । कविता के क्षेत्र में भी प्रगतिवाद इसी दृष्टि से प्रकृति और मानव को देखता है । 'ग्राम्या' की रचना करते समय जब पन्त जी ने कहा था कि —

> देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से
> सोच रहा हूँ जटिल जगत पर जीवन पर जन मन से

तो उन्होंने इसी सामाजिक यथार्थ-दृष्टि की आधार-शिला रखी थी। इस दृष्टि से प्रकृति पर सबसे पहले दृष्टिपात किया और अपनी ग्राम्य-प्रकृति के यथार्थ रूप का अंकन किया ।

प्रगतिशील कवि जहाँ स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण करता है, वहाँ भी संयम और स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय देता है । प्रगतिशील कवि का प्रेम इतना स्वस्थ और स्फूर्तिदायक इसलिए है कि वह प्रेम को सम्पूर्ण जीवन से

प्रगतिशील कवि यह जानता है कि वास्तविकता सुख-शान्ति अभी हमारे जीवन में नहीं आ सकी है फिर भी जब वह दुनिया के तिहाई भाग में सुख-शान्ति को वास्तविक रूप धारण करते देखता है और पाता है कि उसके लिए जो भविष्य है वह कुछ लोगों के लिए वर्तमान बन चुका है तो भविष्य की असम्भाव्यता पर से उसका विश्वास उठ जाता है और मानव-विजय की आशा उसमें नूतन कल्पनाशक्ति का संचार करती है। प्रगतिशील कवि का सपना उसे संघर्ष करने की शक्ति देता है -- वह स्फुर्तिदायक और वीरत्वव्यंजक होता है।

श्री भगवतीचरण वर्मा `अन्तिम प्रणाम` (१६४८) राष्ट्रपिता बापू के प्रति श्रद्धांजलि, वर्णनात्मक प्रशस्तिपरक काव्य है[१]। इस प्रकार `आकाशगामी से` (१६८८) प्रगतिवादी कविता युगीन सन्दर्भों से सम्पृक्त अन्तरिक्ष अन्वेषण में तत्पर शक्तियों को लक्ष्य करके कहे गये बेबाक कथन खड़ी बोली की अपनी सम्पत्ति व विशेषता है। पृथवी पर नैतिक एवं सकारात्मक जीवन मूल्यों के प्रसार की कामना ही उक्त कविता का उद्देश्य है[२]।

श्रीयुत् रामगोपाल विजय वर्गीय `चित्रकार` (१६४२) चित्रकार की उपेक्षित एवं दीन दशा का मार्मिक चित्रण कर उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है[३]। सरस्वती में प्रकाशित कविता में श्री प्रभाकर

----

१. श्री भगवतीचरण वर्मा `अन्तिमप्रणाम` १६४८ ई० सरस्वती पत्रिका

२. ,, ,, `आकाशगामी` १६५८ ई० ,, ,,

३. श्रीयुत रामगोपालविजय वर्गीय `चित्रकार` १६४२ ई० ,, ,,

माचवे का `गीत ` (१६४३) जोखिमों से खेलने की भावना से युक्त यह काव्य प्रगतिवाद का उदाहरण है। यह खड़ी बोली प्रसादगुण सम्पन्न कविता है[१]।

श्री गिरिजाकुमार माथुर `अन्धशिलाओं की दुनियां ` प्रगतिवादी कविता में नये बिम्ब विधान तथा प्रकृति के ओजस्वी स्वरूप का वर्णन है[२]।

प्रगतिशील कविता के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि उसमें कलापक्ष की अवहेलना की जाती है,यदि इसका यह अर्थ है कि प्रगतिशील कवि प्रयोगवादियों की तरह कलापक्ष पर बहुत बल नहीं देते तो यह ठीक है। प्रगतिशील कवि अपना हर शब्द और हर वाक्य चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं करता। उसका विश्वास है कि जबर्दस्त भाव भाषा की ढीली-पोली के बावजूद अपने को प्रकाशित करते रहते हैं। इसलिए प्रगतिशील मुक्त-छन्दों के बन्द प्रयोगवादी कविता की अपेक्षा काफी शिथिल मिलेंगे। लेकिन यही सहजता उनकी शोभा है।

प्रगतिशील कवि जब व्यंग्य लिखते हैं तो उनकी भाषा का बांकापन देखने लायक होता है। हिन्दी कविता में व्यंग्य-काव्य का जितना सुन्दर विकास प्रगतिवाद में हुआ उतना कहीं नहीं।

पं० केशवप्रसाद मिश्र `जाड़ा और निर्धन ` (१६१५) समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता पर कवि का सफल व्यंग्य जोकि एक ओर `बाबू लोगों ` के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर निर्धन प्राणि वर्ग के प्रति सहानुभूति, प्रगतिवादी चेतना का अंकुर प्राप्त होता है, यह खड़ी बोली में है।

----

१. पं० केशवप्रसाद मिश्र `जाड़ा और निर्धन ` १६१५ ई० सरस्वती पत्रिका

छन्दों के क्षेत्र में प्रगतिशील कवि जान-बूझकर विचित्र धुन निकालने का प्रयोग तो नहीं करते, लेकिन यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील कवियों ने लोकगीतों की अनेक नई धुनों को कविता में पुनर्जीवित किया ।

इस तरह प्रगतिवाद ने अपना ध्यान साहित्य में प्रतिक्रिया-वादी और प्रगतिशील तत्वों में भेद करने की ओर दिया । क्योंकि समाज और साहित्य की प्रगति के लिए प्रतिक्रियावादी तत्वों की आलोचना करना, और उन्हें मिटाना साहित्यकार का कर्त्तव्य है । इस दृष्टि से प्रगतिवाद ने सम्पूर्ण साहित्य परम्परा और फिर समकालीन साहित्य का विश्लेषण किया ।

प्रयोगवाद --

प्रयोगवाद के पन्द्रह बर्षों का इतिहास व्यक्तिवाद के दो सीमान्तों के बीच फैला हुआ है -- इनमें से एक सीमान्त है मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति मध्यवर्गीय कवि का बैयक्तिक असन्तोष और दूसरा सीमान्त है जन-जागरण से डरे हुए कवि की आत्म-रक्षा की भावना । कुल मिलाकर यह चरम व्यक्तिबाद ही प्रयोगबाद का केन्द्र-बिन्दु है और विभिन्न राज-नैतिक, नैतिक, सामाजिक मान्यताओं के रूप में यह संकीर्ण व्यक्तिवाद अपने को व्यक्त करता रहता है ।

प्रयोगबाद के दोनों सीमान्तों को जिस तरह अज्ञेय की कविताएं छूती हैं, उस तरह सम्भवत: अन्य प्रयोगवाद कवियों की रचनाएं नहीं छूतीं, अन्य कवि इन्हीं सीमाओं के बीच कहीं न कहीं स्थित है । इसके साथ यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अज्ञेय की ही तरह सभी प्रयोगवादी कवियों ने अपने विचारों को स्पष्ट रूप से सैद्धान्तिक रूप नहीं दिया है ।

श्री रघुवंशलाल गुप्त `बन्धन टूटे रे` (१९५७) काव्यानुवाद, उन्मुक्त होने की कामना, खड़ी बोली की प्रयोगवादी कविता है ।

प्रयोगवाद का उदय ही मोह-भंग से हुआ इसलिए इसमें छायावादी कल्पनाशीलता के विपरीत यथार्थवाद का आग्रह अधिक था । कल्पना के द्वारा छायावाद ने जिन वस्तुओं को उदात्त रूप दे रखा था, उसकी क्षुद्रता के उद्घाटन में प्रयोगवादी कवि को विशेष प्रकार का आनन्द मिलने लगा । उदाहरण के लिए छायावादी कवि ने जहाँ चाँदनी का बड़ा भव्य चित्र खड़ा किया था, वहाँ प्रयोगवादी कवि ने `शिशिर की राका निशा` की वास्तविकता है ।

प्रकृति और नारी के प्रति प्रयोगवाद का यह आरम्भिक दृष्टिकोण यथार्थ के नाम पर वस्तुत: नग्नयथार्थवाद है । इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप छायावाद का छुई-मुई-सा प्रेम अब मांसल रूप में प्रकट होने लगा ।

प्रयोगवाद की यथार्थवादी, अन्तर्मुखी तथा बौद्धिक प्रवृत्ति ने कविता के शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, छन्द संगीत और प्रतीक योजना को भी प्रभावित किया है । श्री भवानीप्रसाद मिश्र `अलीक पंथी` (१९५२) प्रयोगवादी काव्य है । छन्दयोजना, भावों के लय के सन्दर्भ में ही व्यवस्थित रह गई है मात्रिक अनुपात में नहीं । निजी दार्शनिक सिद्धान्त का कविता में प्रतिपादन किया गया है ।

कुल मिलाकर प्रयोगवादी कविताएं ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र है । इसमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, अन्तर्मुखता, पलायन आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है ।

नयी कविता —

कतिपय विद्वान नई कविता को प्रयोगवाद की ही एक शैली मानते हैं कुछ इसे एक पृथक आन्दोलन के रूप में गृहण करते हैं । नयी कविता आज की मानव विशिष्टता से उद्भूत उस लघु मानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है, जो एक ओर आज की समस्त तिक्तता और विषमता को तो भोग ही रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्तताओं के बीच वह अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है । वह विशाल मानव-प्रवाह में बहने के साथ-साथ अस्तित्व के यथार्थ को भी स्थापित करना चाहता है, उसके दायित्व का निर्वाह भी करना चाहता है ।

श्री केदारनाथ मिश्र `एक उर्म्मिल छन्द` (१६५३) नयी कविता में बिरह संतप्त जीवन में मिलन के क्षणों की महत्ता प्रतिपादित की गई है । भावात्मक संवेदनों का वर्णन खड़ी बोली में हुआ है ।

नयी कविता की मूल स्थापनाओं में चार तत्व मुख्य हैं । प्रथम, यह कि नयी कविता का विश्वास आधुनिकता में है । दूसरा, नयी कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है, उसमें बर्जनाओं और कुंठाओं की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन है । तीसरा, इस मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह विवेक के आधार पर करना अधिक न्यायोचित मानती है । चौथा, वह क्षण के दायित्व और नितान्त समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है । आधुनिकता का अर्थ विकृतियों से न होकर उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है, जो विवेचना और विवेक के बल पर हमें प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवीय दृष्टि यथार्थ की दृष्टि देती है ।

श्री गिरिजा कुमार माथुर `गूँजे अमर वाणी` (१६५६) जीवन के सकारात्मक मूल्यों की अपरिहार्य आवश्यकता को खड़ी बोली में स्वर दिये हैं । शान्तिस्थापना को चरम लक्ष्य माना गया है ।

भावबोध की दृष्टि से नयी कविता कई अर्थों में अन्य काव्य-प्रवृत्तियों से भिन्न है । यह भिन्नता मात्र उद्देश्यगत नहीं, दृष्टिगत भी है । जीवन के प्रवाह में उसकी सन्दर्भयुक्त अभिव्यक्ति नयी कविता का भाव-बोध है । सन्दर्भविशेष में प्रत्येक वस्तुस्थिति के प्रति सापेक्ष मूल्यों का आग्रह इसकी मनोनीत नियति न होकर आत्मगत सत्य है । जब यह कहा जाता है कि नयी कविता ऐतिहासिक दृष्टि से `सप्तक' के कवियों के आगे का विकसित रूप है तो उसका आशय ही है कि नयी कविता भाव-बोध के स्तर पर और आधुनिक यथार्थ के स्तर पर सर्वथा नयी दिशाओं की ओर अग्रसर होने वाली अनुभूति का प्रतिनिधित्व करती है । इसीलिए उसमें न तो छायावाद की भांति उदात्त के नाम पर कोई पलायन करने की प्रवृत्ति है और न प्रगतिवाद के नाम पर कोई साम्प्रदायिक आग्रह । उसका विश्वास मानव विशिष्टता में है और इस विश्वास के आधार पर वह सर्जनशील अनुभवों से लेकर अभिव्यक्ति के माध्यमों तक में उसका निर्वाह करने का प्रयास करती है । अनुभूतियों की विविधता और अभिव्यक्ति के माध्यम भी इसीलिए उसके लिए इतने महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह कि वह यथार्थ और जीवन को एक साथ वहन करते हुए मुक्त क्षणों के प्रति दायित्व के प्रति आग्रहशील है । आधुनिकता और सामयिकता के सन्दर्भ में लघु मानव की विशिष्टता और उसके सन्दर्भ का महत्व इन्हीं कारणों से अधिक महत्वपूर्ण है ।

सौन्दर्यबोध की दृष्टि से नयी कविता सौन्दर्य को यथार्थ से पृथक वस्तु नहीं मानती यथार्थ का क्रियाशील (Dynamic) तत्व सौन्दर्य के आयामों को निर्धारित एवं परिमार्जित करता रहता है । यथार्थहीन सौन्दर्य, निरपेक्ष सौन्दर्य या संदर्भहीन सौन्दर्यबोध, जिसमें मुक्त क्षणों की सार्थकता और नितान्त समसामयिकता का आग्रह नहीं है, वह कहीं न कहीं मानव दृष्टि को कुंठित एवं विकृत भी करता है । नयी कविता का आग्रह सौन्दर्य के प्रति नहीं है, जो मात्र अलौकिक या अदृश्य के संयम-नियम से

शासित होकर व्यक्त होता है। यही कारण है कि नयी कविता के लिए यथार्थ से विकसित हुई वह तथाकथित विकृति भी महत्वपूर्ण है और अपने आग्रहपूर्ण अस्तित्व से नये कवि के भावबोध को प्रभावित करती है। यही कारण है कि नयी कविता का सौन्दर्यवाद बौद्धिक अनुभूति और बुद्धिवाद को भी स्वीकार करता है। इस बुद्धिवाद के साथ-साथ नयी कविता का आग्रह मुक्त क्षणों की आस्था में होने के नाते सौन्दर्य को भोगने और उसके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को स्वीकार करने में भी व्यक्त करते हैं। प्रयोग इसी सौन्दर्यानुभूति के स्तर पर उसके भाव-बोध को वहन करने की क्षमता के साथ स्थापित हुआ है। जब यह कहा जाता है कि नयी कविता मुक्त क्षणों की सत्ता को स्वीकार करती है और उपलब्धियों को अंगीकार करती है तो इसका आशय यह है कि वह उस सहानुभूति से द्रवित है, जिसमें विवेचन, विश्लेषण के साथ-साथ बौद्धिक सहानुभूति भी शामिल है। प्रस्तुत कारणों से नयी कविता कुछ को चौंकाने वाली लगती है और कुछ को मात्र चमत्कारिक लगती है, कुछ को उसमें रसहीनता का आभास मिलता है और कुछ मात्र विकृतियों तक उसके भाव को सीमित कर पाते हैं। वे उन नये तत्वों को नहीं देख पाते, जो आज की मानव अनुभूतियों के साथ उनके परिवेश में विद्यमान हैं और जिनके प्रति उसका दायित्व है।

परिवेश के महत्वपूर्ण दायित्व के प्रति नयी कविता का दृष्टिकोण दो विचारों से प्रभावित है। सर्वप्रथम तो नितान्त समसामयिकता की दृष्टि से और दूसरे अस्तित्वपूर्ण क्षण के प्रति जागरूक चेतना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से। समसामयिकता के दायित्व का निर्वाह करने के लिए यह आवश्यक है कि कवि के अन्दर आधुनिकता के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि के साथ-साथ 'लघु मानव' के लघु परिवेश की आस्था भी हो। नितान्त समसामयिकता का उद्देश्य यह है कि कवि की उस अनुभूति का भी महत्व स्थापित हो, जो वह मुक्त क्षणों के साथ-साथ उपलब्धि के रूप में

पाता है, ग्रहण करता है। आधुनिकता जिस परिवेश का निर्माण करती है, समसामयिकता उस परिवेश के प्रति व्याप्त जागरूकता को क्रियाशीलता प्रदान करती है।

नयी कविता का आग्रह जिस विशेष तत्व पर है, वह उस मानव-व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होता है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटुताओं के बावजूद मनुष्य को उसकी मूल मर्यादा के प्रति, निजत्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक रखना चाहता है। यह आग्रह निरा कपोल-कल्पित नहीं है, वरन् उसके पीछे समस्त मानव-चेतना का वह अनुभव है, जो एक सीमा पर यथार्थ को पकड़ना चाहता है, किन्तु जो उसको कुंठा का साधन न बनाकर सम्पूर्ण चेतना को वास्तविकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का अधिक सशक्त माध्यम रहा है।

नयी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां पांच प्रकारों में विभाजित की जा सकती हैं। पहली प्रवृत्ति यथार्थवादी अहंवाद की है, जिसमें यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ कवि अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानकर उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्तियां देता है। दूसरी प्रवृत्ति व्यक्ति-अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रवृत्ति है, जिसमें आत्मानुभूति की समस्त संवेदना को बिना किसी आग्रह के रखने की चेष्टा की जाती है। तीसरी प्रवृत्ति आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि की है, जिसमें वर्तमान कटुताओं और विषमताओं के प्रति कवि की व्यंग्यपूर्ण भावनाएं व्यक्त हुई हैं। चौथी प्रवृत्ति ऐसे कवियों की है, जिनमें रस और रोमांच के साथ-साथ आधुनिकता और समसामयिकता का प्रतिनिधित्व सम्पूर्ण रूप में व्यक्त हुआ है। पांचवीं प्रवृत्ति उस चित्रमयता और अनुशासित शिल्प की भी है, जो आधुनिकता के सन्दर्भ में होते हुए भी समस्त यथार्थ को केवल बिम्बात्मक रूप में ग्रहण करता है। यथार्थवादी अहंवाद के कवियों में 'अज्ञेय' गजाननमुक्तिबोध, कुंवर-नारायण, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना इत्यादि की रचनाएं आती हैं। व्यक्ति-

अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति प्रभाकर माचवे और मदनवात्स्यायन में है, रस रोमांच और यथार्थ का संकेत रूप गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचन्द्र जैन और धर्मवीर भारती में है। आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भवानीप्रसादमिश्र और विजयदेवनारायण साही की रचनाएं आती हैं। चित्रमयता और अनुशासित शिल्प के अन्तर्गत जगदीशगुप्त, केदारनाथ सिंह और शमशेरबहादुर सिंह की रचनाएं प्रस्तुत होती हैं।

आज जिस स्थिति में नयी कविता की नवीनतम प्रवृत्तियां विकसित हो रही हैं, उससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि आज का नया काव्य-बोध एवं उसके सन्दर्भ में विकसित नयी काव्य-शैली, दोनों का ही आग्रह विशिष्टत्व को स्थापित करना चाहता है। वह सामान्य अनुभूतियों की वास्तविकता से ओत-प्रोत होते हुए उस व्यापक मानवता के प्रति आस्थावान् है, जो समूह-मानव और समूह-चेतना के आतंक में आज तक केवल अपनी लघुता का अनुभव करती रही है, किन्तु उस लघुता को अर्थ देने और उसकी सत्ता को स्वीकार करने में जिसे भय और संकोच, दोनों ही मालूम होता था। इसीलिए नयी कविता की मूल अनुभूति भी बौद्धिक और विवेकमय है।

सरस्वती में प्रकाशित आठवें दशक की कविताओं में किसी एक प्रवृत्ति-विशेष का उल्लेख नहीं किया जा सकता। समय-समय पर प्रकाशित कविताओं में कहीं प्रकृति-चित्रण, कहीं राष्ट्र-प्रेम, कहीं मानव मन की कुंठा, सन्त्रास, निराशा आदि का चित्रण मिलता है। कविताओं में शैली की दृष्टि से भी पर्याप्त भेद है, कहीं छन्द-बद्ध कवितायें मिलती हैं तो कहीं छन्द-मुक्त। भाषा की दृष्टि से कवितायें हिन्दी साहित्य की प्रौढ़तम कविताओं में रखी जा सकती हैं।

श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह की कविता `मेरे मरण से तेरी जय`[1], श्री परेश की `एक गांव`[2], चन्द्रप्रकाश वर्मा की `लक्ष्य से तीर बड़ा`[3], श्री महेशचन्द्रसरल की `मुक्तक`[4] शीर्षक कविता, चांदमल अग्रवाल `चन्द्र` की `मौसम सुहाना`[5], प्रो० मित्तल की `विवशता`[6], देवनाथ पाण्डेय की `उजली लहरें फेनिल बादल`[7], शिवेन्द्र कुमार की `धूप घेरे हुए`[8] आनन्द नारायण शर्मा की `भारत का संदेश`[9], कुंवर सोमेश्वर सिंह की `बीती बातें`[10]

----

१. सरस्वती १९६१, पृ० १८
२. वही ,, पृ० २४
३ वही ,, पृ० ४४
४. वही १९६२ पृ० ६१
५ वही ,, पृ० १६५
६ वही ,, पृ० १८२
७ वही ,, पृ० १८५
८ वही ,, पृ० ४८३
९ वही ,, पृ० ४९०
१० वही १९६३ पृ० २२०

गोपाल जी सर्वकिरण की `निवेदन एक मन:स्थिति`[१] श्री रघुनाथप्रसाद घोष की `तीखीधूप`[२], श्री भोजराज चतुर्वेदी की `पाहन उबारते`[३] श्री ललितमोहन बहुगुणा द्वारा अनुवादित `एक विधुर पंछी`[४], श्री विष्णुकुमार त्रिपाठी `राकेश` की `एक आत्मविज्ञप्ति`[५], श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा अनुवादित `सन्यासी का गीत`[६], डा० नलिनी शुक्ला `मृदुस्वप्न अपूर्ण रहे कितने`[७] शीर्षक कविता, श्री आ० शं० प्र० वर्मा की `मानव, तुम नहीं अकेले`[८]।

प्रकृतिपरक कविताओं में श्री अजयकुमार ठाकुर की `हेमन्त की सन्ध्या`[९] शीर्षक कविता उल्लेखनीय है। इसमें प्रकृति और मानव मन का रूपकात्मक विवेचन, प्रतीकात्मक पद्धति पर हुआ है। इसी प्रकार डा० कमलाकान्त होरक की `वसन्त-दूत`[१०] शीर्षक कविता में बसन्त का वर्णन विशिष्ट शैली में हुआ है। प्रो० सुरेशचन्द्र की `गीत`[११] शीर्षक कविता और अमरनाथ मोहन की `धूप का सस्वतिक`[१२] शीर्षक कविता में प्रकृति के

----

१ सरस्वती १९६३, पृ० ४७१

२ वही १९६४, पृ० ६५

३ वही ,, पृ० १२४

४ वही ,, पृ० १३४

५ वही १९६२ पृ० ४७

६ वही ,, पृ० ५१

७ वही १९६९ पृ० १९६

८ वही १९७० पृ० १३१

९ सरस्वती अप्रैल १९७२, पृ० २१९

१० वही ,, ,, पृ० २५०

११ वही ,, ,, पृ० ३९७

१२ वही अगस्त ,, पृ० १०४

रहस्यात्मक पक्ष का उद्घाटन अत्यन्त मनोरम शैली में हुआ है। नवीन उपमाओं और रहस्यात्मक प्रतीकों के माध्यम से कविताओं में समसामयिक सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। प्रो० सुरेशचन्द्र की 'हो गई है शाम'[1] और श्री स्वर्णकिरण की फैली कैसी आपाधापी[2] कविताओं में नयी कविता की प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत प्रकृति-चित्रण दिखाई पड़ता है। श्री निशान्त की 'सूखी घास'[3] शीर्षक कविता, कमलाकान्त हीरक की 'अन्तर्दृष्टि'[4] शीर्षक कविता और श्री निशान्त की 'पास-प्रवास'[5] शीर्षक कविता और डा० कमलाकान्त हीरक की 'आगमन की रात'[6] शीर्षक कविता में आधुनिक शैली में प्रकृति-चित्रण हुआ है। अन्य प्रकृति परख रचनाओं में रमाशंकर मिश्र 'मधु' की हरिऔध जी की शैली पर लिखी हुई 'मधु-माधुरी'[7] और श्री देवश्री सनाढ्य की 'बालविहंगिनी जाने कहाँ गई'[8] में हुआ है। कुमारी किरण वर्मा की 'तपनगीत'[9] शीर्षक कविता में तपन को केन्द्र बिन्दु बनाकर मानव की सीमाओं का पर्दाफाश किया गया है।

१.	सरस्वती	अक्टूबर	१९७२,	पृ० २५६
२.	वही	,,	,,	पृ० २६६
३	वही	,,	१९७३	पृ० २६४
४	वही	,,	,,	पृ० २८२
५	वही	,,	,,	पृ० ४३७
६.	वही	,,	,,	पृ० ४४४
७.	वही	जुलाई	१९७४	पृ० १६
८	वही	,,	,,	पृ० ३०
९	वही	अक्टूबर	१९७६	पृ० १६३

राष्ट्रप्रेम की कविताओं में कुछ पुराने कवियों के हार्दिक उद्गार अभिव्यक्त हुए मिलते हैं। श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह की 'भारत'[1] शीर्षक कविता में भारत की विडम्बनाओं के लिए शोक व्यक्त किया गया है। श्री स्वर्णकिरण की 'क्या लक्षण है देश का, पौरुष का ?'[2] शीर्षक कविता में हमारे देश की दयनीय स्थिति का सम्प्रास्तपूर्ण चित्रण हुआ है। श्रीकान्त चौधरी की 'दूरदर्शी विशेषज्ञ'[3] कविता में आधुनिक भारत, बौद्धिक भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है। श्री यशवन्त कोठारी की 'नारों का देश'[4] शीर्षक कविता में आधुनिक भारत की राजनैतिक अध:पतन का चित्र खींचा गया है। श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया 'तुलसी वन्दना'[5] शीर्षक कविता में आधुनिक भारतीय राजनीति पर व्यंग्य किया गया है। रामबाबू सेंगर 'पथिक' की 'उठो उलीचो नयी रोशनी'[6] शीर्षक कविता में भारत में राजनैतिक पुनर्जागरण लाने का संदेश दिया गया है।

भारत की राजनैतिक दुर्व्यवस्था का पर्दाफाश श्री मणिलाल गुप्त 'अन्जुम' की 'ओह मेरे देश सनातन'[7] शीर्षक कविता और श्री उमेश

---

१. सरस्वती मई १९७२, पृ० २९५
२ वही जून ,, पृ० ३७९
३ वही अक्टूबर ,, पृ० २८८
४ वही जून १९७३ पृ० ४८५
५. वही जून ,, पृ० ४५९
६ वही सितम्बर ,, पृ० २२५
७ वही मई १९७४ , पृ० ३५६

जोशी की 'अन्धी मशीनों से घिरी हुई स्वाधीनता[1]' शीर्षक कविता और श्री रामसूरत सिंह की 'भारत एक जू[2]' शीर्षक कविता में किया गया है। भारत की गौरवमयी गाथा देवकान्त बरुआ की असमिया भाषा से अनूदित कविता 'मेरा देश मानवों का देश[3]' और महाकवि निराला जी की लम्बी कविता, 'शिवाजी महाराज का पत्र सवाई राजा जयसिंह जी के नाम[4]' में हुआ है। आचार्य सर्वे की कविता, 'राष्ट्र प्रस्तवन[5]' उल्लेखनीय है जिसमें स्वदेश (भारत) की वन्दना की गई है।

इसी प्रकार प्रो० सुरेशचन्द्र की 'प्रार्थना[6]' और 'सब ले लूंगा सिर माथे[7]' शीर्षक कविता में छन्दोबद्ध शैली में ईश्वर से प्रार्थना की गई है। कु० आशा भारती की 'गीत[8]' शीर्षक कविता में आधुनिक मानसिक द्वन्द्व का सफल अंकन हुआ है। श्री रामसागरप्रसाद 'सदन' के 'गीत[9]' शीर्षक कविता में जीवन की निराशा छोड़कर

---

१. सरस्वती अक्टूबर १६७४, पृ० २४६

२ वही जून ,, पृ० ४६५

३ वही मई ,, पृ० ३८१

४ वही जून ,, पृ० ४३२

५ वही जून १६७६ पृ० ८१

६ वही मार्च १६७२ पृ० १६३

७ वही नवम्बर १६७३ पृ० ३८०

८ वही मई ,, पृ० ३३०

६ वही अगस्त १६७२ पृ० १२६

आशान्वित होने का संदेश दिया गया है । श्री गंगाधर मिश्र की 'माँ दुर्गे तेरे चरणों का करे सदा मन ध्यान'[१] शीर्षक कविता में दुर्गा की स्तुति की गई है । श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह की 'प्रश्न'[२] शीर्षक कविता में हाडमांस के शरीर की कमजोरियों को प्रकाश डालते हुए मनुष्य की दयनीय दशा का चित्र खींचा गया है ।

अन्य उल्लेखनीय कविताओं में श्री प्रेम मधुकर की कविता 'भीगा-भीगा मन'[३] और श्रीकान्त चौधरी की 'पहचान'[४] शीर्षक कविता में आधुनिकतम काव्य प्रवृत्तियों से युक्त काव्य-शैली में आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । श्री प्रेम जी 'प्रेम' की 'पुनर्विचार'[५], डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' की 'रूपांधा'[६], श्रीकान्त चौधरी की 'तरंगे'[७], जसबीरसिंह चावला की 'पैरों पर कुल्हाड़ा मारा'[८] में अत्याधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं जिनमें आधुनिक युग से पूर्णरूप से जुड़कर कवियों ने जीवन के विरोधाभासों का और विडम्बनाओं का चित्रण किया है । वैद्यनाथ भास्कर

१.	सरस्वती	फरवरी	१९७४,	पृ० १०९
२	वही	,,	,,	पृ० ११७
३	वही	अक्टूबर	१९७२	पृ० ३११
४	वही	,,	१९७२	पृ० ३१३
५.	वही	जनवरी	१९७३	पृ० २३
६	वही	,,	,,	पृ० २८
७	वही	,,	,,	पृ० ३९
८	वही	,,	,,	पृ० ५६

की 'दो शब्दचित्र'[1] शीर्षक कवितायें, प्रेमजी 'प्रेम' की 'दो गीत'[2] शीर्षक कवितायें तथा श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया की 'कुर्सीवन्दना'[3] और निरंजन कुमार सोलीवाल की 'तीन छोटी व्यंग्य कवितायें'[4] आधुनिक राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर कठोर व्यंग्य करती है।

इनके अतिरिक्त श्री दिनेश की 'अर्थहीन आक्रोश'[5] प्रेम मधुकर की 'दीवारों के कान हैं'[6], शिवनारायण जोशी की 'प्रेम की बाढ़'[7], कमलाकान्त हीरक की 'गीत'[8], प्रो० सुरेशचन्द की 'बीज का मुक्तिगान'[9], विनोदशाही की 'जागृतिदूत'[10], विजयलक्ष्मी विभा की 'अनहोनीबात'[11] और 'निचुड़ गया मन'[12], श्री कृष्ण

१.	सरस्वती	जनवरी,	१९७३,	पृ०	७३
२.	वही	जून ,	,,	पृ०	४३१
३	वही	,,	,,	पृ०	४५६
४	वही	अक्टूबर	,,	पृ०	३१३
५	वही	फरवरी	,,	पृ०	१५४
६	वही	,,	,,	पृ०	२०६
७	वही	,,	,,	पृ०	२१६
८	वही	अप्रैल	,,	पृ०	२७३
९	वही	अप्रैल	,,	पृ०	२८६
१०	वही	,,	,,	पृ०	२११
११	वही	,,	,,	पृ०	३१४
१२	वही	जून	,,	पृ०	४४३

कमलेश की `नवगीत छोटे शहर का[1]` शीर्षक कविताओं में सांचरीय काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं।

अन्य उल्लेखनीय कविताओं में श्री रामसूरत सिंह `राजीव` की `वोटों का मुनाफा[2]` शीर्षक कविता है जिसमें मिलावट, चार-बाजारी और भ्रष्टाचार जैसी सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया है। डा० कमलाकान्त हीरक की `ईद का दिवस आ रहा है[3]`, `गीत[4]`, `बात करे अजुरी भर[5]` और `गीत[6]` शीर्षक कविताओं में हृदय की कोमल भावनाओं का चित्रण है। रामसूरतसिंह `राजीव` की `वयौता[7]` शीर्षक कविता में आधुनिक साहित्यकार की पुरस्कार लिप्सा पर व्यंग्य किया है। श्री विजयकुमार दुबे की `फूल बिखेर दिये[8]` शीर्षक कविता में आधुनिक प्रतीकों के माध्यम से काव्य-कौशल अभिव्यक्त किया गया है। श्री प्रेम मधुकर की `बरस पड़े वेदों के स्वर[9]` शीर्षक कविता में वर्षा के साथ वैदिक वाणी का रूपकात्मक चित्रण है।

१.	सरस्वती	सितम्बर	१६७३,	पृ० २०५
२.	वही	जनवरी	१६७४	पृ० ४८
३	वही	मार्च	,,	पृ० १५२
४	वही	मार्च	,,	पृ० १६६
५	वही	मार्च	,,	पृ० २३३
६	वही	मई	,,	पृ० ३६५
७	वही	जून	,,	पृ० ४२५
८	वही	अक्टूबर	,,	पृ० २६६
६	वही	जून	,,	पृ० ४५३

इनके अतिरिक्त श्री हरिशंकर चतुर्वेदी की 'जो पै तुलसी न गावते'[1] और कमलाकान्त हीरक की 'प्राणिकायें'[2] और 'सन्धिपत्र'[3] में हास्य-व्यंग्य का पुट देखने को मिलता है। नर्मदाप्रसाद खरे की 'दीपनिर्वाण'[4], रमाशंकर मिश्र की 'मधुमास की मंगल ऊषा'[5], द्विजेन्द्रनाथ वैद्य की 'जानी दुनिया मो'[6] तथा रश्मिकान्त व्यास की 'नवगीत'[7] शीर्षक कवितायें आधुनिक नवगीत शैली में लिखी गई हैं।

अन्य उल्लेखनीय रचनाओं में देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' की 'खिड़कियों की तीलियों पर'[8], कमलाकान्त हीरक की 'क्षणभर'[9], डा० स्वर्णकिरण की 'निकल रही है केवल आह'[10], राममूर्ति तिवारी की 'सांझ में बिहान है'[11], कुमारी सुदर्शन सोंधी 'रुक गया है पथिक क्यों?'[12] डा० बालमुकुन्द गुप्त की 'मानव को मानव के निकटतम

१	सरस्वती	?		
२	वही	अगस्त	१६७४,	पृ० १०२
३.	वही	सितम्बर	,,	पृ० २३८
४.	वही	अक्टूबर	१६७६	पृ० १७६
५	वही	जनवरी	,,	पृ० २०
६	वही	सितम्बर	,,	पृ० ११६
७	वही	,,	,,	पृ० १२५
८	वही	अप्रैल	,,	पृ० १५६
६	वही	जुलाई	,,	पृ० ७
१०	वही	,,	,,	पृ० २७
११	वही	सितम्बर	,,	पृ० १०३
१२	वही	,,	,,	पृ० ११३

पहुंचने दो[1], उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की 'उसने मेरा हाथ देखा'[2] शीर्षक कवितायें ग्रहण की जा सकती हैं जिनमें युगीन परिवेश का प्रस्तुतिकरण आधुनिक काव्य-शैली में हुआ है ।

वर्ष १९७९ में सरस्वती में प्रकाशित कविताओं में श्री विक्रम जैन की 'मां के प्रति'[3], देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की 'बीसवीं सदी'[4], कमलाकान्त हीरक की 'यादें चूम गईं'[5], डा० किशोर काबरा की 'हरे पत्तों पर छपा शब्दकोष'[6], देवेन्द्र व्यास की 'भेड़िया'[7], कु० ममता की 'अतीत और दो रूप आमन्त्रण'[8], कुमार रवीन्द्र की 'धूप की चट्टान से बंधे'[9], श्री अविनाश वाचस्पति की 'इन्सानियत बनाम मानवता'[10], तेजनारायण काक की 'ऊंचे अधिकारी'[11], मंजु मिश्रा की 'ईमानदार कोशिश'[12], गिरिमोहन 'गुरु' की 'आंखों की राख'[13], भारत

१.	सरस्वती	नवम्बर,	१९७६,	पृ० २०१
२.	वही	दिसम्बर,	,,	पृ० २५३
३	वही	जुलाई,	१९७९	पृ० १
४	वही	,,	,,	पृ० २८
५	वही	,,	,,	पृ० ३१
६	वही	,,	,,	पृ० ३८
७	वही	अगस्त	,,	पृ० ७८
८	वही	,,	,,	पृ० ६४ और १७५, २६१
९	वही	सितम्बर	,,	पृ० १३९
१०	वही	सितम्बर	,,	पृ० १८३
११	वही	अक्टूबर	,,	पृ० १६६
१२	वही	,,	,,	पृ० १८२
१३	वही	,,	,,	पृ० २०१

यायावर की `प्रतिक्षा`[1], प्रो० रामनिवास `मानव` की `आदमी`[2], श्री कुमार रवीन्द्र की `धूर्त वसन्त`[3], कला बछोटिया की `प्रतीक्षा`[4], श्री कृष्ण कमलेश की `सम्पृक्ति`[5], प्रभात की `निरपेक्ष बयान`[6], गिरिमोहन गुरु की `देखो तो`[7] आदि अत्याधुनिक काव्य-शैली में लिखी गई रचनायें हैं। श्री बजरंगी तिवारी `सुमन` का `स्मृतिचित्र`[8] और तेजनारायण काक की `भोलामन`[9] नव गीत शैली में लिखी गई रचनायें हैं।

इसी प्रकार वर्ष १९८० में प्रकाशित कविताओं में कु० ममता की `मंगलमय और सुन्दर और `भूमा`[10], तेजनारायण काक की `जानता नहीं और`साँच को नहीं आँच`[11] और दो छोटी कवितायें, आनन्द सोनी की `बालवर्षा`[12], राजेन्द्र गौतम की `घनकुन्तल मेघ घिरे`[13], निशाव्यास

१.	सरस्वती	नवम्बर,	१९७९,	पृ० २२२
२	वही	,,	,,	पृ० २३७
३	वही	,,	,,	पृ० २४३
४	वही	दिसम्बर	,,	पृ० २६४
५	वही	,,	,,	पृ० २६६
६	वही	,,	,,	पृ० २८४
७	वही	,,	,,	पृ० १९४
८	वही	सितम्बर	१९७९	पृ० १४३
९	वही	नवम्बर	,,	पृ० २२०
१०	वही	जनवरी	१९८०	पृ० १ और १६१ एवं २४७
११	वही	फरवरी	,,	पृ० ६६, १६४
१२	वही	,,	,,	पृ० ७६
१३	वही	मार्च	,,	पृ० ११५

की 'सच और झूठ'[1], आभा द्विवेदी की 'कुहासा'[2], मृत्युञ्जय उपाध्याय की 'हम व्यंग्यकार हैं'[3], श्री सत्यवीर 'मानव' की 'आस्था की कल्पना'[4], हरिशंकर सक्सेना की 'ठिठुरती चेतना'[5], पुरुषोत्तम छ्वाड़ी की 'किसे दोष दें'[6], श्री कुमार रवीन्द्र की 'दिन सुलगते'[7], देवेन्द्रव्यास की 'चौराहा और आजादी का चौथा दशक'[8], रामनिवास मानव की 'प्यार'[9]; श्री रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' की 'तुम अहिल्या हो'[10], श्री हरिशंकर सक्सेना की 'वह भी आदमी है'[11], श्यामसुन्दर घोष की 'कृष्ण और अर्जुन'[12], किशोर काबरा की 'कितनी उथली है मेरी प्यास'[13], कुमार रवीन्द्र की 'पलकों की उलझान में'[14], कमलाकान्त हीरक की 'टुटियों के हरकारे'[15], श्री सिद्धेश्वर की 'आदर्श

१.	सरस्वती	मार्च,	१६७६,	पृ० १२१
२	वही	,,	,,	पृ० १२४
३	वही	,,	१६८०	पृ० १४४
४	वही	अप्रैल	,,	पृ० १५७
५	वही	,,	,,	पृ० १७०
६	वही	,,	,,	पृ० १८०
७	वही	,,	,,	पृ० १८८
८-	वही	,,	,,	पृ० २०४
६	वही	मई	,,	पृ० २१२
१०	वही	,,	,,	पृ० २१५
११	वही	,,	,,	पृ० २१८
१२	वही	,,	,,	पृ० २२२
१३	वही	,,	,,	पृ० २३५
१४	वही	,,	,,	पृ० २४६
१५	वही	जून	,,	पृ० २७७

को सूली पर मत टांगो[१], श्रीधर प्रसाद द्विवेदी की 'कामना गीत'[२], शिवकुमार शारदा की 'मैं अकेला'[३], तेजनारायण काक की 'पत्तों की कहानी'[४], निशाव्यास की 'जमीन पर'[५], आदि नयी काव्यशैली की रचनायें हैं तो प्यारेलाल 'श्रीमाल' की 'मन-मन्दिर', प्रेमचन्द 'वीरत्व'[६], की 'सवनवा का बदरा'[७], विजयकान्तधर दूबे की 'सच विकल होता तभी मन'[८], रामेश्वरशुक्ल 'अंचल' की 'कितनी देर लगी'[९], डा० रामजीत की 'गीत'[१०], श्री हरिप्रसाद द्विवेदी की 'कविता'[११], तेजनारायणकाक की 'गीतनिर्झर'[१२], राजेन्द्रप्रसाद लहरिया की 'सरस्वती वन्दना'[१३], आभासिंह की 'गुनाह न करो'[१४], देवकीनन्दनमिश्र की 'गीत'[१५], राजेश्वरप्रसाद नारायण की 'बुद्ध का चाभ'[१६], रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', की 'जलती रहे मशाल'[१७], और आभासिंह की 'इन्द्रधनुषी सपनों का बोझ'[१८], आदि गीत शैली की रचनायें हैं।

१.	सरस्वती	जून,	१९८०,	पृ० २८०
२	वही	,,	,,	पृ० ३०१
३	वही	अक्टूबर	,,	पृ० १६५
४	वही	,,	,,	पृ० १८२
५	वही	,,	,,	पृ० १८६
६	वही	फरवरी	,,	पृ० ८८
७	वही	मार्च	,,	पृ० १२६
८	वही	,,	,,	पृ० १४०
९	वही	अप्रैल	,,	पृ० १६२
१०	वही	मई	,,	पृ० २०६
११	वही	मई	,,	पृ० २१४
१२	वही	,,	,,	पृ० २२५
१३	वही	,,	,,	पृ० २५६
१४	वही	जून	,,	पृ० २६१
१५	वही	,,	,,	पृ० २६६
१६	वही	जुलाई	,,	पृ० ~~१५७~~ ३१३
१७	वही	अक्तूबर	,,	पृ० १५७
१८	वही	,,	,,	पृ० १६१

अध्याय ४

कहानी

कहानी —

हिन्दी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली सबसे पहली रचना 'रानी केतकी की कहानी' है जो सन् १८०३ में लिखी गई। इसके अनन्तर राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के 'राजा भोज का सपना', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'अद्भुत अपूर्व-स्वप्न' का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें कहानी की सी रोचकता मिलती है। आधुनिक ढंग की कहानियों का आरम्भ आचार्य शुक्ल ने 'सरस्वती-पत्रिका' के प्रकाशन काल से माना है। इन्होंने प्रारम्भिक कहानियों का विवरण इस प्रकार किया है -- (१) 'इन्दुमती' (किशोरी लाल गोस्वामी १६०० ई०), (२) 'गुलबहार' (किशोरी लाल गोस्वामी १६०२ ई०), (३) 'प्लेग की चुड़ैल' (मास्टर भगवानदास १६०२ ई०), (४) 'ग्यारह वर्ष का समय - (रामचन्द्रशुक्ल १६०३), (५) पंडित और पंडितानी - (गिरजादत्त बाजपेयी १६०३ ई०), (६) दुलाई वाली - (बंगमहिला १६०७), ये सभी कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार हिन्दी के प्रथम कहानीकार श्री किशोरीलाल गोस्वामी सिद्ध होते हैं।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी जी की कहानी 'इन्दुमती'[१] १६०० ई० में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रथम बार प्रकाशित हुई, जिससे कहानी साहित्य का आरम्भ होता है। प्रसादगुणसम्पन्न इस कहानी में सात्विक प्रेम के सहजोद्रेक को पारिवारिक सम्बन्धों में वर्चस्व स्थान प्राप्त करते हुए दिखाया गया है। ईश्वर की महिमा को केन्द्रस्थ प्रतिष्ठा देकर ऐसा संयोग

---

१. पं० किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती', सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक।

उपस्थित किया गया है जहाँ एक ओर इन्दुमती के वृद्ध पिता की प्रतिज्ञापूर्ति होती है वहीं दूसरी ओर वनविहंगिनी सुन्दरी इन्दुमती अजयगढ़ के राजकुमार चन्द्रशेखर की पत्नी बन राजप्रसाद रूपी पिंजरे की अधिकारिणी हो जाती है ।

गोस्वामी जी के पश्चात् कहानी के प्रारम्भिक काल में अन्य कहानीकारों की भी कहानियां मिलती हैं । बाबू केशवप्रसाद सिंह, `चन्द्रलोक की यात्रा`[१] (१६०० ई०) में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई । डायरी-प्रणाली पर संयोजित इस लम्बी कहानी में रत्नधाम नगर के हंसपाल की चिट्ठी के जरिए मनुष्य की सामाजिक विवशता पर व्यंग्य किया गया है । वर्णनात्मक शैली में लिखित यह कहानी उस मानवीय कल्पना को मूर्तरूप प्रदान करती है जिसके तहत अनादिकाल से चन्द्रमा पर जाने तथा अन्तरिक्ष विज्ञान का रहस्योद्घाटन करने के प्रति सचेष्टता अभिव्यक्त की गई है । बोलचाल की खड़ी बोली में लिखित इस कहानी में यत्र-तत्र वैज्ञानिकों के नाम तथा वैज्ञानिक संयन्त्रों के नाम तथा यन्त्रों की प्रक्रिया पर भी प्रकाश-क्षेपण किया गया है ।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अनु० लाला पार्वतीनन्दन) `मुक्ति का उपाय`[२] (१६०१ ई०) में सरस्वती में प्रकाशित हुई । हास्य का सृजन करने वाली यह कहानी उन गृहस्थों पर सामाजिक व्यंग्य का निरूपण करती जोकि जीवन से ऊबकर सन्यासी होना चाहते हैं । फकीरचन्द नामक एक पात्र जो कि प्रकृतित: गम्भीर चित्त है वैराग्योन्मुख होकर अपना घर-बार

----

१. बाबू केशवप्रसाद सिंह, `चन्द्रलोक की यात्रा` १६०० ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक ।

२. श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, `मुक्ति का उपाय` १६०१ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक ।

छोड़ देता है किन्तु नियति नटी के खेल से वह जबरन वृद्धमनबोधराम के द्वारा (जिसका कि पुत्र माखनलाल घर छोड़कर भाग गया है) माखनलाल के स्थान पर ले जाया जाता है। मनोवैज्ञानिक संघर्षण तथा मन:स्थिति की भीषण झंझावत उपस्थित करने वाली यह कहानी उस समय दिलचस्प हो उठती है जबकि वृद्धमनबोधराम के परिवार के समस्त सदस्यगण फकीरचन्द को ही माखनलाल मानते हैं, फकीरचन्द के प्रतिरोध का कोई भी असर नहीं होता है।

श्री भगवानदास `प्लेग की चुडैल`[१] (१६०२ ई०) में सरस्वती में प्रकाशित हुई। समसामयिक विषयों में लिखी जाने वाली कहानियों की श्रेणी में आने वाली यह रचना १६०१ में प्रयाग में फैली महामारी का आतंक अभिवर्णित करती है। स्थान-स्थान पर मुहाविरों एवं जनप्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग करते हुए लेखक ने नौकरों के काहिलपन, पण्डितवर्ग की कर्मकाण्ड के प्रति मिथ्या धारणा तथा पुत्र के मातृप्रेम को अभिव्यक्त किया है। वर्णन-प्रधान शैली में लिखित यह कहानी अनेक संस्कार तथा धारणाओं का यथार्थ चित्रण करने में सक्षम है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल की `ग्यारह वर्ष का समय`[२] (१६०३ ई०) मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी इस कहानी में ईश्वर की कृपा, भाग्य के खेल या यों कहें कि विधाता के संयोग से ग्यारह वर्ष के बाद नियति प्रताड़ित पति-पत्नी का मिलन कराया है। दोनों की करुण-कथा का परस्पर विनिमय होता है, दोनों ही संस्कार के वशीभूत होकर अपने निवास को देखने की इच्छा से खंडहर (भवन का संपरिवर्तित भ्रष्ट रूप) में ही वार्तालाप के मध्य सान्निध्य प्राप्त करते हैं तथा यह जान पाते हैं कि वे पति-पत्नी हैं। कथाकार ने इसे

----

१. श्री भगवानदास, `प्लेग की चुडैल`, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक।
२. पं० रामचन्द्र शुक्ल, `ग्यारह वर्ष का समय`, वही ।

इतने कौशल से चित्रित किया है कि इस लम्बी कहानी में पाठक में सतत जिज्ञासा का भाव, कौतूहल की ध्वनि-प्रतिध्वनि आलोडित विलोडित होती रहती है । कहानी में तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है । इस कहानी को बाल विवाह पर एक व्यंग्य भी माना जा सकता है । लेखक ने विशुद्ध भारतीय संस्कार के वशीभूत होकर यह लिखा है कि दाम्पत्य जीवन का प्रेम अदृष्ट प्रेम है जिसकी उत्पत्ति केवल सदाशय तथा निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है । इसकी जड़ संसार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर तथा प्रशस्त है ।

एक वड्•ग महिला `दुलाईवाली`[1] (१९०७ ई०) में मार्मिकता की दृष्टि से प्रशंसनीय स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है । पात्रानुकूल भाषा का संयोजन करने वाली यह कहानी वंशीधर एवं नवलकिशोर की नाटकीयता को अत्यन्त हास्यपूर्ण एवं विस्मयभरी परिस्थिति में पर्यवसित करती है । भारतीय जनजीवन से सम्पृक्त इस कहानी का शीर्षक भी अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक बन पड़ा है ।

श्री सत्यदेव ब्राजक, `आश्चर्यजनक घण्टी`[2] (१९०८ ई०) की घटनाप्रधान इस वर्णनात्मक कहानी का कलेवर अपने अन्तस में खुफियागिरी, ध्वनिविज्ञान के वैज्ञानिक सिद्धान्त, हत्या के आतंक एवं अन्धविश्वास जन्य किंकर्तव्यविमूढ़ता का यथार्थ चित्रण उपस्थित किये हुए है । संवादपूर्ण शैली में लिखित यह कहानी स्काट साहब की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक दृश्य उपस्थित करते हुए जनप्रचलित अन्धविश्वास का खण्डन करके घन्टी के विभिन्न समयानुसार

----

१. एक बंग महिला, `दुलाईवाली` १९०७ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री सत्यदेव ब्राजक, `आश्चर्यजनक घण्टी`, १९०८ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

बज उठने के कारण को आश्चर्यजनक नहीं अपितु ध्वनि के कम्पन सिद्धान्त पर आधृत निरूपित करती है ।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा की `सखीबन्द भाई`[१],(१६०६) ऐतिहासिक घटनाक्रम को केन्द्र में रखकर लिखी गई यह कहानी भारतीय संस्कृति के रक्षाबन्धन पर्व की उज्ज्वलता के माध्यम से रुद्रसिंह की कर्त्तव्यनिष्ठा की परिचायक है । इस आदर्शवादी कहानी का पर्यवसान अत्यन्त भावुकतापूर्ण है ,जहां पर कि कहानीकार ने अन्तिम अनुच्छेद में आद्योपान्त सहज रूप से प्रवाहित घटनाक्रम में रुद्रसिंह के हृदय पर वज्रपात कराया है..... `जिस मूर्ति को हृदय में रखकर वे कोट बांधते थे वह स्वयं पन्ना थी । जिसने राखी भेजी थी वह तो बहन हुई । हृदय का वह बबूला वहीं बैठ गया ।` कहानी लेखक ने `मालूम नहीं करुणानिधि जगदीश्वर ने इन दोनों का क्या न्याय किया` लिखकर वीर हृदय रुद्रसिंह की मृत्यु एवं त जन्य पन्ना के दुख का विधाता को दोष देकर अपनी सहानुभूति व्यक्त की है ।

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का हिन्दी-साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान है । उनकी प्रथम कहानी `उसने कहा था`[२](सन १६१५) में प्रकाशित हुई थी, जो अपने ढंग की अनूठी रचना है । हिन्दी साहित्य की यही सबसे पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है जो कला की प्रत्येक कसौटी पर खरी उतरती है । लहनासिंह के आत्मार्पण की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किये गये नि:स्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज पुलकित रसोद्रेक के

---

१. श्री वृन्दावनलाल वर्मा, `सखीबन्द भाई` १६०६ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, `उसने कहा था`, १६१४ ई० सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक ।

कारण हिन्दी साहित्य का `क्रोश स्तम्भ` (*Mile Stone*) है। इस कहानी में यथार्थवादी के बीच सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित है इसकी घटनायें ही बोल रही हैं पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं है। कहानी का अन्त अत्यन्त गम्भीर एवं शोकपूर्ण होते हुए भी इसमें हास्य और व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषतायें एक से एक बढ़कर हैं।

श्री छबीलेलाल गोस्वामी की `विमाता`[१] (१६१५) में विमाता के हाथ की कठपुतली बने पिता राममोहन की दुर्बलता को चित्रित करके सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला गया है। राममोहन का योग्य पुत्र विश्वभूषण विवश होकर अपना घर बार छोड़कर प्रयाग चला आता है वह यहां बैरिस्टर बन जाता है तथा विमाता के विषपान कर आत्महत्या करने पर अभियुक्त राममोहन को अदालत से छुड़ा लेता है। कहानी की भाषा साधारण, शैली वर्णनात्मक एवं कलेवर लघु है।

श्री ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत थोड़ी संख्या में कहानियां लिखी हैं, किन्तु हिन्दी जगत में उनका अच्छा स्वागत हुआ। `मिलन`[२] (१६१५) में रामानन्द एवं मोहिनी अपने सात्त्विक एवं नि:स्वार्थ प्रेम की अपनी-अपनी योग्यता को क्रमश: आई०सी० एस० एवं प्रधानाचार्या के रूप में प्रमाणित करने के बाद) भावात्मक एकता के माध्यम से वैजयन्ती पत्रिका के कार्यालय में एक

----

१. छबीलेलाल गोस्वामी, `विमाता` १६१५ ई०, सरस्वती पत्रिका।

२. श्री ज्वालादत्त शर्मा, `मिलन`, १६१५ ई०, सरस्वती हीरकजयन्ती विशेषांक।

दूसरे की हिन्दी साहित्य सेवा पर अभिभूत एवं समर्पित होकर व्यक्त करते हैं। पारिवारिक मर्यादा में आबद्ध रहकर भी दोनों के `लरिकाई के प्रेम` की अन्तत: विजय होती है। दोनों दाम्पत्यसूत्र में बंध जाते हैं। इसके पहले रामानन्द लन्दन में रहकर और माहिनी भारत में रहकर एक दूसरे के प्रति योग्यता के नाते श्रद्धावन हैं। कहानी का सुखान्त भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की प्रवृत्ति से लेखक का लगाव दर्शित करता है। यह कहानी शीर्षकोपयुक्त है तथा किसी भी सहृदय पाठक के मनमस्तिष्क को कहानी के घटनाक्रम में साफीदार बना लेने की विशेषता से सम्पृक्त है।

मुंशी प्रेमचन्द के द्वारा रचित कहानियों की संख्या तीन सौ से अधिक है जो `मानसरोवर`[१] के आठ भागों में संगृहीत है। इनकी कहानियों में जन-साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का चित्रण मार्मिक रूप से हुआ। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में सिद्धहस्त थे। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं - उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है, किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई। भाव और विचार का सुन्दर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रेमचन्द जी की `सौत`[२] (१९१५) कहानी, हिन्दी कहानी साहित्य में एक युग का निर्माण करने वाली चरित्र प्रधान है जिसमें कि मनोविश्लेषण के साथ ही साथ सामाजिक तथा सामयिक समस्या को चित्रित किया गया है। इस कहानी के शिल्प-विधान में कथानक, चरित्र तथा शैली

---

१. मुंशीप्रेमचन्द, `मानसरोवर` सरस्वती पत्रिका
२. वही , `सौत` १९१५ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

दोनों में आश्चर्यजनक सुगमता तथा कला का सहज आकर्षण है। स्त्री पात्रों का नामकरण नदियों के नाम साभिप्राय किया गया है। गोदावरी (पात्र) गंगा नदी में चिरविश्राम पाती है जिसका कि कारण गोमती (पात्र) का दुर्व्यवहार तथा पण्डित देवदत्त के प्रेम-व्यवहार का विदोपण है। कहानी सामाजिक समस्या तो निरूपित करती है किन्तु कहानीकार कोई युक्तियुक्त समाधान नहीं प्रस्तुत करता।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा `कौशिक` उर्दू से हिन्दी में आने वाले लेखकों में उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रथम कहानी `रक्षा-बन्धन` [१] (१९१६) में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दृष्टि से `कौशिक` जी प्रेमचन्द की परम्परा में आते हैं, उन्होंने भी समाज-सुधार को अपनी कहानी-कला का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यन्त सरस, सरल एवं रोचक है। उनकी हास्य और विनोद से परिपूर्ण कहानियाँ `चांद` में `दुबे जी की चिट्ठियां` के रूप में प्रकाशित हुई थीं।

`रक्षा-बन्धन` कहानी में पारिवारिक जीवन का अध्ययन, निरीक्षण तथा मनन अत्यन्त सूक्ष्म तथा गम्भीर रीति से संयोजित किया गया है। विधि की विडम्बना से घनश्याम अपनी माता व बहन से बिछुड़ा होता है। संयोगात श्रावणी के महोत्सव पर बालसुलभ चंचलता से युक्त घनश्याम की बहन अनजाने में घनश्याम को ही रक्षाबन्धन का सूत्र बांधती है। कालान्तर में नाटकीय रीति से परिवार के सदस्यों का अभिज्ञान एवं साक्षात्कार होता है। घनश्याम बहन से राखी बंधवा कर उसके बाल्य-स्वभाव सुलभ प्रयुक्त शब्दावली

---

१. श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा `कौशिक`, `रक्षाबन्धन` १९१६, सरस्वती पत्रिका।

को दोहरा कर आत्मीयता व्यक्त करता है । कहानी कला के आधार पर यह कहानी हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है ।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की `झलमला`[१] (१९१६) कहानी में समकालीन कहानियों की तुलना की दृष्टि से छोटी है । भाषा परिमार्जित तथा भावानुरूप है । मानवीय संवेदना के जिस पक्ष को उजागर किया गया है वह भारतीय पारिवारिक जीवन में जीवन्त स्वरूप में प्राप्त होता है । लोकरीति का स्पन्दन अत्यन्त सरल भाषा तथा सहज प्रवाहपूर्ण शैली में किया गया है ।

श्री बालकृष्ण शर्मा `नवीन` की `सन्तू`[२] (१९१८) कहानी की शैली संस्कृतनिष्ठ है । संस्कृत सूक्तियों एवं प्रसंगों का प्रयोग कहानी को गरिमा प्रदान करता है । कहानी चरित्र-प्रधान है जो कि सन्तू के रुग्णता की घटना को दृष्टि में रखकर लिखी गई है । सन्तू का राष्ट्रप्रेम तथा उसके भाई विमल एवं भाभी कमला का सन्तू के प्रति निस्पृह स्नेह पात्रों के प्रति पाठक के मन में सहानुभूति तथा यत्किञ्चित श्रद्धा का भी भावाभिनिवेश करता है ।

`सुदर्शन` जी की `प्रलय की रात्रि`[३] (१९२२) कहानी, जीवन की यथार्थिक घटना व्यवस्था पर आदर्शवादी साधूराम की कर्त्तव्यनिष्ठा तथा पत्नी प्रेम को अभिव्यंजित करने वाली यह कहानी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, सतत सेवा को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाले साधूराम को पत्नी को मौत के मुख से बचाने के लिए ४०० रुपये का गबन करके

----

१. श्री पदुमलाल पुन्नालाल`बख्शी` `झलमला`, १९१६

२. श्री बालकृष्णशर्मा `नवीन` `सन्तू` १९१८ ई० सरस्वती पत्रिका

३. सुदर्शन `प्रलय की रात्रि` १९२२ ई०, सरस्वती पत्रिका

अपराधी की भांति अपने अफसर के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता है । किन्तु अपने अपराध की निश्छल स्वीकारोक्ति उसे पुन: सम्मानित जीवन प्रदान करती है । विद्वान लेखक ने प्रलय की रात्रि को निम्न रूप से व्याख्यायित किया है -- `पत्नी की बीमारी हाथ में पैसा न रहा, लाचार मित्रों से सहायता मांगी परन्तु किसी ने परवाह न की । निराशा ने अंधेरा फैला दिया । इसी अंधेरे में पांव धैर्य की शिला से फिसलते हैं, और सत्यमार्ग आंखों से ओझल हो जाता है । इसी `प्रलय की रात्रि ` में मनुष्य आयु भर की कमाई लुटा बैठता है और मोहरूपी डाकू उसे पाप के रास्ते में डाल देता है ।

श्री गिरिजा दत्त शुक्ल `गिरीश` `देश-द्रोही`[१] (१९२६) कहानी राजनीतिक परिवेश एवं समसामयिक समस्या से सम्पृक्त पूर्णतया यथार्थ सत्य का उद्घाटन करती है । देश सेवा की आड़ लेकर रामदीन जैसे उच्च-शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों द्वारा देश की सम्पत्ति का अपने निहित स्वार्थों में प्रयोग करने वालों पर यह कहानी व्यंग्य है । दूसरी ओर अंग्रेजी शासनकाल में राघवशरण जैसे अफसर द्वारा देशद्रोही रामदीन को सजा देकर यह दिखाया गया है कि देश सेवा का भाव किसी पद या अधिकार द्वारा बाधित नहीं हो सकता ।

श्री इलाचन्द जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्घाटन अन्य लेखकों से अधिक मर्मस्पर्शी रूप में किया है । `अनाश्रित`[२] (१९२७) `सरस्वती` में प्रकाशित होने वाली यथार्थवादी दृष्टिकोण को रखकर मनोग्रन्थियों का

---

१. श्री गिरिजा दत्त शुक्ल `गिरीश` `देशद्रोही` १९२६ ई० सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री इलाचन्द जोशी `अनाश्रित` १९२७ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती

सूक्ष्म किन्तु वैज्ञानिक अभिव्यक्तीकरण करने वाली कहानी, मध्यमवर्गीय नौकरपेशा परिवार की करुण गाथा है, जो कि द्वारिका बाबू को विषम तथा विषमताभरी परिस्थिति में ले जाकर छोड़ देती है । पत्नी वियोग, कुपुत्र के दुष्कर्मों एवं दुर्गति का साक्षात्कार, ऋणबोझ तथा अविवाहित पुत्रियों के विवाह की चिन्ता एवं प्रकृति का असहयोग ये सारे तत्त्व मिलकर एक ऐसा समुच्चय तैयार करते हैं कि द्वारिका बाबू उस आघात को सह नहीं पाते, वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं तथा उनके सन्तान अनाश्रित हो जाते हैं । कहानी कला की दृष्टि से समस्या प्रधान इस कहानी में एक जूझते हुए व्यक्ति की जीवन समर में पराजय दिखाई गई है । आद्योपान्त द्वारिका बाबू पाठक की सहानुभूति समेटे रहते हैं तथा निष्पक्ष रूप से यह कहना पड़ता है कि द्वारिका बाबू व उनकी अबोध सन्तान (कन्याओं) के साथ विधाता न्याय नहीं कर रहा है ।

श्री विनोद शंकर व्यास की `सुख`[१] (१६२७) कहानी में तर्क वितर्कों एवं सम्पुष्ट संवादों के माध्यम से यह व्यक्त किया गया है कि सुख भौतिक विलास सामग्रियों की उपलब्धता का विषय न होकर मानसिक सन्तुष्टि का विषय है । श्यामलाल के चरित्र के माध्यम से यह अभिदर्शित किया गया है कि सुख वैभव में नहीं प्रत्युत तृप्ति में है । कहानी में प्राकृतिक बिम्बों का यथास्थान चित्रण प्रशंसनीय बन पड़ा है ।

श्री नरेन्द्र देव ने `शार्दूलकर्ण की कथा`[२] (१६२८) में बौद्ध

----

१. श्री विनोदशंकर व्यास `सुख`, १६२७, सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री नरेन्द्रदेव `शार्दूलकर्ण की कथा` १६२८ सरस्वती पत्रिका ।

ग्रन्थ दिव्यावदान की ३८ कथाओं में से एक कथा को अभिव्यक्त किया है। वर्ण-व्यवस्था की समस्या को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करके प्रेम एवं भावना को सर्वोपरि बताते हुए मानवता को जाति-वर्ण भेदों से ऊंचा स्थान प्रदान किया गया है। 'जन्मना ब्राह्मण की श्रेष्ठता का कोई भी तर्कसम्मत आधार नहीं है' मातंगराज के तर्कपूर्ण कथन इसकी पुष्टि में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कहानी में शैलीगत कसावट तथा बौद्धमत से सन्दर्भित शब्दावली का बेबाक प्रयोग है। इस कहानी का निष्कर्ष यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र संज्ञा मात्र है। मानव को आर्य सत्यों की प्राप्ति के लिए किये गये उद्योग एवं अपने प्रत्येक कार्य की प्रत्यवेक्षा से वैराग्य की प्राप्ति तथा धर्म का साक्षात्कार होता है।

श्री बदरी नाथ भट्ट 'ग्रेजुएट की नौकरी'[१] (१६२८) में 'तीन बुलाए तेरह आये निज-निज विपदा रोय सुनाएं' क्यों सखि साजन वा ग्रेजुएट।' भारतेन्दु की उक्त पंक्तियों की भांति 'ग्रेजुएट की नौकरी' नामक कहानी धनपशुओं की पढ़े लिखे युवकों के प्रति अभद्रता भरी नजर की बानगी है। इस कहानी के माध्यम से समाज की व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है। कहानी में उर्दू शब्दों का प्राचुर्य है। राजदरबार में होने वाली चापलूसी का यथार्थ चित्रण किया गया है। कहानी का चरम बिन्दु ग्रेजुएट के एक हाथ में उल्लू का पिंजड़ा तथा दूसरे हाथ से गधे का कान पकड़े हुए प्रवेश करते समय होता है। कहानी घटनाप्रधान है तथा समसामयिक समाज की गतिविधि का चित्रांकन करती है।

श्री जगदीश झा विमल 'विधवा'[२] (१६२८) कहानी

---

१ श्री बदरीनाथ भट्ट, 'ग्रेजुएट की नौकरी' १६२८ ई० सरस्वती पत्रिका।
२. श्री जगदीश झा विमल, 'विधवा' १६२८ ई ,, ,,

पारिवारिक सम्बन्धों में विधवा की दयनीय दशा को इस कहानी के माध्यम से व्यक्त किया गया है। केशव अपनी पत्नी तथा विधवा भाभी को लेकर संयुक्त परिवार से अलग होने को बाध्य होता है। उसके चाचा अपनी युवा-पत्नी के वर्चस्व के कारण चाहते हुए भी विपन्न केशव को आर्थिक मदद नहीं दे पाते हैं केशव की पत्नी की इहलीला का संवरण होता है। इस बीच एक सहवर्ती कथानक कहानी के घटनाक्रम में इस प्रकार से उपस्थित होता है कि केशव के भाई के मित्र जो कि मुसलमान एवं डाक्टर हैं केशव की पत्नी तथा भाभी के इलाज में पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं किन्तु अन्तत: उस डाक्टर की नियत केशव की भाभी के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने को हो उठती है समाज तथा परिस्थितियों से प्रताड़ित विधवा आत्महत्या कर लेती है वह भी अपनी बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन के माध्यम से थाने में। आत्मबलिदान के उपरान्त वह विधवा सबकी प्रशंसा का पात्र बन जाती है। भावुकता नयी प्रवाहपूर्ण शैली में यह कहानी विधवा-समस्या को प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रश्नचिन्ह के रूप में छोड़ देती है।

श्री भगवती प्रसाद बाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्घाटन किया है। `अनिश्चय`[१] (१६२६) कहानी मानव मनोविज्ञान का प्राणतत्व बनाकर विद्वान लेखक ने रमेश के हृदय में सरिता के प्रति संचित बालप्रेम का उद्दाम पारावार दिखाया है। सरिता सामाजिक नाते-रिश्तों के कारण रमेश की भाभी लगने लगती है। इसके पहले एक उपन्यास की पुस्तक में सरिता ने कतिपय स्थलों पर पेन्सिल की रेखाएं खींची थीं। रमेश ने उन मर्मस्पर्शी स्थलों में से एकाध को पढ़कर शेष को न पढ़ने का निश्चय किया था। किन्तु कालान्तर में रमेश ने जब सरिता को भाभी के रूप में

----

१. श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी, `अनिश्चय` १६२६, सरस्वती पत्रिका, हीरक जयन्ती विशेषांक।

स्वीकार कर उसका चरणस्पर्श करना चाहा था सरिता के प्रेमाश्रु तथा इस वाक्य ने `कभी-कभी चिट्ठी तो भेजा करो रमेश` ने रमेश के हृदय में एक भीषण झंझावात सा उपस्थित कर दिया था । वह उपन्यास की उसी पुस्तक को इस उद्देश्य से पुन: पढ़ने बैठा था कि सरिता के द्वारा रेखांकित स्थलों को पढ़ेगा किन्तु वह उस पुस्तक को पढ़ने न पढ़ने की अनिश्चयात्मक स्थिति में ही रह जाता है । भाषा मर्मस्पर्शी भावों का सृजन करने में समर्थ है ।

श्री पृथवीराज शर्मा, `रज्जू का सौदा`[१] (१६२६) कहानी रज्जू नामक एक निर्धन व्यक्ति द्वारा अपने सन्तान की देखभाल करने की अक्षमता के कारण पुत्र को लावारिस छोड़ देने की कहानी है । वह पुत्र सन्तान ही दम्पत्ति द्वारा पोषित किया जाता है तथा अत्यन्त शान शौकत से रज्जू का पुत्र अपने जीवन की तरुणाई को व्यतीत कर उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु लन्दन जाता है । रज्जू को अपने पुत्र को सुखी देखकर सन्तोष एवं सुख प्राप्त होता था किन्तु कहानी का पर्यवसान अत्यन्त कारुणिक है । रज्जू अपने पुत्र से मिलने की उत्कट अभिलाषा के बावजूद उसे वास्तविकता के होते हुए भी अपना पुत्र नहीं कह सकता ।

श्री जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं के स्थान पर सूक्ष्म मनोविज्ञान का चित्रण किया है । इनके आगमन से हिन्दी कहानी साहित्य का दूसरा युग आरम्भ होता है । उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नई अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिकता, गहराई प्रदान की । किन्तु इन्होंने सामान्य मानव की सामान्य परिस्थितियों से प्रभावित मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया । उनका दृष्टिकोण समाजवादी की अपेक्षा व्यक्तिवादी, भौतिकवादी की अपेक्षा

----

१ श्री पृथवीराज शर्मा, `रज्जू का सौदा` १६२६ ई० सरस्वती पत्रिका ।

से समाविष्ट किए हुए है कि यह जहाँ एक ओर धनपशुओं की लोभलिप्सा के आगे मानवता को ठोकर मारने का चित्रण करती है वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों से समन्वित एक पतिप्राणा समाजसेवी तथा क्षमाशील भारतीय नारी कमला के चरित्र को उजागर करती है। कहानी को उपसंहृत करने वाली पंक्तियों में कमला के पिता राजकिशोर का अपने समधी के प्रति यह कथन 'जैसी हमारी इज्जत, वैसी ही आपकी है।' उनके क्षमाशील व्यक्तित्व,आत्म-सन्तोष तथा प्रकारान्तर से विजय-गर्व की सूचक हैं।

श्री लक्ष्मीकान्त झा 'रात का सफर'[1] (१६३२) में वर्णनात्मक शैली में लेखक ने रेलयात्रा के अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त किया है। स्थान-स्थान पर चुटीले व्यंग्य तथा समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण स्पष्ट है। भाषा में भावानुरूप प्रवाह है। यह कहानी स्मृतिचित्र के रूप में भी अभिकथ्य है।

श्री घनीराम प्रेम 'बहन'[2] (१६३२) मेडिकल छात्रा रजनी एवं सतीश का प्रणय-प्रेम प्रसंग अपने उत्थान पर सहज गति से व्यवहृत हो रहा था कि रजनी की अनुजा लता अकस्मात् सतीश के सम्पर्क में आ जाती है। सतीश लता से विवाह की अनुमति चाहता है किन्तु लता के हृदय में मर्मस्पर्शी भवनाएं अपनी बड़ी बहन के प्रति अन्याय करने से उसे विरत करती है। रजनी अपनी बहन की सद्भावना एवं अपने कथित प्रेमी सतीश के प्रति प्रेम के प्रतिदान स्वरूप स्वयं को उनके रास्ते से हटाकर आत्महत्या कर लेती है। कहानी प्रेम त्रिकोण को चित्रित करती है। भाषा प्रांजल है।

---

१. श्री लक्ष्मीकान्त झा, 'रात का सफर' १६३२ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक।

२. श्री घनीराम प्रेम 'बहन' १६३२ ई०, सरस्वती पत्रिका।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त `ज्योत्स्ना`[१] (१६३३) प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में कहानी का पात्र बनाकर लिखी गई यह कहानी नितान्त तत्सम शब्दों से बोझिल संस्कृतनिष्ठ शैली में समायोजित है। यह कहानी कल्पना तत्वों से युक्त सामान्य पाठक से अतिरिक्त सावधानी तथा धैर्य की अपेक्षा करती है। कहानी के बीच-बीच में गीत का संयोजन `पन्त` जी की काव्यप्रियता का तथा कहानी में काव्यमयता का स्वर मुखर होता है।

बाबू जयशंकर प्रसाद जी की आरम्भिक कहानियों पर बंगला का प्रभाव है, किन्तु बाद में वे अपनी स्वतन्त्र शैली का विकास कर सके। उनके दृष्टिकोण में भावात्मकता की रंगीनी होने के कारण उनकी कहानियां भी इसी से ओत-प्रोत हैं। उनमें भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण, वातावरण की सघनता एवं शैली की गम्भीरता अधिक है, स्थूल समस्याओं एवं सरल विचारों का प्रतिपादन उसमें कम हुआ है। उनकी कुछ कहानियों में ऐतिहासिक कथानकों को लिया गया है किन्तु फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रसाद जी की कहानियों में रहस्यवाद की अस्पष्टता, दर्शन की जटिलता एवं विचारों की दुरूहता के कारण मनोरंजन की मात्रा कम हो गई है।

`नूरी`[२] ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखित यह कहानी भावों की मार्मिकता को अत्यन्त सजीव वाणी देती है। नियति नटी के क्रीडांगन में नूरी और शाहजादा याकूब खां अपने प्रेम को कायिक कोलाहल देने की वेला में पकड़े जाने पर बादशाह अकबर द्वारा क्रमश: बन्दिनी निर्वासित रूप में पाते

----

१. श्री सुमित्रानन्दनपन्त, `ज्योत्स्ना` १६३३ ई०, सरस्वती पत्रिका।

२. बाबू जयशंकरप्रसाद `नूरी` सरस्वती हीर जयन्ती विशेषांक ।

हैं । अट्ठारह वर्षों बाद इन प्रेमी युगलों का अकस्मात् मिलन होता है । मिलन क्षण में दोनों की परिस्थिति पाठक की सहानुभूति से परिवेष्टित होती है । परिमार्जित शैली, सुष्ठुभाषा तथा यथास्थान भावानुरूप शब्द संयोजन की दृष्टि से यह कहानी श्रेष्ठ है । प्रेम तथा कर्त्तव्यपरायणता की समन्विति कहानी के अन्तिम वाक्यों में द्रष्टव्य है -- 'नूरी उसका सिर हाथों पर लेकर उसे लिटाने लगी । साथ ही अभागे याकूब के खुले हुए प्यासे मुंह में नूरी की आंखों के आंसू टपाटप गिरने लगे ।'

श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है, किन्तु उनकी शैली में 'उग्र' जी की सी उग्रता नहीं है । 'उग्र' जी की सी यथार्थवादिता भी उनमें नहीं मिलती ।

'भग्नहृदय'[१] (१६३३) मार्मिक चित्रप्रधान कहानी, परिनिष्ठित भाषा-शैली, शीर्षक कथोपयुक्त कहानी में एक मित्र का दूसरे मित्र की पत्नी विमला के प्रति अभिदर्शित किया गया है । विमला को वह अपना सर्वस्व मानता है तथा विमला की पुत्री के नाम इम्पीरियल बैंक में लगभग सवालाख रुपया दान के रूप में जमाकर चुका है । विमला की बेटी प्रतिमा उसकी बेटी है । बेटी का धन वह नहीं खा सकता । इस व्यक्ति के चरित्र की उदात्तता उस समय परिलक्षित होती है जबकि वह स्वयं गीती की पुस्तकें बेचकर अति सामान्य रहन-सहन से जीवित रहता है तथा विमला एवं प्रतिमा की कुशल-कामना रग-रग तथा रोम-रोम से चाहता है ।

श्रीमती उषा देवी 'प्रतीक्षा'[२] (१६३३) मानवमनोविज्ञान

---

१. श्री चतुरसेन शास्त्री, 'भग्नहृदय' १६३३ ई० सरस्वती पत्रिका ।

२. श्रीमती उषा देवी 'प्रतीक्षा' १६३३ ई० सरस्वती पत्रिका ।

सफल चित्रांकन करने वाली इस कहानी में यमुना के सात्विक, निश्छल तथा पराकाष्ठा रूढ़ प्रेम की विजय का कथानक वर्णित है। प्रसाद गुण प्रधान इस कहानी में `यह कैसा सर्वग्रासी प्रेम, अटल प्रतीक्षा है।` तथा `दर्शकों में एक दर्द भरी व्याकुल नीरवता छाई हुई थी।` वाक्यों के द्वारा लेखिका ने यमुना के विशुद्ध आत्मसमर्पण को चित्रित किया है तथा तज्जन्य स्तब्ध किन्तु विस्मयकारी वातावरण भी सृजित किया है।

श्री रामकुमार वर्मा `दस मिनट`[१] (१९३३) घटना प्रधान यह कथानक बलदेव के द्वारा अपनी बहन वासन्ती की अस्मिता की सुरक्षा के लिए रक्तरंजित हत्या तथा महादेव के द्वारा बलदेव (मित्र) के लिए बलिदान की आदर्श गाथा है। परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ शैली में यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से रंगमंच पर प्रस्तुत करने योग्य है। कहानी का शीर्षक `दस मिनट` इस अर्थ में चरितार्थ होता है कि इस अल्प समय में महादेव बलदेव को पुलिस इंस्पेक्टर तथा कानूनी शिकंजे से बखूबी परित्राण दिलाने में सक्षम हो जाता है।

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, `चिकित्सा का चक्कर`[२] (१९३४) इस वर्णनात्मक कहानी में संस्मरण मिश्रित लेख का हास्य-व्यंग्य अत्यन्त ही सटीक बन पड़ा है। चुटीले व्यंग्यों से समन्वित यह कहानी वैद्य, डाक्टर होम्योपैथ और हकीम प्रभृति लोगों द्वारा चिकित्सा के नाम पर मरीज को कराई जाने वाली कवायद का सुस्पष्ट रेखांकन करती है। पेट की गड़बड़ी को दूर करने के लिए एक डेन्टिस्ट द्वारा दांत निकलवाने की राय के बाद उसे

----

१. श्री रामकुमार वर्मा, `दस मिनट`, १९३३ ई०, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक।

२. श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, `चिकित्सा का चक्कर`, १९३४ ई० सरस्वती पत्रिका।

उसे अपनी श्रीमती जी की ही चिकित्सा पद्धति पसन्द आती है कि 'रोज सुबह टहला करो ।' भाषा सरल, प्रसादगुण युक्त एवं मुहावरेदार है ।

श्री श्रीनाथ सिंह की 'गरीबों का स्वर्ग'[1] (१९३४) में महाजनी सभ्यता के पोषक धनपशुओं का भयानक तथा दुर्दान्त अत्याचार एक गरीब किसान रमेश पर इस कदर कहर ढाता है कि वह मेहनतकश मजदूरी के द्वारा उत्पादित अन्न को महाजन के हाथों देने के लिए विवश हो जाता है । रात्रि के अन्धकार में वह अनाज की रास में से कुछ अन्न ले जाने को उद्यत होता है कि चोरी का अभियोग उसके ऊपर लग जाता है । छः मास के सश्रम कारावास की अवधि में उसकी पत्नी रानी अपने पति से जेल में मिलने जाती है तो उसे कटु अनुभवों के बाद रमेश के चेहरे पर विश्रान्ति के भाव से सन्तोष होता है । वह लौटकर पति के रिहा होने पर उसे देखने के लिए तपस्विनी सा जीवन व्यतीत करती है । पति-दर्शन पाकर वह क्लान्त तथा भुखमरी का शिकार अबला प्राण त्याग करती है । उसकी मूक भाषा को लेखक ने इस वाक्य 'जब किसी प्रकार पेट न भरेगा तो अपने उसी गरीबों के स्वर्ग में चले जाओगे' द्वारा व्यक्त किया है । घटनाप्रधान चरित्र-चित्रण करने वाली यह कहानी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है ।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है । उनमें विश्लेषण की गम्भीरता के साथ-साथ मार्मिकता और रोचकता का भी गुण मिलता है ।

'विवशता'[2] (१९३६) में भगवतीचरण वर्मा ने इस कहानी में

----

१. श्री श्रीनाथ सिंह 'गरीबों का स्वर्ग' १९३४ ई० सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'विवशता', १९३६ ई०, सरस्वती पत्रिका हीरक जयन्ती विशेषांक ।

प्रेम के त्रिकोण को रमेश लीला तथा रामकिशोर के मध्य चित्रित किया है। रमेश की विवशता इस बात में है कि लीला को दिल से चाहते हुए भी लीला को पत्नी रूप में नहीं पा सका। लीला का विवाह एक धनाढ्य किन्तु शराबी तथा कर्तव्यहीन रामकिशोर से होता है। लीला विवशभाव से हार्दिक क्लेश के बावजूद क्लान्त होकर परिस्थिति से समझौता करती है। उसका पति एक वारंट से गिरफतार होता है तो लीला अपने पूर्वप्रेमी (मेहमान) रमेश की सूटकेस से दो सौ रुपये निकाल लेती है तथा उसे अपने द्वारा की गई चोरी समझकर वह क्षमा याचना करती है किन्तु रमेश लीला की विवशता को अपराध नहीं मानता वह कहता है -- `लीला, मैं यह नहीं कह सकता कि तुमने कोई अपराध किया है या नहीं ..... भगवान तुम्हारा भला करे।` कहानी की भाषा भावानुरूप है तथा चरित्रांकन में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण स्पृहणीय है।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, `रंगीन सपना`[१] (१९३६) कहानी में श्यामलाल अपनी सहकर्मिणी चन्द्रावती के साहचर्य में मेडिकल स्टोर्स की दुकान करने के साथ उसे भावात्मक रूप से अपनी प्रेमिका मानने लगता है। उसकी दुकान खूब चलने लगती है। इस आवेग में वह अपनी पत्नी का स्वास्थ्य गिरते हुए देखकर भी अनदेखा कर जाता है। फलत: उसकी पत्नी को मृत्यु-प्राप्त होती है। चन्द्रावती श्यामलाल की आँखें खोलते हुए कहती है `स्त्री तो गई, दो बच्चे हैं। उनके प्रति अपना कर्त्तव्य समझो उसे करो। अपने रंगीन सपने को सदा के लिए दूर फेंको। मनुष्य बनो।` चन्द्रावती प्रायश्चित करते हुए दुकान का एकमात्र स्वत्वाधिकारी श्यामलाल को बनाकर रामनाथ के साथ विवाह कर लेती है। इस कहानी में रंगीन सपनों को मनुष्य के भावात्मक

---

१. श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, `रंगीन सपना`, १९३६ ई०, सरस्वती पत्रिका।

मनोप्रवाह के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है । कहानी रंगमंच पर प्रस्तुत की जा सकती है । कथोपकथन तथा पात्रों के चरित्र-चित्रांकन में लेखक ने भावानुगामी प्रांजल भाषा प्रयुक्त की है ।

राजा राधिका रमणप्रसाद सिंह `इस हाथ दे उस हाथ ले`[1] (१६३६) यथार्थवादी परिस्थितियों का सफल चित्रांकन करने वाली यह कहानी कर्मानुसार परिणाम के सिद्धान्त को प्रतिपादित करती है । भावुकता एवं मार्मिकता से सम्पृक्त इस कहानी के अन्तश्चेतना में समसामयिक सामाजिक विषमता का विद्रूप बिम्ब है तथा प्रकृति के सहज कार्य-व्यापार का कथानक के समनुरूप स्पष्ट अंकन है । जहां मथुरा बाबू की अन्धस्वार्थता उनकी तबाही तथा मृत्यु का कारण बनती है वहीं उनके मित्र की सेवापरायणता तथा मानवता न केवल उनके मित्र को अपितु मित्र के परिवार को भी भीषण झंझावात तथा भूकम्प में सुरक्षित रखती है । `वसुधैवकुटुम्बकम्` की भावना से आलोडित विलोडित यह कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है ।

श्री मोहनलाल महतो, `वे बच्चे`[2] (१६३७) भीषण गर्मी में गांव के बाजार का चित्रण करने वाली यह कहानी प्रत्येक पाठक के मनोमस्तिष्क को पिताविहीन अनाथ जग्गन व सुक्कन (उम्र क्रमश: १२ वर्ष व ७ वर्ष) के प्रति सहानुभूति संचय की कहानी है । ग्रीष्म की उष्णता, समाज की उदासीनता, गरीबी एवं भुखमरी की चोट इन सबके समेकन से सुक्कन व जग्गन अपनी रुग्ण मां की सेवा करने की अभिलालसा रखते हुए भी तृषित कण्ठ से जेठ की दुपहरिया में देह-त्याग कर देते हैं । लेखक ने अत्यन्त मार्मिक रूप से कहानी का उपसंहार करते हुए बच्चों की मां लाचारी तथा विधाता के अन्याय

---

१. राजा राधिका रमणप्रसाद सिंह, `इस हाथ दे उस हाथ ले`, १६३६ ई० सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री मोहनलाल महतो, `वे बच्चे` १६३७ ई० सरस्वती पत्रिका ।

को चुनौती दी है। हवा और तारे, पृथवी और आकाश इनमें से कोई भी बच्चों की मां को बच्चों के देहावसान का सन्देश नहीं देते। लेखक कह उठता है -- 'यदि विधाता ने इन्हें गूंगा बनाया था तो दुर्भाग्य के कंठ में तो वाणी दे देते। जो हो, पर विधाता से बहस नहीं की जा सकती - लाचारी है।'

हजरत तस्लीम लखनवी, 'मुंशी बख्तावरलाल[१] (१६३६) में वर्णनात्मक शैली, उर्दू, शब्दों का प्रयोग प्राचुर्य, सहज प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। कहानी में चापलूस किस्म के व्यक्ति मुंशी बख्तावरलाल की झूठ बयानी, मिथ्या डींगों और इन तत्वों के माध्यम से वर्चस्व प्रतिष्ठापना के असफल प्रयास का खुलासा किया गया है। यह कहानी चरित्र-प्रधान है - ऐसा चरित्र जिसका कोई सिद्धान्त नहीं, कोई आदर्श नहीं।

श्री सेठ गोविन्ददास - 'ईद और होली'[२] (१६४०) साम्प्रदायिक एकता प्रतिपादित करने की दृष्टि से लिखा गया यह लघु नाटक पांच वर्ष के बच्चों राम और हमीदा के परस्पर स्नेह का चित्रण कर उनके अभिभावकों में भी साम्प्रदायिक विद्वेष से ऊपर उठकर मानवता की संसृष्टि करता है। हमीदा के पिता खुदाबख्श तथा राम की माता रतना अब एक दूसरे को काफिर और म्लेच्छ न कहकर बहन तथा भाई मानने लगते हैं। कहानी में उपसंहृत करने वाला वाक्य -- 'हां, मा, इछने मुधे ईद ती छिमइयां थिलाई थीं, आद मैंने इछे होली ती मिथाई थिलाई है।' बालकों की तोतली भाषा और उसे ज्यों का त्यों प्रयुक्त करने का सजीव उदाहरण है।

---

१. हजरत तस्लीमलखनवी, 'मुंशी बख्तावरलाल' १६३६ ई०, सरस्वती पत्रिका।

२. श्री सेठ गोविन्ददास, 'ईद और होली', १६४० ई०, सरस्वती पत्रिका।

श्रीमती विपुला देवी, `कायर`[1] (१९४१) प्रसादगुण युक्त इस कहानी में यत्र-तत्र ओज के दर्शन होते हैं। यह कहानी अपनी मूल चेतना में मौलिक नहीं है। युद्ध वर्णन प्राय: उसी शैली, परम्परा और यहां तक कि अनेक स्थलों पर `उसने कहा था` नामक कहानी की शब्दावली का अनुकरण मात्र है। यह कहानी मानसिंह नामक युवक के वीरता की गाथा है जिसे पारिवारिक संस्कार से युद्ध प्रेरणा प्राप्त कर लेती है। सरल भाषा का प्रयोग करते हुए लेखिका ने अन्त में `वह कायर ?` लिखकर शीर्षकोपयुक्तता ला दी है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान - `तीन बच्चे`[2] (१९४१)

मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दनवन सी फूल उठी वह छोटी सी कुटिया मेरी ।।

पंक्तियों को लिखने वाली हिन्दी साहित्य सेवी इस महिला लेखिका का वात्सल्यभाव पूरी कहानी में अपने सहज पुलकित रसोद्रेक के साथ प्रस्तुत हुआ है। इस कहानी को `स्मृति की रेखाओं` नामक शीर्षक में भी निबद्ध किया जा सकता है। तीन निस्सहाय अबोध बालक गा-गाकर भिक्षा मांगकर जीवनयापन करते हैं। उनकी मां जेल में है क्योंकि उसने पुलिस वाले को पीटा था। इसके समानान्तर ही सत्याग्रह करके जेल जाने वाली लेखिका के तीन बच्चे भी घर पर हैं। इस महिला की सेवा में वह अनाथ बच्चों की मां नियुक्त है। वह अपने छोटे बच्चे के साथ ही साथ लेखिका की बिटिया की भी परवरिश करती है। एक रात प्रकृति की अट्टाहास लीला में भयानक भूकम्प तथा अतिवृष्टि में लखिया के तीनों अनाथ बच्चे नाले में बह गये। लेखिका इस दुखद समाचार

----

१. श्रीमती विपुला देवी, `कायर`, १९४१ ई०, सरस्वती पत्रिका
२. श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, `तीन बच्चे`, १९४१ ई०,सरस्वती पत्रिका।

को अकेले सहन करती है । उसमें यह साहस नहीं जग पाता कि एक माँ को वह कैसे उसके तीन बेचारे असहाय बच्चों की मृत्यु का समाचार सुनाये । भाषा माधुर्य गुण प्रधान है तथा शैली मर्मस्पर्शी और शब्दचयन वातावरण की वस्तुस्थिति समझाने के पूर्णत: योग्य है ।

पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, `बड़े दिन का शिकार`[१] (१६४२) यह कहानी प्रारम्भ में तो सहज एवं स्वाभाविक प्रतीत होती है किन्तु बाद में कथाक्रम के विकास के साथ ही साथ हास्य की सृष्टि होती है जबकि निष्कर्ष रूप में यह ज्ञात होता है कि प्रमोद ने तो साझी को सौ रुपये देकर मूर्ख बनाना चाहा था किन्तु साझी ने उसे तीन सौ रुपये का झाँसा इस प्रकार से दिया कि प्रथम तो वह दो सौ रुपये प्रमोद के पिता जी से पेशगी ले गया था दूसरे वह झाड़ी में छिपकर प्रमोद की गोली को अपने टाँग में लगने का सफलतापूर्वक अभिनय करके सौ रुपये बतौर मुआवजा के ले गया । भाषा पात्र की सहज संप्रेषणीय एवं स्वाभाविक बोली में निबद्ध है । यह कहानी लघु-नाट्य के रूप में अभिप्रस्तुत करने योग्य है ।

श्री महन्त घनरापुरी (१६४२) `मृत्यु से मुठभेड़`[२] यह कहानी घटना प्रधान तथा युगीन मनोरंजन के स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाली है । सामन्ती शौक शिकार का दिलचस्प वर्णन करने वाली इस कहानी में एक बाघ का शिकार करने वाले शिकारी का शिकार करते समय ठाँढी पर से गिरने के बाद भी बचे रहने का वर्णन किया गया है । उसके मित्र का यह कथन कि `वह तो थी मृत्यु से मुठभेड, आप एक अनुपम शिकारी हैं ।` वस्तुत: शिष्ट व्यंग्य है । भाषा प्रवाहमय तथा लेखनशैली वर्णनात्मक है जिसमें मनोविज्ञान के

---

१. पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, `बड़े दिन का शिकार`, १६४२ ई, सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री महन्त घनरापुरी, `मृत्य से मुठभेड`,१६४२ ई० सरस्वती पत्रिका ।

आधार पर चरित्र का विवेचन सराहनीय है ।

श्रीयुत पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र ` का प्रवेश हिन्दी कहानी जगत में सन १६२२ में हुआ । आपकी उग्रता के प्रभाव को आलोचकों ने `उल्कापात`, `धूमकेतु `, `तूफान`, या `बवंडर ` की उपमा दी है इसी से आपकी कला के विद्रोही रूप का अनुमान किया जा सकता है । उन्होंने अपनी रचनाओं में राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति गहरा विद्रोह व्यक्त किया । उसमें वीभत्सता एवं अश्लीलता भी आ गई है, किन्तु उनका उद्देश्य जीवन की इस कुरूपता का प्रचार करना नहीं, अपितु उसका अन्त करना है ।

`पेशावर एक्सप्रेस `[१] (१६४२) प्रसादगुण प्रधान, सरलभाषा में लिखित यह कहानी स्मृति के आधार पर लेखक की रेलयात्रा का संस्मरणात्मक विवरण प्रस्तुत करती है । रेलयात्रा के दौरान मार्ग में आने वाले प्राकृतिक वातावरण, तरह-तरह के लोगों के प्रति मन में उठने वाले अनेक विचार वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत किये गये हैं । यत्र-तत्र व्यक्ति विशेष का स्वभाव चित्रण कर प्रकारान्तर से सामाजिक विद्रूपता पर व्यंग्य निरूपित किया गया है ।

श्रीयुत श्रीराम शर्मा `राम `, `अब पछताये होत क्या `[२] (१६४२) जीवन में आर्थिक चरमोपलब्धि के बाद रामदीन के एकदम से विपन्न होने की यह कहानी एक ऐसा आदर्शप्रद दस्तावेज है जिसमें प्रतिहिंसाग्नि में तप्त रामदीन कान्ता के विवाह में विघ्न डालता है । उसे अपने इस कुकर्म के

----

१. श्रीयुत पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र `, `पेशावर एक्सप्रेस ` १६४२ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

२. श्रीयुत श्रीराम शर्मा `राम `, `अब पछताये होत क्या` १६४२ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

प्रति ग्लानि भी होती है किन्तु उसका प्रायश्चित प्राय: निर्मूल्य सा रह जाता है जबकि विवाह-विच्छेद उसकी इच्छा के विरुद्ध पूर्ण होता है । यह कहानी फ्लैशबैक पद्धति पर आयोजित चरित्र-चित्रण प्रधान कहानी है जिसमें कि मानवीय भावों को संवेदना के सुकोमल धरातल पर प्रस्तुत किया गया है ।

श्रीयुत धर्मवीर भारती ने मुख्यत: शहरी मध्यमवर्गीय जीवन की आन्तरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है । शिल्प और शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतनता पर बल दिया है । इनका दृष्टिकोण अति यथार्थवादी तथा लक्ष्य यौनविकृतियों, कुंठाओं, अभावों आदि के चित्रण कर रहा है ।

`अब धर्म-ईमान कहां ?`[1] (१९४४) `कपड़े के नीचे सभी नंगे हैं`[2] नामक मुहावरे की चेतना को यह कहानी मस्तिष्क पर स्पष्टत: अंकित करती है जिसमें कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति (दुकानदार गन्धर्वसैन, ग्राहक, नारायणदास, वैद्यप्रभुदयाल, भक्त लक्ष्मनदास, दर्जी गुलू तथा प्रोफेसर सिंह साहब इत्यादि) बेईमानी की प्रवृत्ति से युक्त दिखाया गया है । इन व्यक्तियों की इस प्रवृत्ति का दायरा, उसका संवेग, उसकी मात्रा से तो भिन्न प्रकृत्या है । यह कहानी चुभते हुए सामाजिक व्यंग्य की बानगी है ।

श्री विष्णुप्रभाकर `अभाव`[3] (१९४६) कहानी कला के तत्वों की कसौटी पर खरी उतरने वाली इस कहानी की भाषा-शैली कोमल शब्दावली से सम्पृक्त लालित्यपूर्ण तथा प्रसादगुण सम्पन्न है । चरित्र-चित्रण प्रधान इस

----

१. श्रीयुत धर्मवीर भारती, `अब धर्म-ईमान कहां ? १९४४ ई० सरस्वती पत्रिका।

२. ,, ,, ,, , `कपड़े के नीचे सभी नंगे हैं `१९४४ ई०, ,, ,, ।

३. श्री विष्णुप्रभाकर, `अभाव` १९४६ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

कहानी में एक अत्यन्त मृदुभाषिणी, निष्कपट, सरलहृदया महिला का चरित्र अपनी पूर्व गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया है । सन्तानहीना वह भद्र महिला प्रोफेसर साहब जैसे रूखे व्यक्ति की अनिर्वचनीय सहानुभूति की पात्र बन जाती है । कहानी में यत्र-तत्र प्रभावशाली उक्तियां सूत्र रूप में कही गयी हैं । जैसे -- `अमरता तो रुके पानी के समान है ।` `प्रवाह में अन्त है, इसीलिए जीवन है ।` आदि-आदि । कहानी की अन्तिम पंक्तियों में शीर्षकोपयुक्तता दर्शनीय है । `इतने बड़े अभाव को हृदय में छिपाकर भी जो इतना खुलकर हंस सकता है उस व्यक्ति को मैं बार-बार प्रणाम करता हूं ।`

श्री सत्यप्रकाश सेंगर, `कोलाहल`[१] रम्मी तथा नीना का सहज वासनाहीन सत्यप्रेम बाल्यावस्था से तरुणाई में प्रवेश करते ही सामाजिक वर्जनाओं का शिकार बनने लगा । प्रेम में व्यवधानगत आकस्मिकताओं ने रम्मी (प्रेमी) के भविष्यत् जीवन में एक अवांछनीय कोलाहल उत्पन्न कर दिया । चित्रोपम सजीव भाषा में लिखित यह कहानी अत्यन्त मार्मिक, मानवी मनोविज्ञान के विश्लेषक तत्वों से समायुक्त है । कथाक्रम तेजी से घटनाओं में विशृंखलता के क्रोड से प्रकाशित हुआ है तथा इस प्रकार शीर्षक को यथानुरूपोपयुक्तता प्रदान की गई है । यह कहानी समसामयिक घटना चित्रण से युक्त है ।

श्री रामअवतार चौरसिया, `नौ सौ नव दम्पत्तियों का संकट`[२] (१९५५) मालवा की एक किंवदन्ती पर आधारित यह कहानी अपने प्रथम

----

१. श्री सत्यप्रकाश सेंगर, `कोलाहल`, सरस्वती पत्रिका हीरक जयन्ती विशेषांक ।

२. श्री रामअवतार चौरसिया, `नौ सौ नव दम्पत्तियों का संकट` १९५५ ई०, सरस्वती पत्रिका ।

वाक्य में ही या यों कहें कि प्रस्तावक अनुच्छेद में ही कथा के भाव को स्पष्ट कर दिया है। कुष्ठ रोग से पीड़ित एक सुल्तान को हकीम ने नौ सौ नवदम्पत्तियों को रक्त से स्नान करने का नुस्खा बताया था। सुल्तान के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं रतन की प्राणोत्सर्ग की भावना से ओतप्रोत यह कहानी अठारह सौ प्राणों की रक्षा का सफल किन्तु नाटकीय आयोजन है। कहानी कला के तत्वों से यह कहानी युक्त है।

कर्नल राजा पंचमसिंह `ग्वालियर में बबर शेर`[१] (१६५५) तथ्यों पर आधारित यह कहानी श्रीमंत माधवमहाराज के सत्प्रयासों से देश में बबर शेरों की वृद्धि के प्रति संकेत करती है। किन्तु कालान्तर में १६२६ में बबरशेरों के आतंक से भयभीत होकर इनका शिकार किया जाने लगा। कउंसिल आफ रीजेन्सी ने मजनू तथा बड़ा शेरों को मारने का जो आदेश दिया उसके बहाने प्राय: ५०-६० बबर शेर मारे गये। यह कहानी बबर शेरों के आगमन, उत्कर्ष तथा पतन का ग्वालियर राज्य में इतिवृत्तात्मक उल्लेख है।

श्री मनोहरदास चतुर्वेदी `हायरे बाघ, बाघ ?`[२] (१६५५) यह कहानी वन-विभाग के एक अफसर की रोमांचकारी संस्मरण है जो सहज प्रवाहमय भाषा में यत्र-तत्र प्राकृतिक घटा का वर्णन करते हुए बाघ के शिकार की घटना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। शिकार के समय दरपेश दिक्कतें नादान साथियों के कारण शिकार को हाथ से निकल जाने का जो मौका करार्त है उसका वर्णन डाक्टर साहब को आने वाली अनायास खांसी का जिक्र करके किया गया है।

----

१. कर्नल राजा पंचमसिंह, `ग्वालियर में बबर शेर`, १६५५ ई०, सरस्वती पत्रिका।

२. श्री मनोहरदास चतुर्वेदी, `हायरे बाघ, बाघ ?` १६५५ ई०, सरस्वती पत्रिका।

श्री यमुनादत्त वैष्णव `केदों की रौटी `[१] (१६५६) संस्मरणात्मक लेख है। यह कहानी देशकाल की दृष्टि से नेपाल के पहाड़ी इलाके से लेकर न्यूयार्क के सुसज्जित होटल तक विस्तार पाती है। अमेरिकी कर्नल साइमन को कोदों की रोटी एक प्रेरणास्पद व्यंजन के रूप में प्राप्त हुई। वह रोटी प्लेट की शक्ल में थी जिसमें कि दाल चावल रखा हुआ था। अपने उर्वर मस्तिष्क की प्रयासरत चेष्टा से अभिभूत होकर कर्नल ने जिस दो सौ शय्या वाले विशालकाय होटल का संचालन किया उसके मूल में कोदों की रौटी थी क्योंकि जिस पात्र में खाने-पीने का सामान दिया जाता था वह पात्र स्वत: स्वादिष्ट एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थ होता था।

श्री चिरंजीलाल पाराशर, `लाल फीताशाही `[२] (१६५६) यह कहानी लाल फीताशाही पर व्यंग्य है, मूर्खाधिपतियों की श्रेणी में आने वाले आंख के अन्धे और कान के कच्चे अफसर तथा नेताओं की कार्य दक्षता का यह एक ऐसा दस्तावेज है जो व्यवहार में सत्य के निकट है। एक रजिस्टर पर मात्र तीन बूंद रोशनाई के गिर जाने को किस प्रकार तिल का ताड़ बना दिया गया इसे लेखक ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक अभिचित्रित किया है। भाषा विषयानुरूप तथा भावानुरूप है। यत्र-तत्र हास्य की भी संसृष्टि है।

डा० नवलबिहारी मिश्र `मंगलग्रह की पहिली यात्रा `[३] (१६५६) यह कहानी सामयिक घटनाओं के प्रकाश में लिखित काल्पनिक गाथा है जिसमें

----

१. श्री यमुनादत्त वैष्णव, `केदों की रौटी ` १६५६ ई० सरस्वती पत्रिका।
२. श्री चिरंजीलाल पाराशर, `लालफीताशाही` १६५६ ई० सरस्वती पत्रिका।
३. डा० नवलबिहारी मिश्र, `मंगलग्रह की पहली यात्रा` १६५६ ई०, सरस्वती पत्रिका।

एक मनोरोगी की डायरी का वर्णन किया गया है । वह काल्पनिक रूप से स्वयं को मंगल ग्रह का प्रथम यात्री समझता है । कहानी सत्य घटना का आभास देती है । भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न, प्रवाहमयी तथा साथ ही साथ वैज्ञानिक शब्दों के प्रयोग से युक्त है ।

श्री निरंकुश 'तिलोत्तमा'[१] (१६५६) पौराणिक देवी-देवताओं की इस कहानी में अत्यन्त निपुणता के साथ उनके पारस्परिक वार्तालाप, कटाक्ष तथा सहजोक्तियों के साथ नितान्त मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया गया है । हास्य व्यंग्य प्रधान शैली में लिखित यह कहानी तिलोत्तमा नामक अपूर्व सुन्दरी के जन्म की सीधी सादी कहानी है । विश्वकर्मा के नैपुण्य की प्रतिरूप मूर्ति सुन्दउपसुन्द के नाशहेतु सुभगा की सृष्टि में पर्यवसित होती है । उसका नारद के द्वारा नामकरण किया जाता है तथा यह तिलोत्तमा दोनों राक्षसों की मृत्यु का कारण बनती है । कहानी में यदि एक ओर अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग किया गया है तो दूसरी ओर ये वाक्य उसकी सहजता को अभिव्यक्त करते हैं -- 'तिलोत्तमा ने टका सा जबाब दे दिया 'दर्पण कितने सालों से नहीं देखा है ? यह मुंह और मसूर की दाल ।'

श्री जगदीश नारायण माथुर 'सिफारिशी चिट्ठी'[२](१६५७) यह कहानी पत्र शैली में लिखित है जिसमें योग्यता को ताक पर रखकर आदर्शवादी बनने की डींग हांकने वाला व्यक्ति यथार्थ के धरातल पर नौकरी में नियुक्ति के प्रश्न पर सिफारिशी उम्मीदवार का ही चयन करता है । उसकी निर्णय क्षमता पर क्षुब्ध होकर अत्यन्त योग्य एवं प्रतिभावान उम्मीदवार आत्महत्या कर लेता है । उसकी आत्महत्या पर विक्षुब्ध होकर ही यह पत्र लिखा गया

----

१. श्री निरंकुश 'तिलोत्तमा' १६५६ ई० सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक ।
२. श्री जगदीश नारायण माथुर, 'सिफारिशी चिट्ठी' १६५७ ई० सरस्वती पत्रिका ।

है जिसमें कि हृदय की व्यथा का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

श्रीमती निर्मला मित्र, `जूतामारी की हाट`[१] (१९५७) अपनी भावात्मक अन्तर्ग्रन्थियों की प्रभुविष्णुता से आप्लावित यह कहानी मानवता को कलंकित करने वाले स्त्रियों के शरीर के व्यापारियों का भंडाफोड़ करती है । कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता इला के उस कथन में अन्तर्ग्रथित है जहां जागीरदार के ऐलान का जिक्र होता है कि `व्यापारी के सिर पर पांच जूता मारकर जिसको छोकरी पसन्द हो वह इन छोकरियों की टोली में से ले जाय ।` यह कहानी प्रसादगुण सम्पन्न है जिसमें कि अभिजात्य वर्ग की महिलाओं के हृदय में भावों तथा विचारों का प्रचंड तूफान मचाने की शक्ति है तथा प्रत्येक भावुक हृदय को विगलित कर रुला देने की असीम ताकत है । कहानी का पर्यवसान त्रासद है जहां कि मर्माहत एवं हताश हृदया बहन यह कह उठती है— `जूतामारी की हाट` ने हमें मिलाया भी, पर रुलाया भी खूब ।`

श्री भगवतस्वरूप चतुर्वेदी, `कंचन की खोज`[२] (१९५८) यह कहानी अपराध कथा या आजकल की पारिभाषित सत्य कथा की परम्परा में आती है । इस कहानी में यों तो रामनाथ, ननकू, भगवती, बिचई, किशोर तथा शम्भू के द्वारा डकैती का दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है फिर भी उनके द्वारा लूटे गये सोने के अन्वेषण ही कहानी का लक्ष्य व शीर्षकोपयुक्तता का कारण है । भाषा प्रवाहमय, प्रसादगुण सम्पन्न है । लेखक ने अवसर पाने पर वातावरण की संसृष्टि करने वाले वर्णनों को नजरन्दाज नहीं किया है ।

---

१. श्रीमती निर्मला मित्र, `जूतामारी की हाट`, १९५७ ई० सरस्वती पत्रिका ।

२. श्री भगवतस्वरूप चतुर्वेदी, `कंचन की खोज`, १९५८ ई० सरस्वती पत्रिका ।

कहानी देशकाल की दृष्टि से इलाहाबाद, बनारस एवं विन्ध्याचल के ही क्षेत्र को स्थान देती है तथा समय का वस्तुचित्रण करते हुए यह कहानी कहानीकला के तत्वों पर सार्थक है ।

हिन्दी कहानी साहित्य की अभिवृद्धि में महिला लेखिकाओं ने भी कम योगदान नहीं किया । उमा नेहरू, शिवानी देवी, तेजरानी पाठक, उषा देवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमला देवी चौधरानी, महादेवी वर्मा, तारा पाण्डेय, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि ने बहुत सी कहानियां लिखी हैं । इनकी कहानियों में प्राय: पारिवारिक जीवन और हिन्दू समाज में नारी की दारुण स्थिति के चित्र हैं फिर भी वे जीवन के उस गरिमामय द्वन्द्व को उस व्यापक दृष्टि से नहीं आंक सकी है, जैसा कि विश्व की महान् लेखिकाओं ने किया है । इनकी कहानियां `सरस्वती पत्रिका` में भी प्रकाशित नहीं हुई ।

सन १९५० से हिन्दी कविता की भांति हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भी अति यथार्थवादी प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन एवं विकास हो रहा है । `नयी कविता` की भांति `नयी कहानी` का नारा बुलन्द करते हुए नवोदित कथाकार नग्न यथार्थ का चित्रण स्वच्छन्द रूप से अपनी कहानियों में कर रहे हैं । आधुनिकता, समसामयिकता, न्यूनता आदि आकर्षक शब्दों की ओट में अपनी भोगवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति को अवगुंठित करने के प्रयास में संलग्न हैं । वस्तुत: नये कहानीकारों में सुदृढ़ आस्था, स्वस्थ जीवन-दर्शन एवं व्यापक जीवन-दृष्टि का नितान्त अभाव है, वे वासना की संकीर्ण घाटियों और विलासिता की खंदक में फंसकर प्रगति की राह से विमुख होते हुए दिखाई पड़ते हैं । यह स्थिति न केवल साहित्यकारों व साहित्य-जगत के लिए अपितु समाज के लिए घातक है ।

नये कहानीकारों को भी विषयगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से अनेक वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, अमरकान्त, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, रमेशबक्षी, शैलेश मटियानी, नरेश मेहता, मन्नू भण्डारी, प्रभृति कहानीकार आते हैं, जिन्होंने मुख्यत: शहरी मध्यवर्गीय जीवन की आन्तरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इनका दृष्टिकोण अति यथार्थवादी तथा लक्ष्य यौन विकृतियों, कुंठाओं अभावों आदि के चित्रण कर रहा है। शिल्प और शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतनता पर बल दिया है।

दूसरे वर्ग में फणीश्वरनाथ `रेणु`, राजेन्द्र अवस्थी, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी आदि को स्थान दिया जा सकता है। इन्होंने आंचलिक पृष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है।

तीसरे वर्ग में हास्यव्यंग्यमयी कहानियों के लेखकों को स्थान दिया जा सकता है जिसमें केशवचन्द्र वर्मा, श्री लाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरदजोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शान्ति महरोत्रा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

चतुर्थ वर्ग ऐसे लेखकों का है, जिन्होंने व्यापक प्रगतिशील दृष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। इस वर्ग में कृष्णचन्द्र, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त प्रभृति को स्थान दिया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त अनेक कहानीकार ऐसे भी हैं जिन्हें किसी एक विशिष्ट वर्ग में स्थान नहीं दिया जा सकता, यथा- विष्णुप्रभाकर, सत्यपाल आनन्द, कृष्ण बलदेव वैद्य आदि।

इधर नये कहानीकारों की अति सूक्ष्मता, अति वैयक्तिकता, संकीर्णता एवं निष्प्राणता की प्रवृत्तियों के विरुद्ध संगठित मोर्चा स्थापित

करने एवं जीवन के व्यापक एवं स्वस्थ रूप को कहानी में प्रतिष्ठित करने के लक्ष्य से अनेक कहानीकारों ने `संचेतन कहानी` नाम से नये वर्ग की स्थापना की । इस वर्ग में डा० महीपसिंह, मनहर चौहान कुलभूषण, रमेश गौड़, हिमांशुजोशी, सुदर्शन चोपड़ा, सुरेन्द्र मल्होत्रा, जगदीश चतुर्वेदी वेदराही, धर्मेन्द्रगुप्त, देवेन गुप्त (स्वर्गीय), योगेन्द्रकुमार लल्ला, राजीव सक्सेना, देवेन्द्रसत्यार्थी जैसे अनेक प्रतिभाशाली लेखक सम्मिलित हैं । यदि इन लेखकों ने केवल मात्र वर्गविशेष के विरोध को ही अपना लक्ष्य न बनाकर युग की व्यापक समस्याओं एवं जीवन की गम्भीर अनुभूतियों के आधार पर जीवन के स्वस्थ, व्यापक एवं उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया तो वे अवश्य ही कहानी साहित्य को सही दिशा देने में सफल हो सकेंगे, अन्यथा `संचेतन कहानी` भी `नयी कहानी` की भांति एक फैशन मात्र बनकर रह जायगी ।

हिन्दी कहानी-क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाली अन्य नयी प्रतिभाओं में कृष्णा सोबती, रजनीपनिकर, पुष्पा जायसवाल, उषा प्रियम्बदा, विजय चौहान, सलमा सिद्दीकी, सोमावीरा, मेहरुन्निशा परवेज, शान्ति मेहरोत्रा, इन्द्रबाली प्रभृति लेखिकाओं तथा डा० वीरेन्द्र महेन्दीरत्ता (संग्रह -- `शिमले की क्रीम `, पुरानी मिट्टी नये सांचे) प्रयाग शुक्ल, रघुवीर सहाय, दूधनाथ सिंह, सुरेन्द्रपाल गिरिराज, धर्मेन्द्र गुप्त, रवीन्द्र कालिया, मृत्युंजय उपाध्याय, अवधनारायण सिंह, बलवन्त सिंह, गंगाप्रसाद विमल, परेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रतिभाओं का अभाव नहीं है, किन्तु जीवन में किसी व्यापक लक्ष्य एवं उदात्त मूल्यों के अभाव में उपन्यास की भांति कहानी का क्षेत्र भी संकीर्ण एवं सीमित होता जा रहा है । उसमें मुख्यत: मध्यवर्गीय शहरी जीवन के कलुषित, अस्वस्थ एवं कुण्ठाग्रस्त रूप का ही उद्घाटन

अधिक हो रहा है, अन्य वर्ग और अन्य पक्ष उपेक्षित हो रहे हैं। आंचलिकता के फैशन ने अनेक कहानीकारों का ध्यान ग्रामीण जीवन की ओर आकर्षित किया है, किन्तु जैसा कि उपेन्द्रनाथ अश्क ने स्पष्ट किया है, ग्रामीण जीवन के वास्तविक अनुभवों के अभाव में लेखकों को उसके चित्रण में बहुत कम सफलता मिली है। अश्क जी के शब्दों में 'देहात की कटु यथार्थता से इन कथाकारों का कोई प्रयोजन नहीं था। देहात में कैसे अत्याचार-अनाचार हो रहे हैं, इससे भी इन्हें कोई गरज नहीं थी। देहात की उस धरती में उन्होंने शहर के पेचीदा मन वाले लोग बसा दिए।' वस्तुत: विषय-वस्तु की दृष्टि से तथाकथित 'नयी कहानी' एक ऐसे वर्ग के कहानीकारों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है, जिनका जीवन घर के बन्द दरवाजों, कालेज की दीवारों, शहर की गलियों और नगर के मदिरालयों में बीता है, जिनकी जीवन-यात्रा काफी हाउसों से लेकर पत्र-सम्पादकों के कार्यालयों तक सीमित है, जिनकी सबसे बड़ी समस्या दमित वासना, सैक्स की भूख, सुन्दर प्रेयसियों की चाह और भोगी हुई पत्नियों का तलाक है, जिनका आदर्श फ्रायड, सार्त्र और कामू है, जो रहते हैं भारत में किन्तु स्वप्न लन्दन की रात या पेरिस के मध्याह्न का लेते हैं। ऐसी स्थिति में उनसे किसी गम्भीर अनुभूति, व्यापक अनुभव एवं बड़े सत्य की आशा करना व्यर्थ है।

विषय-क्षेत्र की भांति शैली की दृष्टि से भी नयी कहानी में अनेक ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियां उभर रही हैं। साहित्य की अन्य विधाओं से कहानी के सबसे बड़े वैशिष्ट्य कथातत्व का ह्रास होता जा रहा है। जिस प्रकार रस-विहीन कविताएं और सिद्धान्तशून्य आलोचनाएं लिखी जा रही हैं, उसी प्रकार कथाशून्य कहानियां लिखने के भी प्रयोग किए जा रहे हैं। वे कहानी कम एवं रेखा-चित्र, डायरी, पत्र या निबन्ध अधिक दिखाई देती हैं। रचना-शैली में कलात्मक चातुर्य, साज-सज्जा एवं परिष्कार को त्याज्य घोषित करते हुए स्वच्छन्द एवं निर्बाध अभिव्यक्ति को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

`देवता, मनुष्य और राक्षस` कहानी श्री श्रीनाथ सिंह की है।[1] यह एक पौराणिक कहानी है। `सफ्फा मसजिद`, मराठी कहानी का अनुवाद श्री रा० र० सर्वटे ने किया।[2] `घर और बाहर` श्री स्वरूप ढौंडियाल की कहानी,[3] श्री पी० एस० नीन्द्रा की `साड़ी सैंडिल और पर्स`,[4] श्री ब्रह्मदेव की `नासमझ की समझ`,[5] डा० हरिदत्त भट्ट `शैलेश` की `खेल`,[6] श्री श्रीरामशर्मा `राम` की `परम्परा`[7] कहानी (युद्ध की भावना पर आधारित), श्री यमुनादत्त वैष्णव `अशोक` की `वैज्ञानिक का निर्माण और नाइट्रोजन के यौगिक`,[8] श्री महेशचन्द्र जोशी की `एक रहस्य`,[9] सतीशचन्द्र चतुर्वेदी की `सुजान की जीत`,[10] अनुवादक प्रो० आशानन्द वोहरा की `कुल्फी`,[11] डा० हरिदत्तभट्ट `शैलेश` की `उपलब्धि`,[12] श्रीमती कविताश्री `घाटियां गूंजती हैं`[13]

----

१ सरस्वती, १६६४, पृ० सं० ८२

२ ,, ,, पृ० सं० १७१

३ ,, ,, पृ० सं० २६८

४ ,, ,, पृ० सं० २७१

५ ,, ,, पृ० सं० ४७१

६ ,, १६६३ पृ० सं० २६६

७ ,, १६६२ पृ० सं० २७६

८ ,, ,, पृ० सं० ३६४

९ ,, १६६६ पृ० सं० १५६

१० ,, ,, पृ० सं० ३२५

११ ,, ,, पृ० सं० ४२२

१२ ,, १६७० पृ० सं० ७२

१३ ,, ,, पृ० सं० १५३

अनुवादक डा० रामगोपाल सोनी की `ढहती दीवारें`[१], श्री महेशचन्द्र जोशी की `एक मुसाफिर दो राहें`[२]।

श्री सौमेन्द्रनाथ घोष `श्रीनाथ` की `प्रतिमा`[३] शीर्षक कहानी के अन्तर्गत लेखक ने बताया है कि जीवन का अर्थ ही संग्राम है। इसकी शब्दावली भी बड़ी ही सरल है। श्री यमुनादत्त वैष्णव `अशोक` की `शुक्र की सन्ध्या`[४] शीर्षक कहानी में शुक्र ग्रह के अस्त होने पर विवाह न होने के प्रचलन को लेकर कथा को बढ़ाया है। आजकल द्विजों के विवाह शुक्रास्त होने पर नहीं होते किन्तु गांगोली के इलाके में अन्धा-अंधी नामक विवाह लग्नों का अब भी प्रचलन है। श्री आर० आर० सर्वटे द्वारा मराठी कहानी का अनुवादित रूप `शरीर`[५] कहानी में लेखक ने शरीर के महत्व को बताया है। श्री तारादत्त `निर्विरोध` की `खाली सड़क का आदमी`[६] शीर्षक कहानी में लेखक ने बताया है कि सड़क कभी भी खाली नहीं होती कोई न कोई अवश्य रहता है। किन्तु एक बार जब अपराध खाली सड़क पर होता है तब भी कोई न कोई किसी प्रकार से गवाह बन उस स्थिति में प्रस्तुत हो जाता है। श्री फूलचन्द `मानव` द्वारा अनुवादित `अपना-अपना डर`[७] शीर्षक कहानी में मनुष्य को भय लगने के कारणों को चित्रित किया है। लेखक ने बताया है कि मनुष्य को निरन्तर चिन्तन

----

१. सरस्वती १९७०, पृ० सं० ७९
२ ,, ,, पृ० सं० ४२०
३ ,, १९७२ पृ० सं० ८६
४ ,, ,, पृ० सं० ४१४
५ ,, ,, पृ० सं० ४२०
६ ,, ,, पृ० सं० ३१२
७ ,, १९७३ पृ० सं० ७९

करने की आदत होती है जिससे किसी बात से तो चिन्तित होता है और किसी से भयभीत, इसी प्रकार प्रत्येक मानव के अपने-अपने डरने का कारण अलग-अलग होता है। श्री निशीथ कुमार राय की 'प्रथमप्रेम'[1] शीर्षक ऐतिहासिक कहानी में औरंगजेब और नर्तकी हीराबाई के प्रेम का चित्रण है।

श्री रा० र० सर्वटे द्वारा अनुवादित 'पवित्रता की बलि'[2] शीर्षक कहानी में मराठा राज्य के युवराज शंभुराजा के कारण ब्राह्मणी युवती गोदावरी को अपनी पवित्रता को सिद्ध करने के लिए अपने प्राणों की बलि जलती आग में देनी पड़ती है। श्रीमती शारदा मिश्र की 'मेरा क्या अपराध था'[3], शीर्षक कहानी बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की गई है। इस कहानी की भाषा शैली भी बोल-चाल की है। तेलुगु कहानी का हिन्दी में अनुवाद विजय राघव रेड्डी ने किया जिसका शीर्षक 'अलका सुन्दरी'[4] है। इस कहानी में चोल वंश के सेनापति मल्लिनाथ और अलका सुन्दरी के प्रेम का वर्णन है। श्री श्रीतांशु भारद्वाज की 'जिजीविषा'[5] कहानी में एक वैद्य है जो सारे दिन को ज्योतिष, जड़ी-बूटियां कूटने, पुड़िया बांधने में व्यतीत करते थे। ज्योतिष पर इतना अधिक अन्धविश्वास था कि वह प्रत्येक दिन नक्षत्र और कुंडली ही देखते थे और अन्त में वह अपने इस चक्र में खुद ही फंस जाते हैं तथा हार कर वह यह सब अपनी उम्र को देखते हुए

---

१. सरस्वती १९७३, पृ० सं० २२०
२. ,, ,, पृ० सं० २२४
३. ,, ,, पृ० सं० ४६२
४. ,, ,, पृ० सं० ७३
५. ,, ,, पृ० सं० २३०

छोड़ देते हैं । श्री शीतांशु भारद्वाज की `सीता का सुहाग`[1] शीर्षक कहानी अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है । श्री यमुनादत्त वैष्णव `अशोक` की `कीड़ा`[2] शीर्षक कहानी में एक वैज्ञानिक की कथा है जो अनुसंधान करने के लिए भारत से अमेरिका जाता है ।

श्री शीतांशु भारद्वाज की `एक और कामायनी`[3] कहानी में लेखक ने बताया है कि कहानी की नायिका मीनू को नाटक करने का बेहद शौक है और एक दिन वह रंगमंच पर कामायनी की कथा पर नृत्य नाटिका भी करती है और उसी बीच उसके यथार्थ जीवन में भी वैसा घटित होता है जैसा कि कामायनी की इड़ा के साथ और कहानी का अन्त भी लेखक ने उसी प्रकार किया है । श्रीराम शर्मा `राम` की `चांद निकल आया`[4] शीर्षक कहानी में एक मुसलमान दम्पत्ति की पहली ईद की कथा है । श्री निशीथकुमार राय जी की `दौलत की दीवार`[5] कहानी एक धारावाहिक लम्बी कहानी है जिसमें तीन भाइयों के बीच एक लड़का था । लड़के के पिता बैरिस्टर थे तथा पिता के मंझले भाई व्यापारी तथा मिल के मालिक थे और सबसे छोटे मशहूर डाक्टर थे । श्री रा० र० सर्वटे द्वारा एक मराठी कहानी का हिन्दी अनुवाद `घोंसले के बाहर`[6] शीर्षक कहानी है । श्री अशोक राठौर की

----

१. सरस्वती १६७४ पृ० सं० ७०
२. ,, ,, पृ० सं० १४३
३. ,, ,, पृ० सं० २२२
४. ,, ,, पृ० सं० ३०७
५. ,, ,, पृ० सं० ७०
६. ,, ,, पृ० सं० २३६

छोड़ देते हैं। श्री शान्तांशु भारद्वाज की 'माता का सुहाग'[1] शीर्षक कहानी अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है। श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' की 'कीड़ा'[2] शीर्षक कहानी में एक वैज्ञानिक की कथा है जो अनुसंधान करने के लिए भारत से अमेरिका जाता है।

श्री शान्तांशु भारद्वाज का 'एक और कामायनी'[3] कहानी में लेखक ने बताया है कि कहानी की नायिका मानू को नाटक करने का बेहद शौक है और एक दिन वह रंगमंच पर कामायनी की कथा पर नृत्य नाटिका भी करती है और उसी बीच उसके यथार्थ जीवन में भी वैसा घटित होता है जैसा कि कामायनी का इड़ा के साथ और कहानी का अन्त भी लेखक ने उसी प्रकार किया है। श्रीराम शर्मा 'राम' की 'चाँद निकल आया'[4] शीर्षक कहानी में एक मुसलमान दम्पत्ति की पहली ईद की कथा है। श्री निशीथकुमार राय जी की 'दौलत की दीवार'[5] कहानी एक धारावाहिक लम्बी कहानी है जिसमें तीन भाइयों के बीच एक लड़का था। लड़के के पिता बैरिस्टर थे तथा पिता के मंझले भाई व्यापारी तथा मिल के मालिक थे और सबसे छोटे मशहूर डाक्टर थे। श्री रा० र०[6] सर्वटे द्वारा एक मराठी कहानी का हिन्दी अनुवाद 'घोंसले के बाहर' शीर्षक कहानी है। श्री अशोक राठौर की

---

१. सरस्वती १९७४ पृ० सं० ७०
२. ,, ,, पृ० सं० १४३
३. ,, ,, पृ० सं० २२२
४. ,, ,, पृ० सं० ३०७
५. ,, ,, पृ० सं० ७०
६. ,, ,, पृ० सं० २३९

'वानप्रस्थ'[१] कहानी में लेखक ने वृद्धावस्था का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। आजकल इन्सान बूढ़ा हो जाता है तो मानो अपने ही घर पर वह अवांछित हो जाता है। उसके बाल-बच्चे अपनी-अपनी घर-गृहस्थी संभालने में लग जाते हैं और बूढ़े मां-बाप को बोझ समझने लगते हैं। ऐसी अवस्था में प्राचीन काल जैसा यदि वृद्धावस्था में लोग गृहस्थी त्यागकर वन को चले जायें तो अपने को अवहेलित, अवांछित, अनावश्यक अनुभव करने के क्लेश से बच जायें। प्राच्य एवं पाश्चात्य समाज में बूढ़े मां-बाप की दयनीय दशा का बड़ा करुण चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है। श्री वनफूल बंगला साहित्य के श्रेष्ठ कहानीकारों में हैं। अनुवाद में भी मूल भाव ज्यों का त्यों अपनी 'स्रष्टा'[२] कहानी में रखा है। इस कहानी का अनुवाद डा० अमेन्द्रराय ने किया है। श्री शिवसरन सिंह यादव की 'कलुष'[३] कहानी एक विदेशिनी के कृष्णप्रेम पर आधारित है। शरीर का कलुष बाह्य होता है। वह मिट जाता है पर मन का कलुष आत्मा को कलंकित करता है। श्री निशीथकुमार राय जी की 'मास्टर साहब'[४] कहानी में प्रेम पंडित देहाती हाईस्कूल के हेडमास्टर ही नहीं बल्कि प्रतिष्ठाता भी थे। अपनी जमीन ही नहीं अपितु अक्लान्त मेहनत से उन्होंने स्कूल की नींव डाली थी। स्कूल प्रबन्धक समिति के सेक्रेटरी रखोगी जी उतने ही बेईमान थे। वे विधायक भी थे। उनसे प्रेम पंडित से सद्भाव नहीं होते थे, इसी समस्या को इसमें आगे बढ़ाया है। श्री उषा थपलियाल,

----

१. सरस्वती १६७६, पृ० सं० ६१

२. ,, ,, पृ० सं० १८०

३. ,, ,, पृ० सं० २२०

४ ,, १६७६ पृ० सं० ३२

'अनाथिनी'[1] शीर्षक कहानी एक ऐसी लड़की की कथा है जो अनजाने में किसी से प्यार कर बैठती है किन्तु जब उसकी सौतेली माँ को इस विषय में पता चलता है तो वह उसका विवाह एक दूसरे लड़के से कर देती है। उसके बाद उसके दो बच्चे भी होते हैं और किन्हीं कारणों से मतभेद होने से उसका पति उसे छोड़ कर चला जाता है तथा सास-ससुर भी बच्चों सहित उसे घर से निकाल देते हैं। तृप्ता नौकरी के लिए भटकती है और नौकरी न मिलने तक बर्तन माँजकर गुजारा करती है और निरन्तर वह अभागिन नौकरी के प्रयास में लगी रहती है। लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से भावों की अभिव्यक्ति की है। कुमारी रीता अवस्थी की 'कितनी बड़ी इच्छा'[2] कहानी में एक मात्र खिचड़ी खाने की इच्छा को लेकर कथा को बढ़ाया है। कक्कू नामक लड़के ने एक मैना भी पाल रखी थी और अन्त में जब घसीटू कक्कू के साथ खिचड़ी खाने बैठता है तभी कक्कू कहता है कि जरा मैना से भविष्यफल दिखवाओ। कक्कू की बात सुनते ही घसीटू मैना का पिंजड़ा खोल देता है और मैना कहती है 'धन की प्राप्ति होगी, इच्छित वस्तु मिलेगी' इन्हीं शब्दों के साथ कहानी का अन्त भी होता है।

---

१. सरस्वती १९७६, पृ० सं० ८९

२ ,, ,, पृ० सं० ३००

'अनाथिनी'[१] शीर्षक कहानी एक ऐसी लड़की की कथा है जो अनजाने में किसी से प्यार कर बैठती है किन्तु जब उसकी सौतेली मां को इस विषय में पता चलता है तो वह उसका विवाह एक दूसरे लड़के से कर देती है। उसके बाद उसके दो बच्चे भी होते हैं और किन्हीं कारणों से मतभेद होने से उसका पति उसे छोड़ कर चला जाता है तथा सास-ससुर भी बच्चों सहित उसे घर से निकाल देते हैं। तृप्ता नौकरी के लिए भटकती है और नौकरी न मिलने तक बर्तन मांजकर गुजारा करती है और निरन्तर वह अभागिन नौकरी के प्रयास में लगी रहती है। लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से भावों की अभिव्यक्ति की है। कुमारी रीता अवस्थी की 'कितनी बड़ी इच्छा'[२] कहानी में एक मात्र खिचड़ी खाने की इच्छा को लेकर कथा को बढ़ाया है। कक्कू नामक लड़के ने एक मैना भी पाल रखी थी और अन्त में जब घसीटू कक्कू के साथ खिचड़ी खाने बैठता है तभी कक्कू कहता है कि जरा मैना से भविष्यफल दिखवाओ। कक्कू की बात सुनते ही घसीटू मैना का पिंजड़ा खोल देता है और मैना कहती है 'धन की प्राप्ति होगी, इच्छित वस्तु मिलेगी' इन्हीं शब्दों के साथ कहानी का अन्त भी होता है।

---

१. सरस्वती १९७९, पृ० सं० ८९

२ ,, ,, पृ० सं० ३००

अध्याय ५

निबन्ध और समालोचना

हिन्दी निबन्ध-साहित्य आधुनिक युग की देन है। भारतेन्दु युग में निबन्धों का अत्यधिक विस्तार हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र स्वयं उच्चकोटि के निबन्धकार थे इन्होंने विविध विषयों पर लेखनी चलायी। इनके लेखों में भारतीय समाज, राजनीति, धर्म, भाषा आदि पर अधिकारपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। इनके निबन्ध उन्हीं के द्वारा सम्पादित 'कविसुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में निकलते थे। इनके अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन, राधाकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी आदि महत्वपूर्ण निबन्ध लेखक हुए।

भट्ट जी के निबन्ध 'निबन्धावली भाग १ और भाग २' में संगृहीत हैं। प्रेमघन 'आनन्दकादम्बनी' के सम्पादक थे। इसी में इनके निबन्ध समय-समय पर निकलते थे। प्रतापनारायण मिश्र भी इस युग के उच्चकोटि के निबन्धकार थे। इनके सैकड़ों निबन्ध अत्यन्त मनोरंजक शैली में ~~साधारण~~ लिखे हुए मिलते हैं। इस युग के निबन्धकारों में से अधिकांश द्विवेदी युग में भी लिखते रहे।

द्विवेदीयुगीन निबन्ध -

भारतेन्दु-युग में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी निबन्ध-विधा को पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी, परन्तु द्विवेदी-युग में आत्मव्यंजना-प्रधान अनौपचारिक निबन्धों की परम्परा का विकास अवरुद्ध ही दृष्टिगत होता है। इस युग के अधिकांश निबन्धों में विचार-संकलन का प्रयास मात्र दिखाई देता है। इस युग के निबन्ध-लेखकों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, मिश्रबन्धु, सरदारपूर्ण सिंह, बाबू

श्यामसुन्दरदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

`सरस्वती` के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८ ई०) ने धर्म, साहित्य, समाज, विज्ञान, राजनीति आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं । `संकलन`, `रसज्ञ-रंजन`, `लेखांजलि`, `संचयन`, `विचार-विमर्श`, `साहित्य-सीकर`, `साहित्य-सन्दर्भ` आदि इनके निबन्ध-संकलन हैं । द्विवेदी जी के अधिकांश निबन्धों में भारतेन्दुयुगीन निबन्धकारों की-सी वैयक्तिकता, रोचकता एवं सजीवता का अभाव है अत: वे `बातों का संग्रह` अथवा `सूचनात्मक गद्य` मात्र बन कर रह गए हैं । इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शैली पाण्डित्यपूर्ण है । वस्तुत: द्विवेदी जी युगप्रवर्तक एवं युगनिर्माता आचार्य पहले हैं, साहित्यकार बाद में ।

माधवप्रसाद मिश्र (१८७१-१९०७ ई०) द्विवेदी युग के गम्भीर एवं प्रभावशाली निबन्धकार हैं । इन्होंने `वैश्योपकारक` और सुदर्शन का सम्पादन किया । इनके निबन्धों का क्षेत्र व्यापक है । इन्होंने पर्व, पुरातत्व, साहित्य, राजनीति, भूगोल, जीवनी, यात्रा, संस्कृति आदि विषयों पर निबन्ध लिखे जो `माधवप्रसाद मिश्र निबन्ध-माला` में संकलित हैं । इनके निबन्ध भावात्मक एवं आत्मव्यंजक हैं । इनकी भाषा तत्समनिष्ठ ओजमयी, और आवेशयुक्त है ।

बालमुकुन्दगुप्त (१८६५-१९०७ ई०) के निबन्धों में भारतेन्दुयुग से चली आती व्यंग्यपूर्ण शैली का निखरा हुआ रूप मिलता है । गुप्त जी ने सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं जो `गुप्त निबन्धावली` संग्रह में प्रकाशित हैं । गुप्त जी एक अच्छे व्यंग्यकार थे । इनके निबन्ध व्यंग्य की हल्की चोट करने की दृष्टि से विशिष्ट हैं । इनका व्यंग्य चुटीला किन्तु शालीन है । गुप्त जी

`भारतमित्र ` के सम्पादक थे तथा इसमें प्रकाशित निबन्धों द्वारा वे अंग्रेजी सरकार की शासन-व्यवस्था और तत्कालीन शासक लार्डकर्जन पर व्यंग्यवर्षा करते थे । `शिवशम्भु का चिट्ठा ` इनकी महत्वपूर्ण देन है । गुप्त जी उर्दू से हिन्दी में आए थे । इनकी भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित, स्वाभाविक, संजीव, विनोदपूर्ण एवं प्रवाहमयी है ।

गोविन्दनारायण मिश्र (१८५६-१९२६ ई०) ने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं, जो `गोविन्द-निबन्धावली` नाम से प्रकाशित हुए हैं । मिश्र जी हिन्दी में बाणभट्ट की कादम्बरी-शैली के लिए प्रसिद्ध हैं । इनकी भाषा शब्दाडम्बर, सामाजिक शब्दावली, दीर्घवाक्य-विन्यास तथा तत्समबहुला शब्दावली के कारण अस्वाभाविक प्रतीत होती है ।

सरदारपूर्णसिंह (१८८१-१९३९ ई०) ने भावात्मक निबन्धों की रचना की है । इनके निबन्धों में इनका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है । `आचरण की सभ्यता`, `ब्रह्मकान्ति `, `सच्ची वीरता`, `मजदूरी और प्रेम` आदि केवल आठ निबन्ध ही इन्होंने लिखे हैं, जो इन्हें हिन्दी-निबन्धकारों में उच्च स्थान का अधिकारी बनाने के लिए पर्याप्त हैं । इनके निबन्धों में स्वतन्त्रचिन्तन,लाक्षणिक प्रयोग, वेगवती भावधारा तथा भाषाप्रवाह देखते ही बनता है ।

मिश्रबन्धु (श्यामबिहारी मिश्र तथा शुकदेव बिहारी मिश्र) आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं । `हिन्दी नवरत्न` इनकी ख्याति का आधार-स्तम्भ है । इसके अतिरिक्त `पुष्पांजलि `, `सुमनांजलि`, आत्मशिक्षा` आदि इनके सामयिक विषयों पर निबन्ध संकलित हैं ।

चन्द्रधरशर्मा गुलेरी (१८८३-१९२० ई०) ने कहानियों

की भांति निबन्ध भी बहुत ही कम लिखे हैं, किन्तु जो कुछ लिखा है अनूठा लिखा है। इनके निबन्धों में गम्भीर चिन्तन, सूक्ष्म विश्लेषण, हास्य-व्यंग्य, अर्थगर्भितवक्रता, लाक्षणिकता आदि प्रमुख विशेषताएं हैं। इनका हास्य पाण्डित्य मिश्रित हास्य है तथा इतिहास-पुराण के प्रसंगों में विशेष उभरा है। `कछुआधर्म `, `पुरानीपगड़ी`, `संगीत `,आदि इनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं।

बाबू श्यामसुन्दरदास (१८७५-१९४५ ई०) मूलत: आलोचक हैं। इनके निबन्ध साहित्य और भाषा से सम्बन्धित हैं। `भारतीय साहित्य की विशेषताएं `, `समाज और साहित्य`,`कर्त्तव्य और सत्यता`, आदि इनके विचारात्मक निबन्ध हैं। इनकी भाषा तत्समप्रधान होते हुए भी क्लिष्ट नहीं है।

कृष्णबिहारी मिश्र (१८९०-१९६३ ई०) के अधिकांश निबन्ध समीक्षात्मक विषयों पर ही मिलते हैं।

पद्मसिंह शर्मा (१८७६-१९३२ ई०) तुलनात्मक आलोचना के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके निबन्धों में भी इस शैली का प्रयोग मिलता है। `पद्मपराग` तथा `प्रबन्धमंजरी` में इनके निबन्ध संकलित हैं।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (१८७५-१९३९) हास्य-विनोद-पूर्ण शैली के लिए विख्यात हैं। इनके निबन्ध `गद्यमाला` तथा निबन्ध-निचय ` में संकलित हैं।

द्विवेदी-युग के अन्य निबन्धकारों में गणेशशंकर विद्यार्थी, यशोदानन्दन अखौरी, किशोरीदास बाजपेयी, सत्यदेव परिव्राजक, डा० भगवानदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, जगदीश झा `विमल `, गौरी-शंकर हीराचन्द ओझा, बद्रीनाथ भट्ट, सन्तराम, ब्रजरत्नदास,बनारसीदास

चतुर्वेदी, मन्नन द्विवेदी, केशवप्रसाद सिंह आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी युग के अधिकांश निबन्धकारों ने साहित्य, भाषा, विज्ञान, इतिहास पुरातत्व, राजनीति, भूगोल, अध्यात्म, यात्रा तथा जीवन-चरित आदि विषयों पर विचारप्रधान निबन्धों की रचना की है। इस प्रकार द्विवेदीयुग में निबन्ध का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत हुआ है। अनूदित निबन्धों से भी हिन्दी निबन्ध-साहित्य का भंडार बढ़ा है।

शुक्लयुगीन निबन्ध -

द्विवेदी-युग के उपरान्त काव्यक्षेत्र में छायावादी युग का आविर्भाव होता है। गद्य और विशेष रूप से निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्र में इसे 'शुक्ल-युग' की संज्ञा दी जा सकती है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार आचार्य पं० रामचन्द्रशुक्ल (१८८४-१९४१ ई०) हैं। शुक्ल जी ने हिन्दी निबन्ध को नई दिशा प्रदान की है। अपनी 'चिन्तामणि' (भाग दो) द्वारा शुक्ल जी नये विचार, नई अनुभूति तथा नयी शैली लेकर प्रस्तुत हुए। इस रचना में उच्चकोटि में साहित्यिक, समीक्षात्मक एवं मनोविज्ञान-विषयक निबन्ध मिलते हैं। 'कविता क्या है ?', 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' आदि इनके साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबन्ध हैं। इनमें शुक्ल जी ने शास्त्रीय विषयों पर मौलिक, गम्भीर एवं प्रौढ़ विचार प्रकट किए हैं। 'लोभ और प्रीति', 'करुणा', 'भय', 'क्रोध', 'उत्साह' आदि शुक्ल जी के मनोभावों से सम्बन्धित निबन्ध हैं। इनमें मनोविज्ञान और नीति का सुन्दर समन्वय हुआ है। आचार्य शुक्ल ने अपने निबन्धों में मस्तिष्क तथा हृदय का सन्तुलित सामंजस्य है। शुक्ल जी हिन्दी के विचारात्मक निबन्धों के आदर्श कहे जा सकते हैं।

शुक्ल-युग के निबन्धकारों में डा० गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, रायकृष्णदास, वियोगीहरि, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, महादेवीवर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, शिवपूजन सहाय, पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र', डा० रघुवीरसिंह, राहुल सांकृत्यायन, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल आदि उल्लेखनीय हैं। शुक्ल-युग के इन निबन्धकारों के विषय में यह ध्यातव्य है कि इन्होंने केवल शुक्ल-युग तक ही सीमित होकर नहीं लिखा, इनमें बहुत से निबन्धकार छायावाद, प्रगतिवाद की सीमाओं को लांघते हुए स्वातन्त्र्योत्तरकाल तक अपने निबन्ध प्रस्तुत करने वाले हैं।

बाबू गुलाबराय (१८८८-१९६३) ने द्विवेदी युग में लिखना प्रारम्भ किया था और वे शुक्ल-युग तथा उसके परवर्ती समय तक निरन्तर लिखते रहे। इनके 'प्रबन्ध-प्रभाकर', 'मेरे निबन्ध', 'ठलुआ-क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएं', आदि कई निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके निबन्ध समीक्षात्मक, साहित्यिक, दार्शनिक, आत्मसंस्मरणात्मक एवं हास्य-व्यंग्य-प्रधान हैं। गुलाबराय जी ने अपने ललित निबन्धों में अपने जीवन के संस्मरणों को ललित ढंग से व्यक्त किया है। इनकी भाषा सरल, स्वच्छ एवं भाव-व्यंजक है। 'प्रीतिभोज', 'नर से नारायण', 'मेरे नापिताचार्य' आदि बाबूजी के उल्लेखनीय ललित निबन्ध हैं।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (१८९५ ई०) ने विचारात्मक, समीक्षात्मक, भावात्मक एवं व्यक्तिव्यंजक ललित निबन्धों की रचना की है। इनके विचारों और शैली में नवीनता है। इनके निबन्ध 'पंचपात्र', 'मकरन्दबिन्दु', 'प्रबन्धपारिजात', 'त्रिवेणी', 'यात्री', 'कुछ', 'और कुछ' आदि संग्रहों में मिलते हैं।

सियारामशरण गुप्त (१८६५-१९६३ ई०) स्वभाव से कवि एवं विचारक हैं। इनके निबन्धों में कवित्व एवं विचार-तत्व का समन्वय मिलता है। `झूठ-सच` इनका निबन्ध-संग्रह है।

जयशंकरप्रसाद (१८९०-१९३७ ई०) मूलत: कवि और नाटककार हैं। इनके `काव्य-कला और अन्य निबन्ध` संग्रह में प्रकाशित आठ निबन्धों में साहित्य-विषयक प्रौढ़ विचार मिलते हैं।

रायकृष्णदास (१८९२ ई०) के भावात्मक निबन्ध गद्य-गीतों जैसे हैं। कला, साहित्य, शोध, संस्मरण आदि विषयों पर भी इनके कतिपय निबन्ध मिलते हैं।

वियोगीहरि (१८९५ ई०) तथा माखनलाल चतुर्वेदी (१८८९-१९६८ ई०) के अधिकांश निबन्ध भी गद्यकाव्य की कोटि में आते हैं। वियोगीहरि की निबन्ध-रचनाओं में `बुद्धितरंग`, `विचारतरंग`, `साहित्यतरंग` आदि उल्लेखनीय हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी के `साहित्य देवता` तथा `अमीर इरादे : गरीब इरादे` उल्लेखनीय निबन्ध-संग्रह हैं।

महादेवी वर्मा ने संस्मरणात्मक, समीक्षात्मक एवं ललित निबन्धों की रचना की है। `क्षणदा` में इनके ललित निबन्ध संकलित हैं। `अतीत के चलचित्र`, `पथ के साथी` आदि में संस्मरणात्मक निबन्ध हैं। `शृंखला की कड़ियां` में नारी-जीवन विषयक विचारप्रधान निबन्ध हैं। `संकल्पिता` इनके सांस्कृतिक एवं विचारात्मक निबन्धों का संग्रह है। `दीपशिखा` आदि काव्य-रचनाओं की भूमिकाओं में महादेवी के समीक्षात्मक-निबन्धकार को देखा जा सकता है।

है, परन्तु आत्मव्यंजक ललित निबन्ध के दोत्र में इस युग की उपलब्धियां न्यून ही हैं। आचार्य शुक्ल विचारात्मक निबन्धकारों में शीर्षस्थ हैं। बाबू गुलाबराय, पदुमलालबख्शी, सियारामशरण गुप्त, शान्तिप्रिय द्विवेदी, बैचनशर्मा `उग्र`, डा० रघुवीरसिंह के ललित निबन्ध भी महत्त्वपूर्ण हैं।

शुक्लोत्तर हिन्दी-निबन्ध -

शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्धकारों में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, रामधारी सिंह दिनकर, वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० नगेन्द्र, डा० विनयमोहन शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, इलाचन्द्रजोशी, यशपाल, प्रकाशचन्द्रगुप्त, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, डा० सत्येन्द्र, डा० देवराज उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, भगवतशरण उपाध्याय, डा० भगीरथ मिश्र, भदन्तआनन्दकौसल्यायन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, बालकृष्ण राव, डा० इन्द्रनाथ मदान आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी (१६०६-६७) के निबन्ध समीदात्मक विषयों से सम्बन्धित हैं। उनके निबन्ध `आधुनिक साहित्य`, `हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी`, `नया साहित्य नये प्रश्न`, `जयशंकरप्रसाद` और `निराला` संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। इन निबन्धों की भाषा प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण है। कई निबन्धों में वैयक्तिकता एवं व्यंग्य-विनोद की झांकी भी मिलती है।

शुक्लोत्तर-युग के सबसे महत्त्वपूर्ण निबन्धकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (१६०७ ई०) हैं। इनके निबन्धों की आधार-भूमि सांस्कृतिक है। इनकी दृष्टि में जीवन तथा साहित्य की प्रत्येक

समस्या का एक सांस्कृतिक पहलू है। आचार्य द्विवेदी को प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का गम्भीर ज्ञान एवं आधुनिक युग की नई चेतना एवं नवीन जीवन का बोध भी है। मनुष्य के जीवन के सभी सांस्कृतिक पक्षों को उन्होंने अपने निबन्धों का विषय बनाया है। द्विवेदी जी ने विचारात्मक एवं समीक्षात्मक निबन्धों में साहित्य, धर्म, संस्कृति, कला, ज्योतिष, भाषा आदि विषयों पर विचार प्रकट करते हुए स्वस्थ चिन्तन की धारा को विकसित किया है। उनके ललित निबन्धों में निबन्धकार की आत्मव्यंजना के अनेक सफल प्रयोग हैं। उनमें पाण्डित्य और सरसता का एक अद्भुत संयोग है। हिन्दी-निबन्ध साहित्य में इस प्रकार का संयोग द्विवेदी जी के निबन्धों में ही पहली बार दिखाई देता है। द्विवेदी जी के निबन्धों में सांस्कृतिक परम्परा तथा आधुनिक जीवन-बोध का सामंजस्य भी मिलता है। वे इतिहास अथवा पुराण आदि का वृत्त उपस्थित करते हुए उसे समसामयिकता से लाकर मिला देते हैं। गम्भीरता एवं सहजता, विद्वत्ता एवं सरसता, प्राचीनता एवं नवीनता, परम्परा एवं आधुनिकता तथा विचारात्मकता एवं भावात्मकता जैसी विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी जी के निबन्धों में सहज ही केन्द्रीभूत हो गई हैं। उनके निबन्ध जीवनोन्मुखता का सन्देश देते हैं। उनमें मानवतावादी स्वर मुखरित हुआ है तथा वे मानव की अदम्य शक्ति में निबन्धकार के अडिग विश्वास को प्रकट करते हैं। द्विवेदी जी की भाषा-शैली भाव और विषय के अनुरूप बदलती रहती है। कहीं तत्सम-निष्ठ और कहीं बोलचाल के शब्दों के सौन्दर्य से युक्त परन्तु सर्वत्र सजीव एवं सरस। इनके निबन्ध-संग्रह हैं --'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'सभ्यता' और संस्कृति तथा अन्य निबन्ध','विचार और वितर्क','विचार-प्रवाह', 'कुटज' तथा 'आलोकपर्व'।

जैनेन्द्रकुमार (सन् १६०५) का आधुनिक चिन्तशील निबन्धकारों में विशिष्ट स्थान है। वे मूलत: विचारक है। उन्होंने दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, एवं साहित्यिक विषयों पर विचार प्रकट किये हैं। जैनेन्द्र की दार्शनिकता सैद्धान्तिक न होकर स्वानुभूत है। इसी से उनके एतद्विषयक निबन्ध निजीपन लिए हुए हैं और वे नीरसता से बच गये हैं। उनके निबन्धों में चिन्तना और सर्जना का सुन्दर समन्वय दिखलाई पड़ता है। इनकी शैली में निजीपन है। इनके निबन्धों में छोटे-शब्दों वाले छोटे-छोटे वाक्यों का बड़ा ही सजीव प्रयोग रहता है। 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'सोच-विचार', 'मंथन', 'ये और वे', 'पूर्वोदय' आदि जैनेन्द्र के प्रसिद्ध निबन्ध - संग्रह हैं।

रामधारीसिंह दिनकर (सन् १६०८) कवि के साथ विचारक निबन्धकार भी हैं। इनके अधिकांश निबन्ध साहित्यिक एवं समीक्षात्मक हैं, पर उनके अन्तरंग में लालित्य वर्तमान है। इनके निबन्ध-संग्रहों में 'अर्धनारीश्वर', 'मिट्टी की ओर', रेती के फूल', 'उजली आग', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पन्त और मैथिलीशरणगुप्त' तथा राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' उल्लेखनीय हैं। दिनकर के निबन्धों का आधार सांस्कृतिक कहा जा सकता है। मानवता के प्रति उनमें अगाध आस्था व्यक्त हुई है।

भारतीय संस्कृति तथा पुरातत्व-सम्बन्धी निबन्धकारों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (१६०४-१६६६) उल्लेखनीय हैं। पुराण, इतिहास, धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं पुरातत्त्व इनके निबन्धों का उपजीव्य है। डा० अग्रवाल ने सांस्कृतिक विषयों पर वैज्ञानिक पद्धति से लिखा है। 'पृथिवी-पुत्र', 'कल्पलता', 'कल्पवृक्ष', 'मातृभूमि', 'कला और

संस्कृति ' आदि इनके निबन्ध-संकलन हैं ।

डा० नगेन्द्र (सन् १८१५) ने साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों से हिन्दी-निबन्ध-साहित्य को सम्पन्न बनाया है । 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विवेचन', 'विचार और विश्लेषण', 'आलोचक की आस्था', आदि इनके प्रसिद्ध समीक्षात्मक निबन्ध-संग्रह हैं । डा० नगेन्द्र के समीक्षात्मक निबन्धों में भी उनका व्यक्तित्व सर्वत्र प्रतिबिम्बित है । 'केशव का आचार्यत्व', 'यौवन के द्वार पर', 'हिन्दी उपन्यास', ' वाणी के न्याय मन्दिर में ' आदि निबन्धों में रमणीय एवं ललित शैली का प्रयोग है । इनमें व्यक्ति-प्रधान निबन्धों की सी आत्मीयता भी मिलती है ।

डा० विजयमोहन शर्मा (१६०५ ई०) तथा डा० सत्येन्द्र (१६०७ ई०) के अधिकांश निबन्ध साहित्य एवं कला सम्बन्धी हैं । आचार्य विनयमोहन शर्मा के काव्य-सिद्धान्तों पर लिखे गये निबन्ध उनकी विद्वत्ता के परिचायक हैं । 'दृष्टिकोण ', 'साहित्यावलोकन ', 'साहित्य, शोध, समीक्षा' आदि इनके निबन्ध-संग्रह हैं । डा० सत्येन्द्र के निबन्ध 'कला, कल्पना और साहित्य', 'साहित्य की भांकी ', 'समीक्षात्मक निबन्ध' आदि संग्रहों में प्रकाशित हैं । इनके विषय-प्रतिपादन में गम्भीरता एवं वैज्ञानिकता दर्शनीय है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी (१६०२-१६६८ ई०) भदन्तआनन्द कौशल्यायन (१६०५ ई०) कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (१६०६ ई०) तथा देवेन्द्र सत्यार्थी (१६०८ ई०) ने बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा तथा श्रीराम शर्मा की परम्परा के संस्मरणात्मक निबन्ध लिखे हैं । बेनीपुरी अपने समर्थ शब्द-शिल्प के लिए प्रसिद्ध हैं । इनकी रचनाएं 'बेनीपुरी ग्रन्थावली' में संकलित हैं । भदन्त आनन्द कौसल्यायन बौद्धिक-

चिन्तक हैं । इन्होंने गम्भीर विषयों को भी बड़ी सरलता से प्रतिपादित किया है । `जो न भूल सका`, `रेल का टिकट`, `बहानेबाजी`, आदि रचनाओं में इनके संस्मरणात्मक एवं चिन्तन-प्रधान निबन्ध प्रकाशित हैं । कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ललित एवं संस्मरणात्मक निबन्धों के लिए विख्यात हैं । `जिन्दगी मुस्कराई`, `बाजेपायलिया के घुंघरू` आदि रचनाओं में इनके प्रेरणादायक ललित निबन्ध संगृहीत हैं । देवेन्द्र सत्यार्थी के निबन्धों में भावुकता की प्रधानता है । इनके ग्रामगीतों पर आधारित निबन्ध मार्मिक एवं महत्वपूर्ण हैं । `एक युग एक प्रतीक`, `क्या गोरी क्या सांवरी`, आदि रचनाओं में इनके ललित एवं संस्मरणात्मक निबन्ध मिलते हैं । सच्चिदानन्दवात्स्यायन `अज्ञेय` (१९११ ई०) के निबन्ध `त्रिशंकु`, `आत्मनेपद`, `आलवाल`, `लिखि कागदकोरे`, तथा `हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य में संगृहीत हैं । `त्रिशंकु` में अज्ञेय ने अपनी साहित्यिक मान्यताओं को स्पष्ट किया है । `आत्मनेपद में उन्होंने अपने व्यक्तित्व, जीवनानुभव तथा रचनाप्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। `हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य` में उनके चिन्तन-प्रधान साहित्यिक निबन्ध हैं । `कुट्टिचातन` नाम से लिखे अज्ञेय के ललित निबन्धों का संग्रह `सब रंग और कुछ राग` नाम से प्रकाशित हुआ है ।

इलाचन्द्रजोशी (१९०२ ई०) के साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबन्धों में विचार और तर्क की प्रधानता है । `विवेचना`, `साहित्य सर्जना`, `विश्लेषण`, देखापरखा` आदि इनकी निबन्ध कृतियां हैं ।

डा० भगवतशरण उपाध्याय (१९०९ ई०) ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं । `इतिहास के पृष्ठों पर`, `खून के धब्बे`, `सांस्कृतिक निबन्ध`, `ठूंठा आम` आदि संग्रहों में इनके निबन्ध संकलित हैं ।

डा० भगीरथ मिश्र (१९१४ ई०) के 'अध्ययन', 'साहित्य, साधना और समाज' तथा 'कला, साहित्य और समीक्षा' तीन निबन्ध कृतियां प्रकाशित हैं। इनके निबन्धों का धरातल वैचारिक है।

डा० देवराज उपाध्याय (१९०८ ई०) ने मौलिक चिन्तन-प्रधान साहित्यिक निबन्धों की रचना की है। 'विचार के प्रवाह', 'साहित्य तथा साहित्यकार', 'कथा के तत्व', 'साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' आदि इनकी निबन्ध-रचनाएं हैं। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, नलिन विलोचन शर्मा, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डा० रांगेयराघव, विश्वम्भर मानव, डा० रामरतन भटनागर आदि निबन्धकारों के भी समीक्षात्मक एवं साहित्यिक विषयों पर गम्भीर निबन्ध मिलते हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा के निबन्धकार यशपाल (१९०३ई०) के निबन्ध 'चक्करक्लब', 'देखा, सोचा, समझा', 'बात-बात में बात', 'गांधीवाद की शवपरीक्षा', 'न्याय का संघर्ष', आदि संग्रहों में प्रकाशित हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण इनके निबन्धों में सामाजिक विषमता, शोषण, अत्याचार, रूढ़िवादी धर्म एवं संस्कृति के प्रति आक्रोश मिलता है। भाषा का प्रवाह इनके निबन्धों में सहज ही प्राप्त होता है।

प्रकाशचन्द्रगुप्त (१९०८ ई०) भी प्रगतिवादी विचारधारा के निबन्धकार हैं। 'साहित्यधारा', 'नयाहिन्दी साहित्य : एक भूमिका', 'आज का हिन्दी साहित्य' आदि निबन्ध-संग्रहों में इनके निबन्ध मिलते हैं। भावों की स्पष्टता एवं भाषा की परिमार्जितता इनके निबन्धों की विशेषताएं हैं।

डा० रामविलासशर्मा (१९१४ ई०) के निबन्धों में भाषा

एवं साहित्य सम्बन्धी समस्याओं पर प्रगतिवादी दृष्टि से विचार किया गया है। इनकी निबन्ध-रचनाओं में 'प्रगति और परम्परा', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'संस्कृति और साहित्य', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', 'विराम चिह्न' आदि उल्लेखनीय हैं।

शिवदानसिंह चौहान (१९१८ ई०) भी प्रगतिवादी विचारधारा के समर्थक निबन्धकार हैं। 'साहित्यानुशीलन', 'प्रगतिवाद', 'आलोचना के मान' आदि कृतियों में इनके निबन्ध मिलते हैं। इनके निबन्ध इनके गहन अध्ययन तथा चिन्तन के परिणाम हैं।

बालकृष्णराव (१९१३ ई०) के विचारप्रधान समीक्षात्मक निबन्ध उनके गम्भीर अध्ययन एवं साहित्यिक सूझ के परिणाम हैं। निबन्ध के क्षेत्र में उनकी लेखमाला 'कमलाकान्त जी ने कहा' विशेष उल्लेखनीय है।

प्रभाकर माचवे (१९१७ ई०) हिन्दी के बहुश्रुत विद्वान् हैं। 'व्यक्ति और वाङ्मय' तथा 'सन्तुलन' में इनके साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध हैं। 'खरगोश के सींग' इनकी ललित-निबन्धों की कृति है। इनमें व्यंग्य-विनोद की प्रधानता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क (१९१० ई०) के निबन्धों में जीवन की सामान्य घटनाओं का आत्मीय ढंग से चित्रण हुआ है। इनके अधिकांश निबन्ध संस्मरणात्मक शैली के हैं।

डा० इन्द्रनाथ मदान (१९१० ई०) ने आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त छोटे-छोटे ललित निबन्धों की भी रचना की है। 'हिन्दी कलाकार', 'आलोचना तथा काव्य', 'आधुनिक कविता का मूल्यांकन' आदि में इनके साहित्य-समीक्षा-विषयक निबन्ध संगृहीत हैं। डा० मदान दैनन्दिन जीवन की सामान्य घटनाओं को प्रतिपाद्य बनाते हैं। आत्मीयता इनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता है। इनकी शैली निजी है

तथा भाषा सरल, अनूठी एवं हृदयग्राही है। इनकी व्यंग्य-शैली भी मौलिक है। इन निबन्धों में लेखक अपने पर हंसता है और इसी हास्य के माध्यम से आधुनिक जीवन की असंगतियों, परिवेश आदि पर व्यंग्य करता है।

डा० संसारचन्द्र (१९१७ ई०) के 'सटक सीता राम', 'सोने के दांत' तथा 'अपनी डाली के कांटे' निबन्ध-संग्रहों में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है।

डा० रघुवंश (१९२१ ई०) के 'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' समीक्षात्मक निबन्ध-संग्रह में उनके नव चिन्तन को देखा जा सकता है। उनके यात्रापरक निबन्ध भी उल्लेखनीय हैं। कतिपय अन्य समीक्षात्मक निबन्धकारों में डा० विजेन्द्रस्नातक, डा० उदयभानुसिंह, डा० सरनामसिंह, 'अरुण', डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, डा० रामचरण महेन्द्र, डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', डा० जयनाथ नलिन, डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, डा० त्रिभुवनसिंह, डा० बच्चन सिंह, डा० रमेश कुन्तलमेघ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कतिपय नयी प्रतिभाएं --

डा० विद्यानिवास मिश्र (१९२५ ई०) के निबन्धों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की सांस्कृतिक, साहित्यिक निबन्ध-परम्परा को विकास मिला है। इनके निबन्ध संकलन हैं -- 'छितवन की छांह', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चन्दन हम पानी', 'हल्दी दूब' तथा मैंने सिल पहुंचाई। इन निबन्धों में शिक्षा, भाषा, साहित्य, संस्कृति, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आदि विषयों पर विचार किया गया है। इनके चिन्तन में मौलिकता है। चिन्तन एवं अनुभूति का सहज समन्वय इनके

निबन्धों की प्रमुख विशेषता है ।

ठाकुरप्रसाद सिंह के निबन्धों का उल्लेख्य संग्रह है -- `पुरानाघर नए लोग` । इनके ललित निबन्धों में व्यंग्यात्मकता की प्रधानता है । भाषा की लाक्षणिकता से इनके व्यंग्य बड़े ही पैने और गहरे बन गए हैं ।

डा० नामवर सिंह के निबन्ध `इतिहास और आलोचना`, `आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ तथा `बकलमखुद` में संकलित हैं ।

धर्मवीर भारती (१९२६ ई०) के `मानव मूल्य और साहित्य` में नवचिन्तन विषयक गम्भीर निबन्ध हैं । साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त इनके यात्रापरक तथा समसामयिक विषयों पर लिखित निबन्ध भी उल्लेखनीय हैं । इनके यात्रापरक निबन्धों में प्रकृति का काव्यमयी भाषा में चित्रण है । सामयिक विषयों पर आधारित निबन्धों में चिन्तन और व्यंग्य का सौन्दर्य देखते ही बनता है ।

शिवप्रसाद सिंह के ललित कथात्मक निबन्ध `शिखरों का सेतु` शीर्षक से प्रकाशित हैं । इनके निबन्धों की शैली में निबन्धकार ने अपने ही शब्दों में `वैचारिकता है, भावात्मकता है, आवेश है, विश्लेषण और व्याख्या भी और ये सभी वर्ण्यवस्तु के स्वभाव के अनुरूप अपना रूप स्वयं ग्रहण करते रहे हैं ।`

कुबेरनाथ राय ने आधुनिक जीवन के परिवेश को रूपायित करने के उद्देश्य से सांस्कृतिक परम्पराओं का चित्रण किया है ।

मोहन-राकेश (१९२५-१९७३ ई०) के निबन्ध `परिवेश` `रंगमंच` और `शब्द` आदि संग्रहों में प्रकाशित हैं । इनमें निबन्धकार

की तन्मयता अपूर्व है ।

विवेकीय (१६२७ ई०) के निबन्ध `त्रिधारा` तथा `फिर बैतलवा डाल पर` संग्रहों में प्रकाशित हैं । `फिर बैतलवा डाल पर `कथात्मक शैली के निबन्ध हैं । अधिकांश निबन्धों में ग्रामीण जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिपात है । सभी निबन्ध व्यंग्य-विनोद-गर्भित हैं । निबन्धकार की भाषा-भंगिमा उसकी मौलिक है, निजी है ।

रमेशचन्द्रशाह (१६३७ ई०) महत्वपूर्ण समीक्षात्मक एवं आत्मपरक निबन्धों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं ।

हरिशंकर परसाई (१६२४ ई०) अपने व्यंग्य-निबन्धों के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं । राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक विसंगतियों पर इनके व्यंग्य बड़े ही पैने हैं ।

हिन्दी निबन्ध के विकास का यह संक्षिप्त इतिहास इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी-निबन्ध-साहित्य प्रगति पथ पर है । इसके भांडार में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है । समग्रत: विचार किया जाए तो निबन्ध-क्षेत्र में आलोचनात्मक एवं साहित्यिक निबन्धों का प्रणयन अधिक हुआ है, आत्मव्यंजक ललित निबन्ध अपेक्षाकृत कम ही लिखे गए हैं ।

समालोचना का संवर्धन-काल — (द्विवेदी युग)

सामान्य परिचय और संवर्धन की दिशा—

द्विवेदी युग में यद्यपि समालोचना में वह प्रौढ़ि नहीं आ सकी, जो उसके उत्तरवर्ती शुक्ल-युग में स्वभावत: प्रदर्शित हुई, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि इस युग में आधुनिक हिन्दी-समालोचना के संवर्धन के सभी लक्षण क्रमश: संगठित होने लगे थे । इस युग ने पत्र-पत्रिकाओं के कलेवर में विकसित होने वाली बुक-रिव्यू अथवा पुस्तकालोचन की परिचयात्मक समीक्षा के साथ-साथ सैद्धान्तिक और व्यवहारिक समीक्षा के अनेक स्वरूपों का अपेक्षित महत्त्व-निर्धारण किया और भारतेन्दु-युग की चेतना को विकसित बनाया । वस्तुत: इस युग का एक सुनिश्चित मानसिक धरातल था, जो भारतीय आदर्श और समाज-सुधार की भावनाओं से निर्मित हुआ था । अत: उसी के अनुरूप रचना और समालोचना का भी पक्ष-संगठन हुआ ।

इस समय भारतेन्दु युग में प्रवर्तित समालोचना का उसके विविध स्वरूपों में वस्तुत: संवर्धन होने लगा था । भारतेन्दु-युग में पं० बदरीनारायण चौधरी `प्रेमघन` तथा पं० बालकृष्ण भट्ट द्वारा पुस्तकालोचन के रूप में जिस समालोचना-विधि को जन्म दिया गया था, उसका प्रस्फुटन इस युग में प्रदर्शित हुआ । इस युग के सम्पादक और समालोचक समालोच्य कृतियों के सम्बन्ध में केवल दस-पांच पंक्तियों में परिचय के तौर पर यों ही कुछ लिखकर अपने कर्त्तव्य से छुट्टी नहीं पाने लगे, अपितु उनकी दृष्टि इस ओर भी जाने लगी कि यथासम्भव समालोचना के लिए प्राप्त रचनाओं का कुछ विशद विवेचन भी हो ।[१] भारतेन्दु

---

१. पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, `समालोचना समुच्चय`, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २ ।

युग में तो अधिकतर पुस्तकों की समालोचनाएं, उनकी छपाई, कीमत, पृष्ठ-संख्या, लेखक संस्तव आदि करते हुए ही कर दी जाती थी अथवा यह कह कर बल दिया जाता था कि समालोचना आगामी अंक में करेंगे, किन्तु द्विवेदी युग में ऐसा बहुत कम हुआ । इसका बहुत कुछ श्रेय आचार्य द्विवेदी जी जैसे कर्मठ साहित्य-सेवियों और समालोचकों को ही है । द्विवेदी जी ने सरस्वती के प्रत्येक अंक में निरालसवृत्ति से केवल उन पुस्तकों की ही समालोचनाएं नहीं की, जो उन्हें समालोचनार्थ प्राप्त होती थीं, किन्तु उन कृतियों का भी समीक्षण किया, जो उस युग में महत्वशाली रहीं । इस प्रकार उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के समकालीन बंगला और मराठी भाषा के भाषा साहित्यों का भी परिचयात्मक समीक्षण अपनी सर्जनात्मक प्रवृत्ति से किया और संस्कृत का प्राचीन गौरवपूर्ण साहित्य भी उनके दृष्टि-बिन्दु से नहीं बच सका । अत: यह स्पष्ट है कि द्विवेदीयुग का समालोचना साहित्य निश्चय ही अपने पूर्ववर्ती युग का संवर्धित स्वरूप था ।

निर्माण पक्ष और काल-निर्धारण—

द्विवेदी-युग में समालोचना के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक इन दोनों पक्षों का विवेचन हुआ । उसका सैद्धान्ति पक्ष-निरूपण एक ओर प्राचीन संस्कृत-साहित्य के रस, अलंकार, ध्वनि और वक्रोक्ति आदि काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदायों से अनुप्राणित था तो दूसरी ओर उसमें पाश्चात्य जगत् में विकसित होने वाली व्याख्यात्मक समालोचना का भी पर्याप्त अंश था । उसकी मूल चेतना में द्विवेदी जी की सुरुचि-सम्पन्नता और नैतिकता का भी प्रमुख श्रेय रहा ।

हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों ने द्विवेदी-युग की काल-सीमा सन् १६०१ से १६३० तक मानी है।[१] उनका भी यह काल-निर्धारण व्यापक

---

१. पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, 'नया साहित्य :नये प्रश्न ' द्विवेदीयुग की समीक्षा-देन, पृष्ठ ३२ ।

दृष्टि से समीचीन है, किन्तु मैंने समालोचना की विकास-धारा को विभिन्न चरणों में प्रक्षिप्त करने की सुविधा से प्रस्तुत काल-निर्णय का एक विशेष दृष्टिकोण रखा है। वैसे तो द्विवेदी जी की विचारधारा और समीक्षा-पद्धति के समालोचकों और विचारकों का आज भी अभाव नहीं है, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि सरस्वती से अवकाश ग्रहण करने पर उनका वह ऊर्ध्वोन्मुखित व्यक्तित्व समीक्षा-जगत् के सम्मुख धूमिल पड़ने लगा था और साहित्यालोचन के प्रतिमान में भी नवीन उत्क्रान्तियाँ और विकास-प्रक्रियाएं मूर्तिमान बनने लगी थीं। निस्सन्देह समालोचना के क्षेत्र में सन् १६३० तक भी उनकी समानवर्ती समीक्षाशैली और प्रतिमान-प्रणाली चलती रही[१] और उनके काल के आलोचक प्राय: वैसा ही निरूपण करते रहे, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि सन् १६२० के पश्चात् आचार्य द्विवेदी के युग का अवसान नहीं, तो कम से कम उनकी प्रखरता मन्द अवश्य पड़ने लगी थी। द्विवेदी युग के उपरान्त समालोचना में जो युग आया, वह उन्हीं के युग की विचार-कणिकाओं से विकसित और व्याप्त था, किन्तु फिर भी उनमें प्रौढ़ता अवश्य आने लगी थी। उनके पश्चात् आचार्य शुक्ल जी इस क्षेत्र में अधिनायक बनकर आए और यह कहना उचित होगा कि उनके जिस व्यक्तित्व का निर्माण द्विवेदी-युग तथा स्वयं द्विवेदी जी ने किया था, वह उस समय पर्यन्त अपने चिन्तन, मनन और पर्यवेक्षण से एक स्वतन्त्र मानदण्ड स्थापित करने में समर्थ हो रहा था।

----

१. पं० नन्ददुलारे बाजपेयी : 'नया साहित्य, नये प्रश्न', द्विवेदीयुग की समीक्षा देन, पृष्ठ ३२।

मूल भावना और आधारशिला --

द्विवेदी युग के साहित्य-समालोचकों की अन्तश्चेतना एक निश्चित भावभूमि पर अवलम्बित थी । इस युग के प्राय: समस्त विचारक मध्यम श्रेणी के व्यक्ति थे, जिनके संस्कार प्राचीन भारतीय आदर्श तथा आचार-शास्त्र के अधिक निकट थे । यद्यपि युग-धर्म ने उनके मानस में सुधारवादी विचारधारा और नैतिकता की विकासोन्मुखी भावना का प्रस्फुरण भी किया था, किन्तु वे अतीत के प्रति बनी हुई अपनी आस्थाओं में इतने सुदृढ़ थे कि नवीनता का आलोक उन्हें बिना किसी सांस्कृतिक आधार के चमत्कृत और मुग्ध नहीं बना सकता था[१]। उन्होंने साहित्य को जीवन की एक संजीवनी शक्ति और मंगलविधायिनी प्रेरणा के रूप में देखा और उसकी महत्ता का निरूपण व्यक्तिपरकता से न कर सामाजिक दृष्टिकोण से किया । राम और कृष्ण इस साहित्य सेवियों के आदर्श थे और गीतिकाव्य की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य के प्रति उनका अधिक भुकाव था । इस युग के रचनात्मक और आलोचनात्मक साहित्यों पर उनकी इस मानसिक चेतना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

उपयोगितावादी दृष्टि और उसकी सीमाएं --

द्विवेदी युग में साहित्यालोचन का जो निकष निर्धारित किया गया, उस पर उपयोगितावाद का सर्वाधिक प्रभाव है । इस युग की समालोचक-दृष्टि आर्य समाजी भावनाओं के अनुरूप सुधारयुग की दृष्टि थी, जिसका केवल तात्कालिक उपयोग अथवा महत्त्व था । आज के परिवर्तित युग में वह मानदण्ड बहुत अधिक समय-बाह्य हो गया है और उसकी उपयोगिता स्थायी न रह कर

---

१. पं० नन्ददुलारे बाजपेयी : `आधुनिक साहित्य', द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १२ ।

केवल युगधर्मी और ऐतिहासिक-मात्र बन गई। उस समय केवल नैतिकता और आदर्श की छाप समालोचना के क्षेत्र में अपना ऐसा गम्भीर प्रभाव अंकित कर गई, जिसके कारण अनेक समालोच्य कृतियों और साहित्यकारों के साथ न्याय-भावना का निर्वाह नहीं हो सका। छायावाद के कवि इस युग के आलोचकों के व्यंग्य-लक्ष्य बने, जिसका मूल कारण इस युग की उपयोगितावादी एकांगी दृष्टि ही थी। इसी प्रकार हिन्दी रीतिकाव्य के प्रति भी जो एक प्रकार की अरुचि और भर्त्सना की भावना का पिष्ठपेषण हुआ, वह भी इसी मानसिक प्रवृत्ति के कारण। मुक्तक और गीतिकाव्य के स्थान पर प्रबन्ध और महाकाव्यों का महत्व, यथार्थ पर आदर्श का अधिकार इसी का निदर्शन है। उस युग की समीक्षा के अन्तर्गत काव्य की शुद्ध आनन्ददायिनी शक्ति अर्थात् रस-निष्पत्ति का सम्यक् संयोजन साहित्य-परीक्षण में ठीक ठिकाने की विधि से नहीं हो पाया। अत: द्विवेदी युग अपनी उपयोगिता और सुधारवादिता में यथेष्ट प्रगतिशील होकर भी साहित्यालोचन में एक विशेष की ओर इतना अधिक परिसीमित हो गया, जिसकी प्रतिक्रिया हमें उसी युग के अन्तर्गत विकसित होने वाले छायावादी कवियों की भावधारा की आलोचनात्मक उपलब्धियों के अन्तर्गत मिली।

जिन्दादिली और जागरूकता —

द्विवेदी युग को हिन्दी समालोचना की संजीदगी का युग कहा जा सकता है। उस युग के अधिकांश समालोचक पत्रकार भी थे, अत: उन्होंने सम्पादकीय अधिकार तथा ओज में जो कुछ भी साहित्यालोचन किया, वह केवल परम्परायुक्त और एकांगी न रहकर सामयिकता का भी संस्पर्श करता हुआ चला। उनके सामने भाषा-साहित्य की नित्य नूतन समस्याएं आती थीं, जिनका निराकरण केवल कठोर अनुशासन के द्वारा ही किया जा सकता था। वे जिस सिद्धपीठ पर अधिष्ठित थे, उसके उत्तरदायित्व का उन्हें पूर्ण ध्यान था।

स्पष्टवादिता उनमें इतनी अधिक थी कि वे निस्संकोच भावना से `सरस्वती` पत्रिका की सम्पादकीय टिप्पणियों में उनकी कस कर खबर लेने में नहीं हिचकिचाते थे। इसका प्रमाण उनके `सरस्वती` के फ्लेख और दौलतपुर तथा काशी नागरीप्रचारिणी सभा में संगृहीत उनकी पत्रावली तथा वह साहित्य-सामग्री है जो उनके व्यक्तित्व की विशालता को जानने में कुंजी का काम देती है।

वादविवाद प्रणाली की प्रवृत्ति —

उस समय के आलोचकों में छोटी-छोटी बातों को लेकर कभी-कभी इतनी अधिक तन जाती थी कि तात्कालीन पत्र-पत्रिकाएं उन्हीं की विवाद-प्रणाली से ओत-प्रोत रहती थीं। चूंकि उस समय के आलोचक अधिकांशत: सम्पादक भी थे, अत: उन्हें अपने पत्रों में अपने मन की उमंगों के उद्भाव का सर्वाधिक उपयुक्त अवसर मिलता था। द्विवेदी जी को भी अनेक बार ऐसा करना पड़ा और आलोचना-प्रत्यालोचना का यह क्रम सुदीर्घ काल पर्यन्त लेख-परम्परा के रूप में चलता रहा। आचार्य द्विवेदी का युग मुख्यत: भाषा-शोधन और भाव परिष्करण का ही युग था। उस युग के साहित्यकारों में आत्म-प्रशंसा की भावना का भी प्रबल उद्रेक रहता था।

भाषा संशुद्धि का आन्दोलन और `अनस्थिरता` शब्द —

द्विवेदी युग की समालोचना का एक प्रमुख विषय भाषा-संशुद्धि का आन्दोलन था। भाषा के शुद्ध लेखन और प्रयोग के द्विवेदी जी कट्टर समर्थक थे। वे इस विषय में किये जाने वाले प्रमाद को किसी भी दशा में क्षम्य नहीं समझते थे। उन्होंने कठोर परिश्रम और अथक अध्यवसाय के साथ इस आन्दोलन का सूत्र संचालन किया और अनेक लेखों द्वारा उचित दिशा-निर्देश

भी किया । उन्होंने नवम्बर सन् १६०५ में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख लिखा जिसमें उन्होंने शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की विद्याकुंकर की आवृत्ति, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के एक नोटिस, गदाधर सिंह की एक विज्ञप्ति, काशीनाथ खत्री की एक सूचना तथा राधाचरण गोस्वामी के भारतेन्दु पत्र से कतिपय व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियों के उद्धरण देकर इस बात पर विशेष बल दिया था कि हिन्दी में एक सर्वमान्य व्याकरण प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण होना चाहिए । द्विवेदी जी का यह निबन्ध एक सुझाव, किन्तु उन्होंने जिस व्यंग्यपूर्ण प्रणाली में उक्त लेख की रचना की, उसमें अन्य विद्वानों को उनकी दम्भपूर्ण सर्वज्ञता की झलक मिली जिससे वे लोग उनका विरोध करने के लिए प्रस्तुत हो गये । इस प्रकार 'अविस्थिरता' सम्बन्धी वादविवाद द्विवेदी-युग की समालोचना में एक प्रधान अंग बनकर उपस्थित हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि समालोचना के लिए एक नया अखाड़ा प्रस्तुत हो गया । जिन लोगों ने द्विवेदी जी के 'अविस्थिरता' शब्द के शुद्ध प्रयोग के प्रति शंका प्रकट की उसमें सर्वश्री विष्णुदत्त शर्मा, गिरिधर शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, अक्षयवट मिश्र, गोकुलचन्द प्रसाद वर्मा, गोपालराम गहमरी तथा चन्द्रधरशर्मा गुलेरी प्रमुख थे ।

<u>विभक्ति-विचारविषयक दृष्टिकोण —</u>

द्विवेदी युग में भाषा-परिष्करण और वाक्य-संगठन के विषय को लेकर एक अन्य आन्दोलन भी चला जिसे 'विभक्ति विचार का आन्दोलन' कहा जा सकता है । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उस युग के आलोचक अहंवादी होते हुए भी हिन्दी भाषा और साहित्य का वैभव देखने के परम आकांक्षी थे और वे सभी दृष्टियों से भाषा-साहित्य के कोष की वृद्धि करना चाहते थे, अत: अन्यान्य विषयों की भांति उनका ध्यान इस ओर भी गया कि वाक्य-योजना में विभक्तियों को शब्दों के साथ सटाकर लिखना चाहिए अथवा हटाकर ?

यह विषय भी तत्कालीन समालोचना का अत्यन्त रुचिपूर्ण विषय रहा । आचार्य द्विवेदी जी भी वस्तुत: इस मत के थे कि यथासम्भव विभक्तियां शब्दों से हटाकर ही लिखी जानी चाहिए, किन्तु उन्होंने उस मत का प्रबल प्रतिपादन नहीं किया । उन्होंने इस विषय का निर्णय लेखकों पर छोड़ दिया और अपनी यह सम्मति दी कि अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार लेखक चाहे जिस रूप में विभक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं ।

तुलनात्मक प्रवृत्ति और पूर्वग्रह —

द्विवेदी-युग में कवियों की तुलना और उन्हें एक दूसरे को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार छोटा-बड़ा सिद्ध करने की भावना भी समालोचना क्षेत्र में एक प्रमुख विषय बनकर उपस्थित हुई । इसमें सन्देह नहीं कि इस युग में समालोचना का स्तर और दृष्टिकोण भारतेन्दु-युग से बहुत कुछ आगे बढ़ चुका था और वह केवल पुस्तक-परिचय या कवि-नामोल्लेख मात्र न होकर उससे पर्याप्त विकसित था, फिर भी इस युग के आलोचकों में गाम्भीर्यपूर्ण, निष्पक्ष तथा व्यापक दृष्टि की न्यूनता ही रही । जिस तटस्थता और विवेक-शक्ति से उद्भावित होकर समालोचना की जानी चाहिए, वह पर्यवेक्षण-प्रवृत्ति हमें इस युग के आलोचकों में अधिक नहीं मिलती ।

टीका-साहित्य द्वारा सम्वर्धन —

द्विवेदी-युग की समालोचनाओं का एक अंग टीका-साहित्य भी है । इसके द्वारा हमारे काव्य-साहित्य के अनेक अमर रत्नों के काव्य-सौष्ठव का सरल सुबोध हिन्दी के सामान्य पाठकों को भी हो सका । सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम आदि कवियों की कृतियों का इस कार्य में प्राधान्य रहा । इन टीकाओं के अन्तर्गत पाद-टिप्पणियों के रूप में काव्य-

प्रयुक्त अलंकारों, छन्दों और दोषों का भी सामान्य चित्रण हुआ । द्विवेदी युग का टीका साहित्य अपने पूर्ववर्ती भारतेन्दु-युग में सम्वर्धित होने पर भी कई दृष्टियों से एकांगी और अपूर्ण भी था, जिसके द्वारा समालोचना के अन्तर्गत नीर-क्षीर-विवेक करने वाली प्रथा का अधिक संचार नहीं हो सका था । फिर भी यह सम्वर्धन की एक दिशा अवश्य थी ।

कवियों और कृतियों का विश्लेषण —

इस युग में पाश्चात्य कवि भी आलोचकों द्वारा चर्चा के विषय बनाए गए । सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम आदि कवियों का काव्य-विषयक महत्व इसी युग में विशेष रूप से समीक्षित हुआ । कार्य में आचार्य द्विवेदी जी ने सबका नेतृत्व किया । उनमें साहित्य-पारखी के उपयुक्त एक ऐसी प्रतिभा थी, जिसके द्वारा वे विषय के मूल मन्तव्य को बड़ी कुशलता से परख लेते थे । यद्यपि उनकी समालोचनाओं में काव्यशास्त्रीय सैद्धान्तिकता का आधिक्य होता था, किन्तु उनमें ऐसे अनेक संकेत भी अन्तर्निहित रहते थे जिनसे उदीयमान समालोचकों और साहित्यकारों को नवीन प्रेरणाएं मिलती रहती थी । द्विवेदी जी के अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने भी 'मिश्रबन्धु विनोद', और 'हिन्दी-नवरत्न' में इस प्रकार के विवेचन को विस्तृत बनाया। इस युग के आलोचकों में सुधारवादी और आदर्शनिष्ठ कवियों को छोड़कर स्वच्छन्दतावादी और कल्पनाजीवी कवियों के साथ उदारता के कम तत्व रहे, जिसे इस युग के समालोचकों का दोष न कह कर तत्कालीन सामान्य प्रवृत्ति का ही प्रभाव कहना चाहिए ।

विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियां —

द्विवेदी-युग में जिन कवियों के साहित्य का विवेचन किया गया, उनमें विभिन्न प्रकार की समीक्षा-पद्धतियों का भी प्रयोग है । इस काल में

आकर हमारे समालोचक भारतीय और पश्चिमी प्रणालियों के स्वरूप-विधान से यथेष्ट परिचित हो गये थे, अत: उन्होंने दोनों के तथ्यपरक सिद्धान्तों का चयन कर अपनी मेधा से समीक्षण किया । उसके समीक्षण में उनके व्यक्तित्व की छाप है । स्पष्टता, सरलता और सुबोधता तो उनकी समीक्षा-शैली के प्रमुख गुण हैं । यदि किसी कवि की कृति ने उन्हें विशेष आनन्द-विभोर बनाया है तो भी वे प्रभावाभिव्यंजकता के प्रवाह में ऐसे नहीं बह गये हैं कि उनके हाथ से समालोचना-तरी ही छूट गई हो ।

सैद्धान्तिक पक्ष के क्षेत्र —

द्विवेदी-युग की समालोचनाओं के सैद्धान्तिक पक्ष के अन्तर्गत काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और यहां तक कि समालोचना-साहित्य का भी समीक्षण हुआ । इनमें सर्वाधिक प्रधानता काव्यशास्त्र के विवेचन की ही रही । इस दिशा में मिश्रबन्धुओं ने भी कार्य किया, किन्तु वह परम्परागत ही विशेष रहा । उनका 'साहित्य-पारिजात' नामक ग्रन्थ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में समालोचकों का ध्यान व्याख्यात्मक समालोचना को पुष्ट बनाने, भाषा का स्वरूप स्थिर करने तथा वाद-विवाद-प्रणाली में रुचि लेने की ओर जितना अधिक था, उतना सैद्धान्ति निरूपण की ओर नहीं ।

रचनात्मक साहित्य के लिए प्रस्तुत प्रतिमान —

द्विवेदी-युग में रचनात्मक साहित्य का विधान जिन-जिन रूपों में हुआ उनमें काव्य के अतिरिक्त नाटक, उपन्यास, आख्यायिका और गल्प आदि भी है । इनके द्वारा भी समालोचना साहित्य को विकसित होने की प्रेरणाएं मिली हैं । द्विवेदी युग में जिस प्रकार के काव्य, कहानी, नाटक और उपन्यास आदि लिखे गये, उनमें सर्वत्र समाज-सुधार, आदर्श-निष्ठा, प्राचीन-संस्कृति के

प्रति प्रेम तथा अभिनवता का स्वस्थ दृष्टिकोण झलकता था, अत: उनका प्रतिबिम्ब समालोचना-साहित्य पर भी पड़ना अनिवार्य-सा था। इस युग के साहित्यकारों का प्रधानत: साहित्यकला विषयक यही दृष्टिकोण रहा कि वह जीवन के लिए है और उसकी उपयोगिता हमारे लौकिक धरातल से पूर्णतया सम्बद्ध है। अत: उन्होंने यदि पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर भी अपनी रचनाएं कीं, तो भी उन्हें अपने युग का रंग दे ही दिया। इस युग के चाहे किसी भी साहित्यकार की रचनात्मक प्रतिभा का अध्ययन किया जाय, हमें उसमें जीवन के प्रति एक सन्देश अथवा शिक्षा-भाव अवश्य मिलेगा। यही कारण है कि समालोचना के इस संवर्धन काल में हमें रचनात्मक साहित्य के अनुरूप ही समालोचनात्मक साहित्य मिलता है। यदि किसी साहित्यकार ने युग-धर्म की मान्यताओं का उल्लंघन कर अपनी स्वतन्त्र रुचि से काम भी लिया है तो उसे साहित्यकार की पंक्ति से बहिर्गत करने की चेष्टा ही की गई है, भले ही अपनी प्रतिभा के बल पर कालान्तर में उसने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया हो। इस युग की समालोचना में यह भी एक विशेष बात है कि वह रचनात्मक साहित्य का यथावसर नियमन भी करती चली है। इसी नियमन प्रवृत्ति और पथ-प्रदर्शन की योग्यता ने ही तो द्विवेदी जी को इस युग का सूत्रधार बनाया था, अन्यथा ऐसी तो कोई बात नहीं कि वे साहित्य के इतने गम्भीर और महान् अध्येता रहे हों जिनके द्वारा कहीं नवीन और मौलिक उद्भावनाओं का सार्वजनीन और शाश्वत स्वरूप निर्मित किया गया हो।

शोध कार्य द्वारा समालोचना-वृद्धि—

द्विवेदी युग की समालोचनाओं का एक प्रतिमान शोधपरक विषयों से भी संगठित है। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान प्राय: वे ही रहे, जिनका सम्बन्ध नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और हिन्दुस्तानी एकेडमी से विशेष था। इन विद्वानों द्वारा प्राचीन साहित्य के अनेक अप्राप्य

ग्रन्थों का परिश्रमपूर्वक संकलन किया गया और उनकी प्रामाणिकता पर भी विचार किया । `नागरीप्रचारिणी पत्रिका` का एक प्रमुख उद्देश्य ऐसे ग्रन्थों का ही शोधपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करना था । सभा ने समय-समय पर अपने शोध-विवरण भी प्रकाशित किए जिनमें प्राप्त ग्रन्थों और रचयिताओं की एक लम्बी सूची रहती थी । इस प्रकार के शोधों से यह आभासित होने लगा कि हिन्दी साहित्य की भी एक प्राचीन और समृद्धपरम्परा है और जो लोग उसे `रामचरितमानस`, `सूरसागर` अथवा बिहारी की `सतसई` में ही केन्द्रीभूत समझते हैं, वे भ्रान्तिग्रस्त है । इस क्षेत्र में डा० पीताम्बर बड़थ्वाल जी ने सिद्धों और नाथ पंथियों के साहित्य पर अनेक नवीन उपलब्धियां प्रदान की हैं । द्विवेदी युग की शोधपरक समालोचना में अधिकांशत: प्राचीन कवि और उनके काव्य ही विवेचित रहे । आधुनिक युग की प्रवृत्तियों और साहित्य-धाराओं की शिल्प-विधि को लेकर भी शोधकार्य किया जा सकता है, इस ओर समालोचकों का अधिक ध्यान नहीं गया । बात यह थी कि द्विवेदी-युग समालोचना का संवर्धनकाल अवश्य था, किन्तु उस समय हिन्दी का विश्वविद्यालयों की उच्चतम कक्षाओं में पठन-पाठन करने के लिए गौरवपूर्ण स्थान न बन सका था और न राज्य की ओर से ही उसको विशेष प्रोत्साहन था । अत: शोध द्वारा समालोचना वृद्धि में केवल वे ही व्यक्ति अपना योगदान दे सकते थे, जो अधिक से अधिक स्वानुभूति से प्रेरणा लेकर चलते । यही कारण है कि द्विवेदी युग में शोध-विषयक कार्य केवल कुछ ही संस्थाओं और उनके कार्यकर्ताओं के बीच सीमित रह गया ।

महत्व निर्धारण और निष्कर्ष --

द्विवेदी जी की समालोचक के रूप में सबसे बड़ी देन यही है कि वे अपनी सृजन-शक्ति में एक विशिष्ट साहित्य-निर्माता थे । यह उन्हीं के युग और व्यक्तित्व का प्रभाव था जिसने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमें

उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, काव्यकारों में मैथिलीशरण, नाटककारों में प्रसाद और आलोचकों तथा निबन्धकारों में रामचन्द्रशुक्ल जैसे महान् मेधावी लेखक प्रदान किये । इन साहित्यकारों के निर्माण में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की यथेष्ट छाप थी । यही कारण है कि इनमें से कुछ स्वच्छन्दतावादी साहित्यकारों को छोड़कर अधिकांश साहित्यकार द्विवेदी युग की उत्तरवर्ती भावनाओं से प्रभावित होने पर भी उस युग की मान्यताओं के परिवेशमण्डल से खुलकर बाहर नहीं जा सके और घूम-फिर कर उन्हें उस युग की आदर्श-निष्ठा और नैतिकता को स्वीकार करना ही पड़ा ।

रीतिकाल की भांति इस युग को भी संस्कृत की अपार ज्ञान-राशि से साहित्यालोचन की प्रेरणा मिली थी, किन्तु वह रीतिकाल की भांति रूढ़िग्रस्त न होकर रूढ़िमुक्त थी । इस युग में हमें समालोचना के अन्तर्गत समन्वय और सन्तुलन की प्रवृत्ति भी मिलती है, किन्तु उसका विकास स्वच्छन्द विधान में अधिक नहीं हो सका है । इस युग के समालोचकों द्वारा समालोचना को ऐसी आत्मानुभूति और स्वप्रेरित प्र से अनुप्राणित नहीं किया गया, जिसमें वह भी एक कलाकृति के समान ही मानव-भावनाओं की सौन्दर्यमयी अभिव्यंजना करने के लिए प्रस्तुत होती है ।

समालोचना का विकास-काल (शुक्लयुग)

भारतेन्दु-युग में जिस आधुनिक समालोचना-प्रणाली का प्रवर्तन हुआ, वह द्विवेदीयुग में आकर संवर्धित हुई, और शुक्ल-युग में आकर विकसित बनी, अत: आचार्य शुक्ल जी के कार्य-काल को `हिन्दी समालोचना का विकास-काल` कहा है। इसका काल-निर्धारण सन् १६२१-१६४० पर्यन्त रखा गया है, जब शुक्ल जी की प्रतिभा द्विवेदी-युग की मान्यताओं से अधिक विकसित और प्रौढ़ बनकर अपना स्वतन्त्र विधान करती है। जब तक द्विवेदी जी सरस्वती का सम्पादन करते रहे, उनसे साहित्य का नेतृत्व निर्भीकितापूर्वक होता गया, किन्तु सन् १६२० के पश्चात् उनके सम्पादन-कार्य से विराम लेने पर उनका साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में प्रभाव शनै: शनै: शिथिल पड़ने लगा। इस समय पर्यन्त विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन अध्यापन का महत्व भी स्वीकार कर लिया गया था और भाषा में भी स्थिरता और प्रौढ़ि आ गई थी, अत: द्विवेदी युग से ही जो कार्य किया गया, उसके विकास के सभी लक्षण शुक्लयुग में आकर संघटित हुए। शुक्ल जी ने अपने गम्भीर अध्ययन और चिन्तन से साहित्य-परीक्षण को नवीन दृष्टि दी और वे द्विवेदी जी की मान्यताओं को बहुत अधिक आगे ले गये। अत: यह युग अनेक दृष्टियों से अपना स्वतन्त्र विकास करने में समर्थ हुआ। यद्यपि इसकी अन्तश्चेतना और मान्यताओं में द्विवेदी-युग की पृष्ठभूमि भी बनी हुई है, किन्तु विकास की दृष्टि से इसका स्वतन्त्र मूल्यांकन समीचीन है। इस युग के अन्य आलोचक शुक्ल जी की मान्यताओं के निकट ही चलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, अत: उनकी विशेष मौलिक देन नहीं है फिर यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार रामभक्ति-शाखा में गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व सर्वोपरि बनकर प्रकट हुआ, जिसकी दिव्य दीप्ति के सम्मुख अन्य रामभक्त कवि हतप्रभ हो गये, उसी प्रकार शुक्ल जी के समीक्षण ने साहित्य-क्षेत्र को इतना अधिक प्रभावित

किया कि शेष समालोचक उन्हीं के निर्दिष्ट परिवेश में अपना काम कर सके ।

शुक्ल युग की समालोचना में भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण है । उनमें द्विवेदी-युग की अपेक्षा अधिक व्यापक दृष्टिकोण है । कवियों और काल विशेषों का अध्ययन इस युग में विस्तृत विधान पर किया गया है । रचनात्मक साहित्य के अंगों में अभिनव वृद्धि होने के कारण उनका प्रभाव भी समालोचना पर पड़ा है । इस युग में साहित्य के काव्येतर अंगों के सैद्धान्तिक निरूपण के साथ-साथ प्रमुख साहित्यकारों की कृतियों का भी विश्लेषण स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में हुआ है । पश्चिमी साहित्य में व्याख्यात्मक प्रणाली के अन्तर्गत जिस ऐतिहासिक पद्धति का अनुगमन किया जाता है उसका यथेष्ट विकास इस युग की समालोचनाओं में मिलता है । यद्यपि मनोविश्लेषणवादी, जीवनचरितमूलक, और समाजशास्त्रीय पद्धति का प्रसार इस युग में अधिक नहीं हो सका, फिर भी उनके निर्माण और विकास के लक्षण इस युग में संगठित होने लगे थे । इस युग के समालोचकों में निर्णयात्मक प्रवृत्ति भी कम न थी । साहित्य और भाषा विषयक अनेक इतिहास भी इस काल में लिखे गये । कवियों की कलाओं और काव्यसाधनों का भी पर्याप्त प्रचार रहा । इस युग में समालोचना-कार्य को विकसित बनाने में जिन विद्वानों ने अधिक सहयोग दिया, उनमें विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों का विशेष हाथ था । निष्कर्ष यह है कि इस युग की समालोचना द्विवेदी-युग का ही विकसित रूप है जिसको स्वतन्त्र-विधान में प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को है । शुक्ल जी ने अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं को विकसित बनाकर ऐसे स्थान पर उपस्थापित किया है, जहां से भावी साहित्यालोचन को भी विकास मिला है ।

आचार्य शुक्ल का साहित्यालोचन के क्षेत्र में प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है । उनके पूर्व प्राचीन भारतीय-साहित्य शास्त्र को नवीन दृष्टिकोण

से मूल्यांकित करने का कोई गण्यमान प्रयत्न नहीं हुआ था । संस्कृत साहित्य में रस, अलंकार, ध्वनि आदि को लेकर जो कुछ लिखा गया था, उसका शास्त्रीय आधार अवश्य था, किन्तु उसे नवीन- 'मनोवैज्ञानिक दीप्ति' नहीं मिल सकी थी ।[१] रीतिकाल में जो कुछ लक्षण-ग्रन्थ लिखे गये थे, वे अधिकांशत: उनकी उद्धरणी मात्र ही बने रहे और उनमें भी अनेक स्थलों पर एकांगी तथा अपूर्ण मीमांसा का ही प्रादुर्भाव हुआ । भारतेन्दु-काल में साहित्य रचयिताओं का प्रमुख ध्यान रचनात्मक साहित्य के उद्भावन की ही ओर रहा । द्विवेदी काल केवल नैतिकता और सुरुचिपूर्ण आदर्श तक ही परिसीमित रह गया और उसे प्राचीन रीति काव्य-शास्त्र में श्रेयस्कर और ग्राह्य तत्वों की उपलब्धि नहीं हुई । इस प्रकार साहित्यालोचन के क्षेत्र में बनी हुई एकांगिता को दूर कर व्यापक दृष्टि के अनुरूप कार्य करने की प्रबल आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति के लिए प्राचीन और नवीन साहित्य का निष्पक्ष विवेचन सर्वतोभावेन वांछनीय था । शुक्ल जी ने इन समस्त बातों का सम्यक् चिन्तन और गम्भीर मनन किया और वे प्राचीन साहित्य-शास्त्र को नवीन आलोक में देख सके । उन्होंने रसवाद की मीमांसा भारतीय और पश्चिमी विचारधारा का सम्यक् सामंजस्य करते हुए की और वे अलंकारवाद की रूढ़िग्रस्तता को दूर कर उसे जीवन-सौन्दर्य का पर्याय बनाकर गृहण कर सके । उनकी यह उच्च काव्य-भावना का ही परिणाम था कि वे समालोचना के क्षेत्र में एक नवीन रूप और प्रकार उद्भावित कर सके और उनकी विचारधारा का एक निश्चित मानदण्ड बन सका । यह बात अवश्य है कि उनकी मान्यताओं में अनेक स्थलों पर वैयक्तिक रुचि-वैचित्र्य का प्राधान्य होने से भी नहीं बच सका, जिसके कारण, वे अनेक स्थलों पर एकांगी निर्णय ही दे पाये । उदाहरणार्थ उन्होंने कथात्मक साहित्य या प्रबन्ध-रचना

----

१. पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आचार्य शुक्ल का काव्यालोचन', पृष्ठ ५६ ।

को मुक्तक-काव्य की समता में श्रेष्ठतर माना और निर्गुण-सगुण के विवेचन में वे सगुणवादी धारा की ओर ही अधिक झुके । इसी प्रकार उनके मानस में तुलसी के प्रति इतना अधिक श्रद्धाभाव समाहित था कि वे मुख्यत: उन्हीं की काव्य-रचनाओं को अपनी समालोचना की सैद्धान्तिकता का आधार बनाकर चले और केशव को हृदयहीन तथा कबीर को मूर्खपन्थी तक कहने में भी उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ । रहस्यवाद और छायावाद के प्रति उनके मन में एक ऐसी आक्रोश-भावना सी प्रविष्ट हो गई थी जिसके कारण वे उसके काव्यगत प्रयोग को विदेशी तथा अग्राह्य ही समझते रहे और उसका विवादग्रस्त स्वरूप उन्हें महत्वहीन सा लगा । क्रोचे का अभिव्यंजनावाद तो उन्हें भारतीय वक्रोक्तिवाद के विलायती उत्थान से अधिक वैशिष्ट्यपूर्ण नहीं प्रतीत हुआ । इसी प्रकार कलावाद, कल्पनावाद और स्वच्छन्दतावाद भी उनके मस्तिष्क में उनकी निजी धारणा के अनुसार ही आकार ग्रहण कर सके । उन्हें डी० एल० राय की रचनाओं में विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ की कृतियों की अपेक्षा जो उच्च भाव-संवेदन मिला उसके मूल में भी उनकी वैयक्तिक रुचि का प्राधान्य है । अभिप्राय यह है कि शुक्ल जी की अपनी निजी विचारधाराएं तथा सीमाएं थीं और वे प्रत्येक विषय को उन्हीं के अनुरूप ही ग्रहण करते थे । इसे एक दृष्टि से उनकी मान्यता सम्बन्धी संकीर्ण परिधि भी कहा जा सकता है तो दूसरी ओर उनके समुन्नत व्यक्तित्व का मूर्तिमान निदर्शन भी माना जा सकता है । इसका एक दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि शुक्लजी की ये मान्यताएं अपने वैयक्तिक अवरोध में ग्रस्त होने पर भी भविष्य में विकास की वे रक्तशिराएं हैं, जिनसे समालोचना साहित्य आगे बढ़ने का इंगित पा सका है ।

मर्यादित भावना और युग-प्रभाव —

आचार्य शुक्ल की आलोचनाओं का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी

है कि उन्होंने अपनी काव्य-समीक्षा में बड़े समारोह के साथ सामाजिक सम्पर्क का आह्वान किया।[१] वे सर्वत्र लोकजीवन की पृष्ठभूमि के परिवेश में ही अपना समीक्षण-कार्य करते चले हैं और उनका विवेचन जीवन-जगत् की प्रत्यक्ष अनुभूति के ठोस आधार पर स्थित है। अपने युग के सशक्त समालोचक होने पर भी आधुनिक साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों के साथ अधिक तादात्म्य नहीं कर सके थे। यही कारण है कि वे नव्यतर काव्य के प्रशंसक बहुत कम बन सके। एक प्रकार से उनकी जीवन-संवेदना नवीन वादों और शैलियों के प्रति कुंठित सी रही। वे यूरोप के साहित्य-क्षेत्र में प्रचलित तथा अन्यान्य साहित्यों पर अपना प्रभाव अंकित करने वाले वादों का समुचित समर्थन नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ कि उनका साहित्य-विवेचन यथेष्ट रूप में मध्ययुगीन विचारधारा की क्रोड में ही सीमाबद्ध हो गया। उन्होंने तुलसी के मानस को अपना आप्त-वाक्य बनाकर जिस लोक-धर्म के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, वह भारतीय वर्णाश्रम-धर्म से ही अनुस्यूत था और उसमें मध्य वर्ग की वे आदर्शात्मक प्रेरणाएं थीं, जिनका प्रस्फुटन बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि शुक्ल जी का दृष्टिकोण मानस में निरूपित हिन्दू-समाज पद्धति और आदर्शवाद का ही परिणाम है जिसे उन्होंने सार्वदेशिक व्यवस्था का स्वरूप देने का यथासाध्य प्रयास किया है।[२]

---

१. पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, आचार्य शुक्ल का काव्यालोचन, पृष्ठ ६१

२. वही, वही पृष्ठ ६०-६२।

शुक्लयुग के प्रमुख समालोचक —

डा० गुलाबराय :-

गुलाबराय जी आधुनिक हिन्दी समालोचना के शुक्ल-युग की उपज हैं किन्तु अपने दृष्टिकोण में विशेष उदार भी हैं। उनकी समालोचना का सैद्धान्तिक पक्ष मुख्यत: साहित्य के स्वरूप-विवेचन से सम्बन्धित है जिसमें दृश्य काव्य और श्रव्यकाव्य की विभिन्न विधाओं का विश्लेषण हुआ है। `काव्य के रूप` की अपेक्षा `सिद्धान्त और अध्ययन` में उनका विवेचन अधिक गम्भीर है, क्योंकि उसमें उन्होंने केवल काव्य की विधाओं पर ही सर्वमान्य सैद्धान्तिक निरूपण ही नहीं किया है, अपितु प्रसंगानुसार अपनी मान्यताओं का एक दृष्टिकोण भी प्रकट किया है। `काव्य के रूप` को उनके `सिद्धान्त और अध्ययन` का पूर्वार्द्ध भी कहा जा सकता है। उनकी समालोचना प्रणाली में यथाप्रसंग शास्त्रीयता प्रभावाभिव्यंजकता, व्याख्यात्मकता और ऐतिहासिकता का प्रयोग भी है, जिसके द्वारा वे समालोच्य विषय की गहराई में जाने के लिए सदैव सचेष्ट रहे हैं। उनकी समालोचना-प्रणालियों में एकांगिता अथवा रूढ़ि-ग्रस्तता तो कहीं पर भी देखने को नहीं मिलती। उन्होंने ज्ञान-चेतना का यथा-सम्भव प्रयोग अपनी सभी प्रकार की समालोचनाओं में किया है। वे शुक्लोत्तर युग में विशेषरूप से प्रचलित समाजशास्त्रीय और मनोविश्लेषणवादी समालोचना पद्धतियों के भी निन्दक नहीं हैं, किन्तु उनकी सीमाओं से भी अनभिज्ञ नहीं है।

बाबूजी ने अपना समालोचक व्यक्तित्व बहुत अधिक अंशों में शुक्ल-युग की मनोवृत्तियों से निर्मित करते हुए भी उनमें यथासम्भव व्यापक ग्रहण का क्षेत्र रखा है। यही कारण है कि वे शुक्ल जी की भाँति केवल प्रबन्ध-काव्य, सगुणवाद और लोकपक्ष के एकांगी दृष्टिकोण तक ही अपने को सीमित न

रखकर मुक्तक काव्य-परम्परा, निर्गुण-भक्ति तथा काव्य की आध्यात्मिक स्थिति की भी प्रशंसा कर सके हैं ।

२- पं० रामकृष्णशुक्ल `शिलीमुख` :-

`शिलीमुख` जी की प्रशंसा पं० रामचन्द्रशुक्ल ने अपने इतिहास में की है । अपनी प्रारम्भिक कृतियों के रूप में शिलीमुख जी जिस प्रकार की समालोचकदृष्टि लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे, उसका यदि उनकी लेखनी द्वारा क्रमिक विकास किया जाता तो वे साहित्य-जगत तथा समालोचना-क्षेत्र में और भी उच्च स्थान के अधिकारी हो सकते थे[१] ।

शिलीमुख जी की समालोचनाओं में सिद्धान्तपक्ष और प्रयोगपक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है । वे किसी भी आलोच्य कृति के गुण-दोष का निरूपण करने के पूर्व उसके उपयुक्त एक प्रतिमान प्रस्तुत कर लेते हैं जिसके आधार पर विवेचित कृति का समीक्षण अधिक स्पष्ट रीति से हो जाता है[२] । उदाहरणार्थ-उन्होंने गोपालशरण सिंह की `माधवी` की समालोचना करने के पूर्व काव्य की `सद्यः पर निर्वृत्ति` और `सद्योनिर्वृत्ति` नामक दो श्रेणियां बनाकर माधवी में प्रथम श्रेणी के काव्य की प्रधानता मानी है और उसे चमत्कारी काव्यदृष्टि और प्रतिभा, भाव-चित्रण और रस-व्यंजना, अलंकारविधान और भाषा-सौष्ठव, शव्दार्थ-माधुर्य और कवि-कल्पना आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से अत्यन्त सारग्राहिणी प्रवृत्ति में हुआ है,जिससे `माधवी` के गुण-विवेचन के साथ-साथ समालोचना की अनेक सैद्धान्तिक चर्चाओं का बोध हो जाता है ।

---

१. पं० रामचन्द्रशुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवां संस्करण, पृष्ठ ४७३ ।

२. सरस्वती पत्रिका, भाग ३१, संख्या ४

शिलीमुख के समीक्षात्मक निबन्धों का प्रचुर अंश हिन्दी के वर्तमान-साहित्य के अन्तर्गत प्रेमचन्द साहित्य की विवेचना को ही उद्देश्यगत रखकर निर्मित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिलीमुख जी का प्रेमचन्द जी के प्रति उदार दृष्टिकोण न था और वे उन्हें प्रचारात्मक साहित्य-स्रष्टा से अधिक महत्त्व नहीं देते।

३- पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र :-

विश्वनाथ प्रसाद जी की समालोचनाओं का अधिकांश क्षेत्र मध्ययुगीन हिन्दी काव्य का मूल्यांकन रहा है। भूषण, बिहारी, केशव, पद्माकर, रसखान, भिखारीदास और घनानन्द उनके प्रिय कवि हैं। मिश्र जी किसी भी कृति का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए संस्कृत-साहित्य शास्त्र में निर्धारित प्रतिमानों को अधिक उपयुक्त समझते हैं और उन्हें पाश्चात्य पद्धति के कला-विवेचन तथा सौन्दर्य-विधान में किसी भी प्रकार का समीचीन विधान नहीं मिलता। अपनी समालोचना के मानदण्ड के आधार उन्होंने भाव, भाषा, अलंकार, छन्द, रस, ध्वनि, गुण और दोष आदि ही रखे हैं।

४- श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' :-

सुधांशु जी आधुनिक हिन्दी समालोचना के विकास-काल के ऐसे सैद्धान्तिक समालोचक हैं जिनकी विचारधारा पर भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का सन्तुलित प्रभाव पड़ा है। उनकी समीक्षा-जगत् में प्रतिष्ठा का प्रारम्भिक कारण उनकी 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' शीर्षक कृति है। जिसमें उन्होंने इटली के क्रोचे के सौन्दर्य-सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कर उनका भारतीय सिद्धान्तों के साथ विनियोग प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यद्यपि इनकी प्रस्तुत पुस्तक में क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का

सर्वांगीण विवेचन नहीं हो सका है, फिर भी सहजानुभूति तथा रसानुभूति के तत्व और अभिव्यंजना एवं कला-विषयक निरूपण क्रोचे की प्रमुख मान्यताओं का उद्घाटन अवश्य हो गया है। सुधांशु जी अभिव्यक्ति और मानव-प्रकृति का अटूट सम्बन्ध मानते हैं क्योंकि सृष्टि का सारा प्रसार मुख्यतया इन्हीं से सम्बन्धित होकर चला है। उन्होंने प्रकृत सत्य और काव्यगत सत्य का अन्तर स्पष्ट कर अरस्तू के अनुकरणवाद, ब्रैडले के कलावाद, रिचर्ड्स के मनोवैज्ञानिक उपयोगितावाद तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के एतद्विषयक विचारों का सामान्य विश्लेषण कर अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद का अन्तर स्पष्ट किया है।

४- श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी :-

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी अब भी यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट समालोचनाएं लिखते रहते हैं किन्तु अपनी मान्यताओं में वे समालोचना के संवर्धनयुग और विकासकाल की मध्यवर्ती स्थिति अधिक निकट है। उनके समालोचना-क्षेत्र में पदार्पण करने के समय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था, किन्तु शनैः शनैः शुक्ल जी तथा छायावादी कवियों की विचारधाराओं का महत्व भी स्थापित होने लगा था।

बख्शी जी ने कई वर्षों तक 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन भी किया है अतः उनके सम्पादक व्यक्तित्व के आगे उनका समालोचक व्यक्तित्व दब भी गया है। सम्पादन-कार्य से उन्हें यह लाभ अवश्य हुआ कि वे सम-सामयिक परिस्थितियों से बराबर परिचित रहे और उन्हें साहित्य क्षेत्र में समीक्षित करने की ओर भी ध्यान दे सके। यद्यपि उनके मानस में भारत के स्वर्णिम अतीत के प्रति विशेष मोह रहा है, फिर भी वे पाश्चात्य साहित्य की गरिमा को बराबर स्वीकार करते हुए चले हैं। अपने दृष्टिकोण की

उदारतावश ही उन्होंने उस युग की मान्यताओं से आगे बढ़कर छायावादी कवियों को यथोचित अभ्यर्थना की है । सन् १९३० के आस-पास उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के जो सम्पादकीय लेख लिखे हैं, उनमें अभिव्यक्त विचार-धारा से वे आज भी अधिक विकासोन्मुख नहीं हैं । 'विश्व-साहित्य' के अतिरिक्त 'प्रबन्धपारिजात', साहित्य-शिक्षा, 'हिन्दी-कथा-साहित्य', पंचपात्र', 'कुछ', 'प्रदीप' 'और कुछ' आदि उनके साहित्यिक निबन्धों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनसे उनकी समालोचना-शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है । बख्शी जी की समीक्षा-साहित्य को कोई विशेष मौलिक देन नहीं है, किन्तु द्विवेदी युग के अवसान और शुक्ल युग के प्रारम्भ में जो समालोचक अपना स्थान बना रहे थे, उनकी समता में इनका भी महत्त्व है ।

६- डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल :-

डा० बड़थ्वाल ने 'हिन्दी काव्य की निर्गुण भक्ति-धारा' पर अपना गवेषणात्मक प्रबन्ध अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत कर हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से डी० लिट् की उपाधि सन् १९३३ में प्राप्त की । उसके पश्चात् भी उन्होंने अनेक आलोचनात्मक और शोधपूर्ण निबन्ध लिखे जो उनके पुराने कागज-पत्रों के बीच अस्त-व्यस्त रूप में पड़े हुए थे । डा० भगीरथ मिश्र ने उस बिखरी हुई सामग्री का संग्रह 'मकरन्द' नामक निबन्ध संकलन में किया है । जिसमें छोटे-बड़े सब मिलाकर तेईस लेख हैं ।

७- डा० रामकुमार वर्मा :-

डा० रामकुमार वर्मा आजकल हिन्दी एकांकीकारों की श्रेणी में अपना अग्रगण्य स्थान रखते हैं, किन्तु इनका कवि और समालोचक का व्यक्तित्व

भी अपने ढंग का अनुपम है । वर्मा जी का साहित्य-क्षेत्र में सर्वप्रथम आगमन रहस्यवादी कवि के रूप में हुआ था, किन्तु शनैः शनैः वे विश्वविद्यालयी अध्ययन-अध्यापन द्वारा समालोचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने लगे । 'साहित्य-समालोचना' उनकी प्रारम्भिक समीक्षा-कृति है जिसमें उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास और समालोचना आदि विभिन्न साहित्यांगों पर सैद्धान्तिक विश्लेषण किया है । उनके विश्लेषण पर पाश्चात्य समालोचना-पद्धति का अधिक प्रभाव है और उनकी यह पुस्तक भी एक प्रकार से विश्वविद्यालयों के स्नातकों के लिए ही लिखी प्रतीत होती है । इसमें गम्भीर गवेषण के स्थान पर साहित्य के सामान्य सिद्धान्तों का ही सुबोध विश्लेषण हुआ है ।

अन्यान्य समालोचक :-

विकास-काल के अन्य समालोचकों में डा० केसरीनारायण शुक्ल, डा० कन्हैयालाल सहल, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री कृष्णशंकर शुक्ल, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० श्रीकृष्णलाल, श्री गणेशशंकर द्विवेदी, पं० चन्द्रबली पाण्डेय, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डा० दीनदयाल गुप्त, पं० परशुराम चतुर्वेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० भगीरथ मिश्र, श्री प्रभुदयाल मित्तल, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० सोमनाथ गुप्त, डा० देवराज उपाध्याय, श्री राहुल सांकृत्यायन, डा० रामरतन भटनागर, पं० रामदहिन मिश्र, डा० सत्येन्द्र, पं० गिरजादत्त शुक्ल आदि प्रमुख हैं । जहां तक ऐतिहासिक और विवेचनात्मक प्रणाली से समालोच्य विषय का तथ्यपरक विश्लेषण करने का क्षेत्र है, इन विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

समालोचना का प्रासार काल (शुक्लोत्तर युग)

आधुनिक हिन्दी-समालोचना के विकास-काल के रूप में शुक्ल-युग ने साहित्य-समीक्षण की परम्परा को बहुत आगे बढ़ाया और उसे विवेचन की एक नूतन दृष्टि प्रदान की, किन्तु कालान्तर में उसमें भी शास्त्रीयता और परम्परावादिता के तत्व-कण सन्निहित होने लगे। शुक्ल-युग में जिन प्रतिमानों को आधार बनाकर समीक्षण-कार्य हुआ, वह स्वच्छन्दवादिता की ओर एक ललक रखता हुआ भी अपनी मर्यादा, नैतिकता और आदर्शनिष्ठा के कारण आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सका। यही कारण था कि शुक्ल-युग ने जहाँ तुलसी जैसे मध्यकालीन भक्त-कवियों द्वारा निरूपित वर्णाश्रम-व्यवस्था और नीति मर्यादा की प्रशंसा की, वहाँ वह उन्हीं के युग में होने वाले कबीर और केशव जैसे अन्य कवियों को केवल उच्छृंखल प्रवृत्ति तथा हृदयहीनता से अधिक महत्व नहीं दे सका। इस युग ने गोस्वामी तुलसीदास जी को जिन मूलभूत आधारों पर हिन्दी-काव्य का चूड़ामणि सिद्ध किया था, उसके मूल में भी उनकी अन्तश्चेतना का कम योग नहीं था। शुक्ल जी के समकालीन धरातल पर प्रसारित होने वाले तथा अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को लेकर चलने वाले काव्य-साहित्य ने शुक्ल-युग के प्रतिमानों को अपने लिए अग्राह्य समझा, जिसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हिन्दी समालोचना जगत् में व्यष्टि और समष्टि तथा वस्तुपरकता और आत्मपरकता को लेकर एक संघर्ष सा उपस्थित हो गया। शुक्ल-युग ने अपनी समालोचनागत मान्यताओं में यदि समष्टिपरक वस्तुन्मुखी विचारधारा को प्रधानता दी थी, तो उसके परवर्ती शुक्लोत्तरयुग ने व्यष्टिप्रधान आत्माभि-व्यक्ति की मान्यताओं को भी प्रश्रय प्रदान किया।

समालोचकों का साहित्य-क्षेत्र में आगमन द्विवेदीयुग तथा शुक्ल-युग में ही हो गया था, किन्तु उन युगों में इनके व्यक्तित्व का ऐसा निर्माण नहीं हो सका जो प्रौढ़ तथा स्थायी कहा जा सके। द्विवेदी-युग में तो इन समालोचकों

ने कलम पकड़नी सीखी थी और शुक्ल-युग में वे प० रामचन्द्र शुक्ल की प्रखर प्रतिभा के आगे हतप्रभ थे, अत: वे समालोचन-साहित्य को उस समय ऐसी उपलब्धि प्रदान नहीं कर सके जो साहित्य के मूल्यांकन का महत्वपूर्ण प्रतिमान बन सकने में असमर्थ हो । इन समालोचकों में स्वच्छन्दवादिता की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही रही, किन्तु प्रारम्भिक वर्षों में वह स्वतन्त्र चेतना के प्रौढ़ निर्माण का स्वरूप नहीं ग्रहण कर सकी । शनै: शनै: देश के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों ने उसे अपनी नवीन दिशा में ही विकासोन्मुख बनने की प्रेरणा दी, जिसको परिपुष्ट बनाने में तत्कालीन रचनात्मक साहित्य भी सहयोगी बना । इन समालोचकों ने केवल भारतीय-साहित्य शास्त्र की सैद्धान्तिक परम्परा को ही पूर्ण नहीं माना, अपितु ये पाश्चात्य साहित्यालोचन की ओर भी महती जिज्ञासा से अनुधायित हुए । इन समालोचकों ने अधिकतर साहित्यालोचन की निबन्ध-प्रणाली में ही अपनी समीक्षाएं प्रस्तुत की थीं, अत: उनमें शुक्लोत्तर-युग की विभिन्न आस्थाओं का यथाक्रम आभास मिला ।

प्रसार-काल की समालोचनाओं का मूल प्रेरक भी काव्य-साहित्य ही रहा है, जिसका उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों पर यथेष्ट प्रभाव है । यद्यपि नाटक, उपन्यास और कहानियों पर भी इस युग में सैद्धान्तिक निरूपण हुआ है, किन्तु प्राधान्य काव्य-साहित्य का ही है । एक प्रकार से इस युग की समालोचनात्मक मान्यताओं और शिल्प-प्रणालियों का निर्माण भी काव्य-साहित्य के माध्यम से ही हुआ ।

छायावादी कवि समीक्षक और उनकी समालोचनाएं :

१- प्रसाद :-

प्रसाद जी के द्वारा साहित्य-दर्शन को द्विवेदी-युग से अधिक

व्यापक और गम्भीर दृष्टि मिली है। काव्य और अध्यात्म को समकक्ष निर्दिष्ट कर उन्होंने आनन्द और विवेकवादी दृष्टिकोण से समीक्षण का जो प्रतिमान निर्धारित किया है वह अभूतपूर्व है। इसी प्रकार उनके द्वारा प्रयुक्त अभिव्यंजन शैली, शास्त्रीय शव्दयोजना तथा पाण्डित्य-पद्धति उनकी तथ्य-ग्राहिणी मेधा-शक्ति की परिचायक है। उनके समान साहित्य और दर्शन का स्वस्थ समन्वय करने वाले समालोचक हिन्दी में बहुत कम हुए हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने कुछ ही लेखों में ज्ञानराशि की जो प्रभूत सामग्री शोधकर प्रस्तुत की है वह परिमाण में कम होने पर भी गुण-गरिमा में अप्रतिम है। प्रसाद जी ने आज से प्राय: २४ वर्ष पूर्व जिस समय अपने इन समालोचनात्मक निबन्धों की रचना की, हिन्दी समालोचना में या तो केवल पश्चिमी विचारों की उद्धरणी हो रही थी या पुरातनता का पल्ला कस कर पकड़ा हुआ था। उस समय दोनों प्रकार की विचारधाराओं में समन्वय लाने की सफल चेष्टाएं बहुत कम हुई थीं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद जी इस प्रकार का सर्वाङ्गीण समन्वय ला सके, फिर भी उन्होंने भारतीय वाङ्मय को केवल रूढ़िग्रस्त रखना अनुचित समझकर उसे व्यापक धरातल पर अवश्य ही उपस्थित किया। उनकी समीक्षाएं ऐसे अनेक साहित्यिक प्रवादों का खण्डन करती हैं जो उस समय सुधी समालोचकों द्वारा कई बार तो अपनी हठधर्मी का पालन करते हुए फैला दिये गये थे।

२- पन्त :-

पन्त जी उत्तर-द्विवेदी काल के कवि हैं, अत: उन्होंने अपनी समालोचनाओं में मुख्यत: अपनी युग-आस्थाओं को ही वाणी प्रदान की है। वे छायावादी युग के कवियों पर द्विवेदी-युग के कवियों के काव्य-सौष्ठव का कोई प्रभाव स्वीकृत नहीं करते और न उनसे भावना तथा काव्य-निर्माण के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की सृजन-प्रेरणा ही पाते हैं। उन्होंने छायावादी

हैं जिन पर भारतीय दर्शन, गान्धीवाद और अरविन्द के भागवत-जीवन का यथेष्ट प्रभाव है। उनके इस प्रकार के दृष्टिकोण-निर्माण में पाश्चात्य दर्शन और विचारधाराओं ने भी प्रसूत साहाय्य प्रदान किया है। यद्यपि उनका प्रमुख क्षेत्र कारयित्री प्रतिभा द्वारा काव्य-सृजन करना ही रहा, किन्तु समय-समय पर उनके समालोचकों ने उनके काव्यगत विचारपक्ष को लेकर जो कटु आलोचना की उनका प्रतिवाद उन्होंने अत्यन्त संयत और विवेकपूर्ण विधान में किया है। उनके काव्य-समीक्षण में तुलनात्मक प्रवृत्ति का भी समावेश है और वे कई स्थलों पर भाव-विभोर बनकर विवेच्य विषय में आत्मसात् भी हो गये हैं। भाषा-शैली और अभिव्यंजना-प्रणाली पर पन्त जी को इतना अधिक अधिकार है कि वे अपनी अनुभूतियों को सर्वत्र सन्तुलित रखकर उन्हें अपनी सक्षमता में पूर्णकौशल के साथ शब्दों में बांध देते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों के समान अन्य छायावादी कवियों की भी समीक्षाओं की भी समालोचना समय-समय पर की गई। छायावादी कवियों के अतिरिक्त तुलसीदास, केशव, बिहारी आदि भक्तिकालीन कवियों की समीक्षा तथा समालोचनायें दृष्टिगोचर इस युग में होती हैं।

सरस्वती पत्रिका के प्रारम्भिक काल से ही निबन्ध एवं समालोचनायें प्रकाशित होती रही हैं। १९०० से लेकर १९८० तक सरस्वती पत्रिका प्रकाशित हुई उसमें निबन्ध, तथा समालोचना साहित्य से सम्बन्धित लेखकों में कुछ उदाहरण निम्न हैं :—

बाबूराधाकृष्णदास का 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'[१] इतिवृत्तात्मक शैली में लिखित यह वस्तुनिष्ठ निबन्ध भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सम्यक् प्रकाश डालता है। भारतेन्दु के जीवनकाल एवं उनके जीवन की विशिष्ट घटनाओं ने भारतेन्दु की रचनाधर्मिता को किस प्रकार प्रभावित किया इसका अत्यन्त सावधानीपूर्वक विश्लेषण अत्यन्त सुष्ठु तथा परिमार्जित भाषा-शैली में लेखक ने अंकित किया है। इस निबन्ध में भारतेन्दु के राष्ट्र-प्रेम, मातृभाषा प्रेम, ईश्वरप्रेम तथा वैयक्तिक स्तर पर अभिव्यक्त उनके निजी प्रेम की भी झांकी मिलती है। भारतेन्दु प्रणीत साहित्य पर इस लेख में आधिकारिक रूप से टिप्पणियां की गई हैं। भाषा में विदेशी शब्दों का डिस्लायल आदि का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है। 'लस्टम-फस्टम' जैसे चलताऊ शब्दों का प्रयोग भाषा को प्रवाहमय बनाने तथा जनजीवन के निकट लाने में समर्थ है।

कार्तिकप्रसाद खत्री का निबन्ध 'दामोदरराव की आत्म-कहानी'[२] ऐतिहासिक अभिरुचि से सम्पन्न तथा राष्ट्रप्रेम की भावना से युक्त इस लेख में वर्णनात्मक वस्तुनिष्ठ निबन्ध में इतिहास-विश्रुत रानी लक्ष्मीबाई के दत्तकपुत्र दामोदरराव की जीवन-घटनाओं का सामाजिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में चित्रांकित किया है। यह लेख लेखनायक दामोदरराव

---

१. सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक (१९०० ई०) पृ० ४४१

२. वही, १९०० ई०, पृ० ४४७

की जबानी अर्थात् उत्तमपुरुष विधा में अभिवर्णित है । अंग्रेजी दमनचक्र उनकी भारतविरोधिनी विचारधारा तथा भारतीय सामन्तों में व्याप्त पारस्परिक वैमनस्य का यह एक दस्तावेज है । लेख के उपसंहारक अनुच्छेद की यह पंक्तियां अत्यन्त व्यंग्यमयी हैं --"रेसीडेन्ट साहब ने बड़े लाट साहेब को लिख पढ़ मेरे लिए १५०) की वृत्ति स्थिर की । मैं बालक ही था, दूसरा ऐसा कोई चतुर मनुष्य मेरे पास न था जो मेरा ही के कुछ आचोलन करता ।" भाषा भावानुकूल तथा आवश्यकतानुरूप विदेशी शब्दों से युक्त प्रवाहमयी शैली में लिखित है ।

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'महाकविभारवि'[१] यह निबन्ध महाकविभारवि के जीवन एवं उनके कृतित्व पर प्रकाश डालने वाला वस्तुनिष्ठ लेख है । कवि की विचारसरणि, उसका अर्थ गाम्भीर्य तथा काव्य-सौष्ठव तीनों ही अपनी चरम उदात्तता के साथ भारतीय संस्कृति का प्रत्याख्यान करता है इसका संस्कृतनिष्ठ शैली में निरूपण ही इस लेख का प्रतिपाद्य है । लेखक ने उपसंहारक अनुच्छेद में भारवि के प्रति अपनी-अपनी श्रद्धा तथा हिन्दी पाठकों के प्रति सदाशयता निम्नशब्दों में व्यक्त की है --"उक्त कवि के काव्य के आलोचनार्थ हमारे हिन्दी भाषा के पाठकों को अधिक परिश्रम देना युक्तियुक्त न समझ के । x x । हमारे प्राचीन स्वर्गीय महाकवि-रत्न-आकर, जिनकी अप्रतिम रत्न प्रसूता लेखनी से प्रादुर्भूत अखण्ड कीर्ति अद्यापि असमुद्रान्त व्यापिनी है । x x ।"

पं० श्यामबिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र का 'पं० श्रीधर पाठक की कविता' विवेचनात्मक शैली में लिखित यह लेख पं० श्रीधरपाठक की खड़ी बोली की कविताओं की विषयवस्तु एवं शिल्प तथा कथानक का

----

१. सरस्वती, पृ० सं० ४५२

२. वही , पृ० सं० ४५५

यथार्थ तथा बेबाक वर्णन करता है । `मनोविनोद`, `एकान्तवासी योगी`, तथा ऊजड़ग्राम` नामक काव्य संग्रहों में कवि ने अंग्रेजी से अपरिचित हिन्दी रसिकों को योरोपीय काव्य की छटा का अनुभव करने का अति सराहनीय श्रम किया है । श्रीधर की कविता के सन्दर्भ में लेखक द्वय का कथन उल्लेखनीय है कि सम्बन्धातिशयोक्तिपूर्ण तथा असम्भाव्य बातों से उनका (पाठकों का) ध्यान हटाकर उन्हें वास्तविक पदार्थों मनुष्य के हृदयान्तरिक भावों और प्राकृतिक सुघराइयों के वर्णनों का आदर देना सिखलाया है । श्रीधर पाठक की कविताओं के गुण-दोष का सम्यक् तथा निष्पक्ष विवेचन करने वाला यह लेख स्वस्थ आलोचना की बानगी है ।

बाबू श्यामसुन्दरदास का `शमशुल-उल्मा मौलवी सैयद अली बिलग्रामी`[1] विश्लेषणपरक यह लेख वस्तुत: अत्यन्त प्रवाहपूर्ण शैली में भावानुकूल शब्दों के प्रयोग से सुसज्जित है । इस लेख में विद्वान लेखक ने बिलग्रामी महोदय के भाषा-वैज्ञानिक ज्ञान तथा उर्दूभाषा की प्रचलित लिपि विशेष में लिखे जाने का विरोध किया है । यत्र-तत्र सामयिक तथा सामाजिक विद्रूपों तथा विसंगतियों पर व्यंग्य करते हुए लेखक ने मौलवी साहब की भाषाविषयक सूझ-बूझ की सराहना की है । उर्दू की पढ़ाई की दुष्करता का कारण निरूपित करते हुए लेखक ने बिलग्रामी महोदय के उस विचार को मान्य ठहराया है कि `मुसलमानों में विद्या के अधिक प्रचार न होने का यही कारण है कि उनकी उर्दू भाषा, जिसकी उत्पत्ति आर्य भाषाओं से हुई है, अनार्य अक्षरों में लिखी जाती है ।

राजा कमलानन्द सिंह का `आलोचक और आलोचना`[2]

---

१. सरस्वती, हीरक जयन्ती विशेषांक, १६०० ई० पृ० सं० ४६१

२. सरस्वती, १६०१ ई० पृ० सं० ४६३

तर्कपूर्ण विषयनिष्ठ निबन्ध है। भाषा विवेचनपरक तथा विश्लेषणात्मक सूझ-बूझ से परिपूर्ण है। विषय की विवेचना लेखक ने यत्र-तत्र संस्कृत शब्दावली एवं परिभाषाओं से समन्जित करते हुए की है। अनेक विद्वानों की आलोचनापद्धति को आलोचनाशास्त्र के निकष पर कसने के लिए विद्वान लेखक ने उदाहरणों का भी इस लेख में अनायास प्रयोग किया है।

पं० रामनारायण मिश्र का 'चीनी तुर्किस्तान'[१] ऐतिहासिक साक्ष्यों यथा अभिलेख, साहित्यिक वृतान्त, यात्रियों के अनुभव प्रभृति तत्त्वों को एकत्र कर लिखा गया यह निबन्ध 'चीनी-तुर्किस्तान' का जिक्र करता है जोकि कश्मीर से उत्तर-पश्चिम की दिशा में अवस्थित है। डा० स्टाइन तथा डा० हार्नले के पुरातात्त्विक अन्वेषण कौशल का वर्णन करते हुए लेखक ने इस निबन्ध में यत्र-तत्र समाज प्रचलित धोखाधड़ी का भी जिक्र किया है जिसके तहत लोक इतिहास में विसंगति उत्पन्न करते हैं। भाषा में 'रुपये असलिए', 'एक सहल उपाय' तथा 'अबलों' आदि बोल-चाल के शब्द प्रयोग भाषा को सुबोध तथा जनजीवन के निकट ला देते हैं। स्थल-स्थल पर सार्वभौम सत्य की परिचायक उक्तियों का प्रयोग दृष्टव्य है। एक उदाहरण--'पर विचारशील को संसार की कोई कठिनाई उसके उद्देश्य में सफलीभूत होने से रोक नहीं सकती।'

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का 'धन और उसका उपयोग'[२] में विषयनिष्ठ, व्यास-शैली, बोलचाल की भाषा, विश्लेषण-परक भावात्मक सत्ता का उद्बोधन, इस निबन्ध में विद्वान लेखक ने धन

----

१. सरस्वती, १९०९, पृ० ४६६

२. वही ,, पृ० ५०५

की व्यापक परिभाषा दी है । धन का उपयोग मानवीय आवश्यकताओं की संपूर्ति हेतु किया जाना ही युक्तिसंगत है । विचारशक्ति सवर्द्धन, शारीरिक एवं मानसिक आनन्द संप्राप्ति तथा भोजनार्थ धन लगाना औचित्यपूर्ण है । लेखक ने धनोपयोग को धार्मिक या पुण्यपरक विचारों के माध्यम से युक्त नहीं किया है अपितु उन्होंने केवल स्वार्थ या अपने सुख के भाव से ही सम्पृक्त माना है ।

श्रीयुत् कामता प्रसाद गुरु का 'हिन्दी का व्याकरण', हिन्दी भाषा की व्याकरणगत विशेषताओं वैज्ञानिक रीति से वर्णित करने वाला यह लेख उसके गुण-दोष विवेचन के साथ ही साथ हिन्दी भाषा के व्याकरण पर पड़े अन्य भाषा के व्याकरण का भी यत्र-तत्र उल्लेख करता है । भाषा-शैली प्रसादगुण सम्पन्न तथा तार्किक वैशिष्ट्य से युक्त है ।

श्रीयुत् गणेशशंकर विद्यार्थी का 'आत्मोत्सर्ग'[२] मनोविज्ञान से सम्बद्ध इस विषयनिष्ठ निबन्ध में लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं के समावेश एवं निजी विचारों के संगुम्फन से वैयक्तिकता का पुट दिया है । सर्वजन सुलभ व्यावहारिक भाषा-शैली में लिखित यह लेख अपनी इयत्ता को सकारात्मक जीवनमूल्यों के साथ जोड़ता है । आत्मोत्सर्ग एक अत्यन्त पवित्र भावना है और लेखक के अनुसार इसके लिए संसार में खुला मैदान है- 'आत्मोत्सर्ग करने का अवसर प्रत्येक मनुष्य के जीवन में,पल-पल में आया करता है ।' ,, स्वार्थरहित होकर साहस को न छोड़ते हुए कर्त्तव्यपरायण बनने का प्रयत्न कीजिये ।

----

१. सरस्वती १९११ ई० पृ० ५०९

२. ,, ,, पृ० ५१२

बाबू जगन्मोहन वर्मा का 'कुछ धातुओं और शब्दों का इतिहास'[1] संस्कृत उद्धरणों से समन्वित संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं विवेचन प्रधान शैली में लिखित यह निबन्ध संस्कृतभाषायी धातुओं के अर्थविकास में उनकी इतिवृत्तात्मकता पर प्रकाशक्षेपण करते हुए उनके ध्वनिपरक तथा अनुरणनमूलक मूल्यवत्ता का दस्तावेज है। भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त यह विषयनिष्ठ निबन्ध फारसी भाषा एवं अरबी शब्दों का भी संस्कृत धातुओं के सन्दर्भ में सोदाहरण उल्लेख किया है।

पं० प्यारेलाल मिश्र का 'वाटरलू की संग्राम-भूमि'[2] ऐतिहासिक निबन्ध जिसमें १८ जून १८१५ ई० को 'यूरोप के कुरुक्षेत्र' में हुए युद्ध का वर्णन है। 'वाटरलू' के युद्ध में नेपोलियन की पराजय का वर्णन तथा युद्धकाल में घटित दर्दनाक मौतों का हृदयविदारक तथा चित्रोपम वर्णन द्रष्टव्य है। इस निबन्ध में उपशीर्षक 'संग्राम-स्मारक' का जिक्र है। यह स्थान विशेष प्रिंस आफ आरेन्ज (Prince of Orange) का मृत्युस्थल है तथा इस स्मारक का निर्माण युद्ध के सात वर्षोपरान्त हुआ था। लेखक ने इस लेख को यात्रा-विवरण के रूप में प्रस्तुत किया है। अत: यह लेख डायरी प्रणाली शैली का उदाहरण है। भाषा प्रवाहमय शैली में संयोजित है।

श्री मुंशीदेवी प्रसाद का 'ऐतिहासिक बातें'[3] लेख की विषयवस्तु शीर्षकोपयुक्त है। अकबर बादशाह का खजाना, जहांदारशाह की लंका तथा जहांगीर बादशाह की राखी इन तीनों उपशीर्षकों में

---

१. सरस्वती, १९०९ ई०, पृ० ५०५

२. सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक, १९१२ ई०, पृ० ५१७

३ वही पृ० ५२०

नियोजित यह निबन्ध अनेक रोचक तथ्य प्रस्तुत करता है । बादशाह के रोजनामचे से हिन्दू वर्णाश्रमव्यवस्था तथा रीति-रिवाज का परिचय प्राप्त होता है । भाषा बोल-चाल की सुष्ठुशैली में वर्णित है ।

श्री सरदारपूर्णसिंह जी ने 'अमेरिका का मस्त योगी वाल्टह्विटमैन'[१] लेख में अपनी प्रभावपूर्ण लेखनी से सन्तकवि वाल्ट-ह्विटमैन के व्यक्तित्व को उनके शारीरिक आकर्षण, स्वच्छन्द निर्भीकिता, विनयशीलवीरता तथा उपयोगितावादी मानवीय जीवन-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है । यह कवि आनन्द की मस्ती में काव्यात्मक तुकबन्दी को भी बन्धन मानता है तथा काव्यनियमों को हृदयानन्द के लय-ताल का पर्याय । लेख का अन्तिम अनुच्छेद योगी की तरंगमयता तथा मदमस्ती को सूचित करता है --' ‹ ‹ प्रेम पवित्र है, सेवा पवित्र है, अर्पण पवित्र है । लो अब अपने आपको तुम्हारे हवाले करता हूं । कोई भी हो, तुम सारी दुनिया के सामने मेरे हो रहो ।

पं० बालकृष्णभट्ट का 'शब्द की आकर्षण शक्ति संस्कृतनिष्ठ शैली वाले इस निबन्ध में शब्दों की ध्वन्यात्मकता को उसके आकर्षण का कारण बताया गया है । शब्द वस्तुत: सभी सहृदय रसिकों को अपनी सहजशक्ति से आकृष्ट करते हैं । विषयवस्तु प्रधान होते हुए भी यह निबन्ध आत्मनिष्ठ है तथा आत्मनिवेदन शैली का यत्र-तत्र सोदाहरण प्रयोग किया गया है । यत्र-तत्र व्यंग्यपूर्ण शब्दावली से लेख को मर्मस्पर्शिता प्राप्त हुई है ।

---

१. सरस्वती, १९१३ ई० पृ० ५२२

२. वही पृ० ५२४

पं० गंगानाथ झा का `दर्शनशास्त्र से लौकिक लाभ`[1] विद्वतापूर्ण तर्क एवं उद्धरणों का प्रयोग करते हुए यह लेख वस्तुत: दर्शन-शास्त्र को मात्र आध्यात्मोन्मुखता का ही कारण नहीं मानता अपितु उसे सांसारिक एवं लौकिक जीवन में उपादेय निरूपित करता है। दर्शन का सम्बन्ध यद्यपि अप्रत्यक्ष रीति से भावना से है तथा अप्रत्यक्षत: वह सामाजिकता में अपना पर्याप्त दखल रखता है। मनोवृत्तियों को प्रभावित कर वह व्यक्ति विशेष को सामाजिक जीवन में सकारात्मक जीवनमूल्यों से सम्पृक्त करता है। संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा तर्कपूर्ण व्यासशैली का यह उत्तम उदाहरण है।

वेद तीर्थ नरदेव शास्त्री का यह `बाणभट्ट की कादम्बरी`[2] वस्तुनिष्ठ विवेचन एवं विश्लेषण परख लेख है। यह लेख कादम्बरी की साहित्यिक मूल्यवन्ता का पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण से मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। संस्कृतनिष्ठ शैली भावानुकूल भाषा तथा उद्धरणों से युक्त है। बाणभट्ट की कादम्बरी को सहृदय पाठकों का हृदयहार निरूपित करने वाला यह लेख बाणभट्ट के प्रति एक निष्ठ श्रद्धा का उदाहरण है। लेख का समापन विष्णुशास्त्री जी के ~~शब्दों जी के~~ शब्दों से होता है।

श्री (डा०) बेनीप्रसाद (सत्यशोधक) के `उपयोगिकतावाद`[3] (जान स्टुअर्ट मिल के सिद्धान्त) सामाजिक चेतना से अभिभूत

----

१. सरस्वती १९१३, पृ० ५२६

२. वही १९१४ पृ० ५२६

३. वही १९१४ पृ० ५३२

विश्लेषणात्मक इस निबन्ध को अनुसंधित्सुप्रवृत्ति के वशीभूत होकर लिखा गया है। विवेचनात्मक शैली में सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग इस लेख का निजी वैशिष्ट्य है। उपयोगितावाद के सन्दर्भ में प्रारम्भिक बातें, उपयोगिता का अर्थ, उपयोगितावाद का मूलाधार, उपयोगिता तत्व का प्रमाण तथा उपयोगिता और न्याय का सम्बन्ध नामक उप-शीर्षकों में विभक्त यह लेख अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से इस बात का प्रतिपादन करता है। विवादों के घेरे में होने के बावजूद उपयोगितावाद को यूरोप के शिक्षित-समाज ने स्वीकार कर लिया है।

श्री मुनिजिनविजय का 'जैन-शाकटायन व्याकरण कब बना'[१] शोधपरख लेख, संस्कृतनिष्ठ शैली, विवेचन एवं विश्लेषण में तर्कों का वैज्ञानिक संयोजन, विषयवस्तु शीर्षकोपयुक्त बनाने के लिए लेखक ने साहित्यिक, अभिलेखक तथा ऐतिहासिक साक्ष्यों को आधार बनाया है। स्थान-स्थान पर संस्कृत की उक्तियों का समावेश शैली एवं भाषा को गम्भीर तथा संयत बना देता है। शाकटायन व्याकरण का प्रचार श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में अधिमान्य रहा है। लेखक ने मतभेदों के बावजूद यह निष्कर्ष निर्गमित किया है कि शाकटायनाचार्य विक्रम की दूसरी शताब्दी में दिगम्बर सम्प्रदाय में समोद्भूत हुए।

श्री बदरीनारायण उपाध्याय का 'पण्डित बिहारीलाल चौबे'[२] बिहार प्रान्त के हिन्दी-सेवियों में अन्यतम स्थान रखने वाले पण्डित बिहारीलाल चौबे की जीवनी एवं साहित्यिक कृतियों की निष्पक्ष विवेचना करने वाला यह विषय-निष्ठ निबन्ध सामान्य बोलचाल की भाषा में

---

१. सरस्वती १९१५, पृ० ५३६

२. वही १९१५, पृ० ५३८

नियोजित है । पण्डित जी की गद्य-पद्य सर्जक प्रतिभा की यह बेबाक रिपोर्ट है । निबन्ध में प्रसादगुण तथा प्रवाहपूर्ण शैली का समवेत स्वर स्मर्तव्य है ।

श्री हीरानन्द शास्त्री का 'दिनों का नामकरण किसने किया'[१] विवेचनात्मक निबन्ध, वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर अनेक भाषायी दिनों के नामों की तालिका बनाकर लेखक ने चित्र द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि 'जो ग्रह दिन की पहली घड़ी या घण्टे का स्वामी हुआ वही उस दिन का भी स्वामी माना गया ।' ज्योतिषशास्त्र से सम्बद्ध इस लेख में लेखक ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्णरीति से विषय का विवेचन प्रस्तुत किया है । संस्कृत के उद्धरणों से सुसज्जित यह लेख ज्योतिषशास्त्र संबंधी शब्दावली से परिपूर्ण है तथा लेखक की बहुज्ञता का द्योतक है । दिनों के नामकरण के विश्लेषण में लेखक ने नक्षत्रों सम्बन्धित अपेक्षित जानकारियां संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों से उपलब्ध करायी है ।

श्री कन्नोमल के 'भगवद्गीता कब बनी'[२] इस शोधपरख लेख में अनेक विद्वानों के मतों का खण्डन-मंडन करते हुए भगवद्गीता के सूत्रों के आधार पर अन्त:साक्ष्यों को प्रधानता, वरीयता देकर यह निष्कर्ष निकाला कि 'गीता की रचना ईसा के ६०० वर्ष पहले हुई होगी ।' लेख विषय-निष्ठ, अनुसंधित्सु चेतना से समन्वित, सामान्य बोलचाल की भाषा में रचित है ।

श्री सन्तराम के 'किन्नरजाति'[३] सांस्कृतिक विषय चेतना

----

१. सरस्वती १९१५ , पृ० ५४०

२. वही १९१५ , पृ० ५४५

३. वही ,, , पृ० ५४८

का केन्द्रस्थ बनाकर इस विषयनिष्ठ निबन्ध में लेखक ने भौगोलिक अवस्थिति, किन्नर जाति के समाज में प्रचलित सामान्य तथा विशिष्ट रीति-रिवाज, वेश-भूषा, रहन-सहन तथा संस्कारों का पटुतापूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। लेखक ने किन्नरजाति की भाषा के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध मधुरतम क्षणों की स्मृति के रूप में संस्थापित किया है। किन्नरजाति के उपर्युक्त आचरणावली को संस्कृत ग्रन्थों के साथ सम्पृक्त करके लेखक ने उनके औदात्य का दर्शन कराया है। संस्कारों को विशिष्ट किन्नर शब्दावली में अभिप्रस्तुतीकरण लेख को भाषायी दृष्टिकोण से सम्माननीय बना देता है।

श्री राधाचरण गोस्वामी का कविकल्पना[१] वस्तुनिष्ठ निबन्ध होने पर भी यह निबन्ध वैयक्तिकता के भाव से आप्लावित है। भाषा में सामान्य बोलचाल के शब्द तथा संस्कृत तत्सम दोनों प्रकार के शब्दों की झांकी देखी जाती है। कवि एवं कवि-कल्पना का अन्तरतम के भावों तथा प्राकृतिक पर्यावरण से जो प्रेरणास्पद सम्बन्ध है उसकी शाश्वत सत्ता के प्रति लेखक ने अपनी निष्ठा व्यक्त की है।

श्री यशोदानन्दन अखौरी का 'इत्यादि' की आत्मकहानी'[२] यह निबन्ध लेखक की तरंगमयता को बौद्धिक सन्तुष्टि के साथ स्पष्ट करता है। 'शब्दसमाज' में शाब्दिक मूल्यवन्ता का द्योतन करने वाला यह शब्द विभिन्न धर्मानुयायियों तथा मतावलम्बियों को मान्य रहा है। अनपढ़

----

१. सरस्वती १९०३ ई० पृ० ४७२

२. वही १९०४ ई० पृ० ४७३

से लेकर विद्वत्वर्ग तक में इसकी प्रतिष्ठा है । वर्णनात्मक शैली में लिखित यह लेख `इत्यादि` शब्द की महिमा का गुणवान करता है । यों तो लेखक की प्रत्येक पंक्ति ही प्रभावोत्पादक है तथापि अन्तिम अनुच्छेद उद्धरणीय है -- `कहाँ तक कहूँ । मैं मूर्ख को पण्डित बनाता हूं । जिसे युक्ति नहीं सूझती उसे युक्ति सुझाता हूं ।`

श्रीयुत एदविन ग्रीव्स का `कैथी` (प्रतिवाद[1]) यह लेख लेखक के द्वारा अपने द्वारा प्रकाशित पूर्व लेख के बारे में मिथ्याभ्रम के निवारणार्थ लिखा गया स्पष्टीकरण है । इसमें लेखक ने कैथी लिपि के सन्दर्भ में अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण दिया है । लेख की भाषा प्रवाहपूर्ण तथा शैली सामान्य जनबोधमयी है ।

श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का `प्रश्नोत्तर रत्नमाला का कर्ता`[2] विश्लेषणपरक तथा अनुसन्धान प्रवृत्ति से समन्वित यह लेख ३२ श्लोकों वाले उपदेशपरक ग्रन्थ `प्रश्नोत्तर रत्नमाला` के प्रणेता का निगमन करने से सम्बन्धित प्रयास है । भाषा-शैली इतिवृत्तात्मकता से परिपूर्ण है । निष्कर्षत: प्रश्नोत्तरमाला कर्त्ता के रूप में राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम को निर्णीत किया गया है ।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय का `बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय`[3] लेख विषयवस्तु की दृष्टि से बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व पर प्रकाश डालता है । यह लेख बंकिम बाबू की

----

१. सरस्वती १६०५ ई० पृ० ४७५

२ वही १६०६ ई० पृ० ४७६

३. वही १६०७ ई० पृ० ४७८

साहित्यिक कारयित्री प्रतिभा पर प्रकाश डालता है। लेख की भाषा सुबोधमयी तथा शैली प्राञ्जल है। लेखक ने बंकिमबाबू के उपन्यासों का विवेचन करते हुए 'चन्द्रशेखर' तथा 'कपाल-कुण्डला' में उनकी प्रतिभा का अत्यधिक यथार्थपरक उन्मेष दिखलाया है।

लाला हरदयाल के 'पंजाब में हिन्दी के प्रचार की जरूरत'[१] लेख में हिन्दी भाषा के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए पंजाब में उसके प्रचार की अनिवार्यता पर बल दिया है। धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक अवचेतना से आलोड़ित होकर अनेक मनीषियों की साधना भूमि पंजाब में हिन्दुत्व के प्रचार के लिए हिन्दी का अनिवार्य होना अपरिहार्य निरूपित किया गया है। यद्यपि यह लेख भाषागत साम्प्रदायिक चेतना से युक्त कहा जा सकता है। तथापि हृदय की कचोट को किस प्रकार अपने नग्न एवं यथार्थ रूप में वाक्यबद्ध किया जाता है यह इस विषयनिष्ठ लेख में दृष्टव्य है। भाषा-शैली सर्वजन सुलभ है। निजी भाषा की रक्षा लेखक के लिए जाति की अस्मिता का प्रश्न है।

बाबू काशीप्रसाद जयसवाल का 'हमारा संवत् और उसकी रक्षा'[२] इतिवृत्तात्मक शैली एवं भावना से युक्त यह लेख लेखक की अनुसंधित्सु प्रवृत्ति का द्योतक है। लेखक ने संवत् को देश की सभ्यता का मुख्य चिह्न तथा देश-जाति का गौरव स्तम्भ बताया है। लेखक ने ईस्वी सन् का प्रयोग हिन्दुत्व के लिए शर्मनाक बताया है। उन्होंने संवत-प्रचार में पड़ने वाली कठिनाइयों का समाहार भी प्रस्तुत किया

---

१. सरस्वती १९०७ ई० पृ० ४८२

२. वही १९०८ ई० पृ० ४८४

है : — `यदि काम आसान करना हो तो पक्ष का लिखना छोड़ सकते हैं । श्रावण शुक्ल ५ की जगह २० श्रावण लिखने में कोई हर्ज नहीं है ।` लेख की भाषा बोलचाल की है तथा शैली तर्क प्रधान एवं विवरणात्मक है ।

श्रीयुत गोविन्दबल्लभपन्त का `कृषि-सुधार`[१] यह लेख बताता है कि भोजन का प्रश्न मानवीय आवश्यकताओं की मौलिक कड़ी है । कृषि-सुधार का प्रश्न व्यक्ति-व्यक्ति से सम्बद्ध है । वस्तुत: `योग्यतम का अस्तित्व` ही अनेक विचारकों का मान्य जीवन दर्शन रहा है तथा परिश्रम ही योग्यता का अभिवर्द्धक तत्व है । इसके अतिरिक्त कृषि का विकेन्द्रीकरण एवं कृषकों को युक्तियुक्त शिक्षा कृषि-सुधार का अंग है । अत: इनके सन्दर्भ में लेखक ने आंकड़ों से युक्त वैज्ञानिकता से परिपूर्ण विवेचन सरल तथा प्रसादगुण सम्पन्न भाषा-शैली में प्रस्तुत किया है । लेखक ने इस विषयनिष्ठ निबन्ध में यत्र-तत्र वैयक्तिकता का भी पुट दिया है । भारतीय कृषकों की अकर्मण्यता पर जहां-तहां व्यंग्य भी दिखाई पड़ता है ।

पं० रामचन्द्रशुक्ल का `कविता क्या है ?`[२] यह विषयनिष्ठ निबन्ध अत्यन्त कसावटपूर्ण शैली में विरचित है । विद्वान लेखक ने उचित शब्दों का यथास्थान प्रयोग करते हुए कविता के विभिन्न तत्वों का विवेचन किया है तथा सद्य:प्रयूत, अप्रयास सृजित वचनावली को जो सचाई से भरी हो तथा जिसमें ताजगी का सदैव आभास रहे ऐसी मङ्गलविधायिनी

---

१. सरस्वती १९०८ ई० पृ० ४८६

२. वही पृ० ४८६

शक्ति माना है । कविता में बनावटपन कविता के सहज सौन्दर्य को नष्ट कर डालते हैं । यह लेख शास्त्रीय विवेचन से परिपूर्ण है ।

श्रीयुत बाबूराव पराड़कर के 'वररुचि का समय'[१] शोधपरक इस ग्रन्थ में सिंहली आख्यायिकाओं, पालि व्याकरण एवं प्राकृतप्रकाश, तथा पाणिनी-सूत्रों पर लिखित वार्तिकों को विश्लेषण का आधार बनाकर उनमें निहित अन्त:साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निगमित किया गया है । प्राकृत प्रकाशकार वररुचि ईस्वी सन् के प्रारम्भ में आविर्भूत हुए थे । लेख में अपने पक्ष के प्रतिपादन के लिए तर्कपूर्ण खण्डन-मण्डन शैली का तथा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग उल्लेखनीय है ।

पं० पद्मसिंह शर्मा का 'सतसई-संहार'[२] यह लेख विद्यावारिधि (पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र) कृत सतसई पर दी गई आलोचना पर गम्भीर प्रतिक्रिया है । अत्यन्त विद्वतापूर्ण तार्किक प्रणाली द्वारा मीठी चुटकियां लेते हुए लेखक ने विद्यावारिधि कृत आलोचना की प्रत्यालोचना की है । भाषा-शैली में व्यंग्य को स्थान-स्थान शिष्ट रीति से प्रश्रय दिया गया है । 'यद्यपि टीकाकार महाशय', 'विद्यावारिधि जी आज्ञा करते है' प्रभृति पद समूह व्यतिरेक शैली के उदाहरण हैं जो लक्ष्य का उपहास करने हेतु प्रयुक्त किए गये हैं । व्यंग्य के लिए उर्दूशायरी का भी प्रयोग किया गया है । बिहारी की कविता कामिनी का विद्या-

---

१. सरस्वती १६०६ ई० पृ० ४६४

२. वही १६१० ई० पृ० ४६८

वारिधि जी के प्रति चीत्कार इन पंक्तियों में दर्शनीय है --

'यह अजीब माजरा है, मुझे रोजईदे - कुर्बा ।
वही जिबह भी करे है, वही ले सबाब उल्टा ।।'

श्री श्रीप्रकाश का 'शिक्षा किस भाषा में दी जानी चाहिए ?'[१] विवेचनात्मक शैली, प्रसादगुण सम्पन्न भाषा, भाषा-समस्य पर प्रकाश डालने वाला यह लेख अपनी मूल चेतना में भाषा विकास के सन्दर्भ में उन तत्वों का विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत करता है जोकि शिक्षा प्रणाली के माध्यम भाषा के रूप में स्वीकृत किये जायं । लेखक को दृष्टि मातृभाषा में ही प्राप्त शिक्षा ज्ञानवर्द्धन के लिए अपनी विशिष्ट भूमिका निर्मित एवं अदा करती है । मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने पर पाठक के समक्ष जो आसानी होती है वह यह है कि उसका चिन्तन, मनन तथा लेखन तीनों तादात्म्य रखते हैं । लेखक ने इस निबन्ध के उपसंहार में संस्कृत भाषा की शिक्षा संस्कारों की अविच्छिन्नता के लिए तथा उर्दू एवं फारसी भाषा की शिक्षा मजहबी तालमेल तथा पारस्परिक सहानुभूति के लिए आवश्यक मानी है ।

श्री शिवप्रसाद गुप्त के 'वाणिज्य-व्यवसाय सम्बन्धी सुधार'[२] विषय निष्ठ इस लेख ने वाणिज्य तथा व्यवसाय को देशोन्नति का प्रधान तत्व निरूपित करते हुए जनता तथा सरकार को अनेकानेक युक्तियुक्त तथा तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत किये हैं जिनके माध्यम से समाज का आर्थिक स्तर उठाया जा सकता है । कर-प्रणाली व मुद्रा-व्यवस्था सम्बन्धित

---

१. सरस्वती १९१६ ई० पृ० ५५१

२. वही १९१६ ई० पृ० ५५४

अनेक सुभाव इस लेख में संकलित हैं जो कि आज की व्यावसायिक व्यवस्था में स्वीकार भी किए जा चुके हैं। लेखक की दूरदृष्टि प्रशंसनीय है। लेख की भाषा में विशुद्ध संस्कृत के शब्द प्रयोग के प्रति आग्रह नहीं है अपितु मुमानियत, इंग्लिश्तान जैसे अनेक उर्दू एवं बोलचाल के शब्द प्रयुक्त किए गये हैं।

श्री जनार्दन भट्ट का 'लिच्छवि वंश का इतिहास'[१] शोधपरक ऐतिहासिक लेख, साहित्यिक साक्ष्यों एवं उद्धरणों से समन्वित यह निबन्ध प्राचीन वैशाली की लिच्छवि जाति का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। अनेक इतिहासज्ञों के मतवाद का विश्लेषण करते हुए लेखक ने यह निष्कर्ष निर्गमित किया है कि पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित हुआ है कि लिच्छवियों की वैशाली वर्तमान मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ नामक गांव है। ईसा की सातवीं शताब्दी से संपरिवर्तित होते हुए राजनैतिक भेदों के परिणामस्वरूप वर्ण-व्यवस्था के थपेड़ों का आघात न सह सकने के कारण लिच्छवि वंश जिसकी किसी समय कीर्ति-पताका फहराया करती थी अब नाम-शेष रह गई है।

हरिरामचन्द्र दिवेकर का 'प्राचीन भारतवर्ष में सिले हुए कपड़े'[२] सांस्कृतिक जीवन की मीमांसा करने वाला यह विषयनिष्ठ लेख लेखक की प्रबुद्ध अन्वेषणक्षमता का निदर्शक है। श्रुति-स्मृतियों तथा पुराणों से प्रमाण उद्धृत करके लेखक ने उन मान्यताओं को निर्मूल किया है जिसके अनुसार सिले हुए कपड़ों का रिवाज मुसलमानों की देन है या

----

१. सरस्वती १९१७ पृ० ५५७

२. वही १९१७, पृ० ५६०

'The art of sewing is of Semitic Origin' है। लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा शैली प्रवाहमय है। लेखक ने न केवल शामुल, तार्प्य, नीवि, अधिशस, अत्क, द्रापि तथा वातवान प्रभृति सिले कपड़ों का नाम प्रस्तुत किया है अपितु सीने की सुइयों के प्रकार तथा सूचिका से उपजीविका करने वाला सौचिक नाम (पेशा) भी प्रस्तुत करके पाठकों के ऊपर यह निर्णय छोड़ दिया है कि प्राचीन भारत में सिले हुए कपड़ों के सन्दर्भ में वही निष्कर्ष निकालें।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय के 'निसर्ग और सभ्यता'[१] इस विवेचनात्मक विषयनिष्ठ निबन्ध में विद्वान लेखक ने निसर्ग तथा सभ्यता को क्रमश: प्राकृतिक एवं कृत्रिमता के श्रेष्ठतम उपादानों से सम्बद्ध किया है तथा अत्यन्त कुशलता से अनेक उक्तियों को तार्किक रीति से निष्पादित किया है यथा --'प्रकृति संसार की जननी है सभ्यता उसका भूषण', 'प्रकृति को शरीर प्रधान उन्नति अभीष्ट है और सभ्यता को मन: प्रधान उन्नति।' आदि। व्यास शैली में लिखित यह गवेषणात्मक लेख भावानुकूल भाषा में अत्यन्त सुबोध तथा परिमार्जित शैली में लिखा गया है। प्रसादगुण माधुर्य से समर्जित होकर प्रयुक्त हुआ है।

माधवराव सप्रे का 'पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यताओं में विभिन्नता, और स्वदेशी साहित्य का महत्व'[२] भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन की सामाजिक चेतना से अभिभूत यह लेख विश्लेषण प्रधान है। पूर्वी सभ्यता को चिन्तन पद्धति, जीवनमूल्यों आदि के निकष पर श्रेष्ठ साबित करके लेखक ने जहां अपनी बौद्धिक क्षमता का सफल प्रदर्शन किया है वहीं उसका देश प्रेम भाषा-स्तर पर उल्लेखनीय है। लेख का समापन अनुच्छेद लेख की

----

१. सरस्वती १९१८ ई० पृ० ५६२

२. वही १९१८ ई० पृ० ५६५

प्रसादगुणमयी भाषा का उदाहरण है तथा लेखक की भावना का निचोड़ है कि 'भारतीय राष्ट्र का भविष्य केवल दो बातों पर अवलम्बित है -- एक तो भारतवासी अपने राष्ट्रीय साहित्य का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करें ; और दूसरी बात यह है कि सभी शिक्षालयों तथा विद्यालयों में शिक्षा मातृभाषा के द्वारा दी जाय ।

शालग्राम शास्त्री का 'गोस्वामि तुलसीदास का आत्मचरित'[1] तुलसी के अन्त:साक्ष्यों पर आधृत उनके जीवन का परिचय देने वाला यह विवेचनात्मक लेख वस्तुत: मिश्र महाशय के लेख की तर्कसम्मत आलोचना है । तुलसी की रचनाओं की मर्मज्ञता इस लेख से स्पष्ट होती है । भाषा सुष्ठु एवं शैली प्रभावोत्पादक है ।

प्रो० अमरनाथ झा का यह 'मनमौजी मजमून'[2] बोलचाल की भाषा में व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध है । इस लेख में ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता को सामान्य जीवनचर्या के सापेक्ष प्रस्तुत किया गया है । एकाधिक स्थानों पर लेखक की तरंगमयता हास्य-व्यंग्य की संसृष्टि करती है यथा --'बाईबिल बुक डिपो ' से मरक्को चमड़े की जिल्द बंधी कई किताबें ले आया । एक दिन श्रीराम करके पढ़ने भी लगा । थोड़ी देर बाद देखते हैं कि जिल्द का सब सौन्दर्य पसीने में बहा चला जा रहा है ।'

मौलवी महेश प्रसाद के 'भारत में पहला मुसलमान यात्री'[3] शोधपरक ऐतिहासिक, विषयनिष्ठ इस लेख में प्रथम मुसलमान यात्री सुलेमान

----

१. सरस्वती १६१८ ई० पृ० ५६६

२. वही १६१६ ई०, पृ० ५७४

३. वही पृ० ५७५

की भारतयात्रा का विवरण अबूजैद नाम के एक व्यक्ति द्वारा सम्पादित सामग्री को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। लेखक के अनुसार सुलेमान की यात्राएं ८५१ ई० के पहले हुई थीं। उसकी यात्रा-पत्री में भारत की प्रभूत ऐतिहासिक सामग्री विद्यमान है क्योंकि उसने न केवल तद्युगीन राजे-महराजे एवं सेना-संग्राम का वर्णन किया है अपितु सामाजिक रीतिरिवाजों का भी वर्णन किया है।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी का 'ब्रजभाषा का काव्य और शृङ्गाररस'[1] विषयनिष्ठ विवेचनात्मक यह लेख की भाषा सामान्य साहित्यिक है तथा शैली सुबोध एवं प्राञ्जल है। ब्रजभाषा काव्य का इतिवृत्तपरक उल्लेख कर लेखक ने उसमें प्रेम तथा शृङ्गार के तत्व को अपरिहार्य तथा आवश्यक माना है। यही नहीं काव्य में शृङ्गाररस को सहजात प्रवृत्ति भी स्वीकार किया है। पर्याप्त उद्धरणों के माध्यम से इस लेख में ब्रजभाषा काव्य को ब्रजभूमि में वैष्णव धर्म का भावात्मक विकास निरूपित किया गया है।

पं० देवीदत्त शुक्ल ने 'मुद्राराक्षस के रचयिता का लक्ष्य'[2] ऐतिहासिक नाटक की विवेचना कर उसके लक्ष्य को निर्धारित करने का उद्देश्य महज इतना था कि उस पवित्र सन्देश को हृदयंगम कर भारतीय जनता पारस्परिक साम्प्रदायिक विद्वेष को भूलकर विदेशी फिरंगी ताकत का एक जुट होकर सामना करें। लेख की भाषा यत्र-तत्र बोलचाल के उर्दू शब्दों से समन्वित वर्णनात्मक शैली में नियोजित की गई है।

----

१. सरस्वती पृ० ५७७

२. वही १६२०,पृ० ५८२

लल्लीप्रसाद पाण्डेय का `मौलिक ग्रन्थ और अनुवाद`[1] साहित्य एवं समीक्षा विषयवस्तु पर आधृत यह विश्लेषणपरक लेख मौलिक ग्रन्थों के अनुवाद की आवश्यकता, उपादेयता एवं समस्या का विवरण प्रस्तुत करता है। लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा बोलचाल की शब्दावली से पुष्ट है।

श्री भवानीशंकर याज्ञिक का `गुजरात प्रान्त के हिन्दी कवि`[2] यह शोधपरक लेख है। इस लेख में गुजरात प्रान्त में आविर्भूत हिन्दी-कवियों का कालक्रमबद्ध तथा प्रवृत्तिपरक उल्लेख किया गया है। विद्वान लेखक ने गुजरात प्रान्त के हिन्दी कवियों का प्रामाणिक जीवनवृत्त तथा साहित्यिक दायरा निरूपित किया है। वह वस्तुत: अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय तथा प्रशंसनीय है। मीराबाई, दादूदयाल, नरसी मेहता प्रभृति प्रतिभाओं की उद्गम स्थली गुजरात ही रही है। इस लेख में विश्लेषण की शैली के द्वारा सिद्धान्तों का निगमन अत्यन्त सुबोध तथा सुग्राह्य भाषा में किया गया है।

पं० रामदहिन मिश्र के `मेघदूत में विज्ञान`[3] इस लेख में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का साहित्यिक कृतियों में अनुसंधान करने की सफल चेष्टा की है तथा यह विषयनिष्ठ निबन्ध संस्कृत गर्भित शैली में यथा-स्थान उद्धरणों के प्रयोग द्वारा सुसज्जित किया गया है। यह लेख कालिदास की बहुज्ञता का द्योतक है। लेख में मेघ सम्बन्धी पर्यावरणिक अवयवों की वैज्ञानिक समीक्षा की गई है।

----

१. सरस्वती १९२० ई० पृ० ५८४
२ वही १९२० ई० पृ० ५८५
३. वही १९२० ई पृ० ५९२

वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय का `अमेरिकावासियों की भाषा में लिङ्गविचार`[1] भाषा वैज्ञानिक विवेचन से सम्पृक्त विवेचनात्मक निबन्ध अपनी मूल चेतना में तुलनात्मक भाषा विज्ञान की बानगी है जिसमें कि अमेरिकी भाषाओं तथा प्रतिनिधि भारतीय भाषा के व्याकरणिक स्वरूप का विश्लेषण किया गया है । लेख की भाषा विचारों की सजावट से पूर्ण अत्यन्त सारगर्भित है । शैली में विवरणात्मकता का प्राधान्य है ।

द्वारकाप्रसाद मिश्र के `समाज की समस्ता`[2] इस निबन्ध में वसुधा को कुटुम्ब मानकर सार्वभौमिक संवेदन से आप्लुत समाज को अनेकानेक योरोपीय विद्वानों की चिन्तन पद्धति पर विवेचित कर शाश्वत समस्याओं एवं उनके समाधान के प्रति अत्यन्त विद्वतापूर्ण विचार प्रस्तुत करता है । युद्ध की विभीषिका एवं तज्जन्य नकारात्मक जीवनमूल्यों को विश्वशान्ति की ओर उन्मुख करना ही इस विषयनिष्ठ लेख का लक्ष्य है, उद्देश्य है । लेख की भाषा प्रवाहपूर्ण तथा प्रसादगुण सम्पन्न है ।

शिवधार पाण्डे के `उच्छ्वास्`[3] तरङ्गमयता से पूर्ण इस निबन्ध में अभिनन्दन किया गया उन सरस्वतीपुत्रों का जिन्होंने `नागरी` की सेवा की है । `उच्छ्वास्` नामक पुस्तिका को आधार बनाकर लिखा गया यह निबन्ध प्रवाहपूर्ण शैली में यथास्थान यथोचित शब्द प्रयोग के कारण स्पृहणीय है । शीर्षक को काव्य, समाज तथा प्रकृति के विविध-रूपों के सापेक्ष विद्वतापूर्ण रीति से प्रस्तुत किया गया है । लेख से लेखक

---

१. सरस्वती १६२२ ई० पृ० ५६५

२. वही १६२२ ई० पृ० ५६८

३. वही १६२२ ई०, पृ० ६०२

नये कहानीकारों को भी विषयगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से अनेक वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, अमरकान्त, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, रमेशवर्मा, शैलेश मटियानी, नरेश मेहता, मन्नू भण्डारी, प्रभृति कहानीकार आते हैं, जिन्होंने मुख्यत: शहरी मध्यवर्गीय जीवन की आन्तरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इनका दृष्टिकोण अति यथार्थवादी तथा लक्ष्य यौन विकृतियों, कुंठाओं अभावों आदि के चित्रण कर रहा है। शिल्प और शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतनता पर बल दिया है।

दूसरे वर्ग में फणीश्वरनाथ 'रेणु', राजेन्द्र अवस्थी, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी आदि को स्थान दिया जा सकता है। इन्होंने आंचलिक पृष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है।

तीसरे वर्ग में हास्यव्यंग्यमयी कहानियों के लेखकों को स्थान दिया जा सकता है जिसमें केशवचन्द्र वर्मा, श्री लाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरदजोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शान्ति महरोत्रा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

चतुर्थ वर्ग ऐसे लेखकों का है, जिन्होंने व्यापक प्रगतिशील दृष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। इस वर्ग में कृष्णचन्द्र, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त प्रभृति को स्थान दिया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त अनेक कहानीकार ऐसे भी हैं जिन्हें किसी एक विशिष्ट वर्ग में स्थान नहीं दिया जा सकता, तथा- विष्णु प्रभाकर, सत्यपाल आनन्द, कृष्ण बलदेव वैद्य आदि।

इधर नये कहानीकारों की अति सूक्ष्मता, अति वैयक्तिकता, संकीर्णता एवं निष्प्राणता की प्रवृत्तियों के विरुद्ध संगठित मोर्चा स्थापित

डा० कीथ के जीवन की शैक्षिक जगत से सम्बद्ध घटनाओं तथा उपलब्धियों का विवरणप्रधान, प्रसादगुण-सम्पन्न सामान्य बोलचाल की भाषा में उल्लेख हुआ है । बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न डा० कीथ ने अपने जीवन में न केवल संस्कृत साहित्य की सेवा विभिन्न शोध-ग्रन्थ लेखन के माध्यम से की अपितु उन्होंने उपनिवेश विभाग के प्रतिष्ठित पदों पर भी कार्य किया तथा विधि, न्याय तथा दर्शन के क्षेत्र में प्रभूत योगदान एवं सेवाएं कीं ।

पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री के 'भारत का वाणिज्य और वणिक समाज'[1] निबन्ध में आंकड़ों की सहायता से भारत में वाणिज्य-व्यवस्था को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है तथा उसे पाश्चात्य देशों के वाणिज्य से यत्र-तत्र 'तुलनात्मक' स्वरूप में रखा है । वाणिज्य को पशुपालन तथा कृषि-कर्म का उन्नायक तथा सहायक घोषित कर लेखक ने 'कृषि गोरक्षा वाणिज्य वैश्यकर्म स्वभावजम्' को रूपायित किया है । लेख की भाषा सहज तथा शैली सुपाठ्य है ।

श्री शिवपूजन सहाय ने 'पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती'[2] के जीवनवृत्त तथा हिन्दी साहित्य सेवा का परिचय देते हुए निबन्ध को बोलचाल की भाषा में निबद्ध किया है । जीवन के आर्थिक पतनोत्थान का परिचय कुशलतापूर्वक लेखक ने साहित्यिक रूप में निम्नवत् प्रस्तुत किया है --'लक्ष्मी-सरस्वती के साम्पत्त्य के आप साक्षात् उदाहरण हैं ।

लाला सीताराम का 'स्वस्तिक और ओंकार'[3] हास्य-व्यंग्य मिश्रित यह लेख लिपि-विषयक भाषाविज्ञान से सम्बद्ध ऐसा लेख

----

१. सरस्वती, पृ० ६१२
२. वही , पृ० ६१४
३. वही , १६२८ ई०, पृ० ६१७

है जो कि स्वस्तिक तथा ओंकार की संस्कारगत मंगल चेतना को निरूपित करने वाला संस्कृतनिष्ठ तथा साहित्यिक प्रयास है । यह निबन्ध वर्णनक्रम में वैज्ञानिक प्रणाली पर आधृत है अर्थात् विषयवस्तु का सुसम्बद्ध तथा स्पष्ट चित्रण ।

श्री रामदास गौड़ का `मरण-काल`[1] दार्शनिक तथा व्यावहारिक चिन्तन पर आधृत यह लेख विषयनिष्ठ है । मृत्यु को सचित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण कर्मों का फल मानकर मृत्यु को प्राणिमात्र के साथ सम्बद्ध होने वाली अनिवार्य घटना कहा गया है । मृत्यु के कारण एवं मृत्यु के लक्षणों की चिकित्साशास्त्रीय विवेचना भी इस लेख में की गई है तथा प्रसादगुण सम्पन्न भाषा में मरणोपरान्त होने वाली घटनाओं का समाज प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर वर्णन किया गया है ।

श्री अख्तर हुसैनपुरी के `गालिब की ठठोल`[2] इस लेख में गालिब के जीवनचित्र के उस रंग को उभारा है जिसके बमोजिब गालिब ने रोते को हंसाया तथा बिगड़े को मनाया है । गालिब को स्मृतिकोष में सुरक्षित रखने वालों में उनके शागिर्द मौलाना हाली की `यादगारे गालिब`, मौलाना आज़ाद का `आबेहयात` व गालिब का `उर्दू-दीवान` है । मिर्जा गालिब की रंगीन तबीअत पर प्रकाशक्षेपण करने वाला यह लेख उनके व्यक्तित्व को सीधी-सादी भाषा में उजागर करता है । लेखक के दो-एक कथन इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि -- `गालिब जब कभी दिल्लगी करते हैं तब सज्जनता की डोर थामे हुए, शराफत का पहलू लिए हुए ।.. । गालिब के मजाक में एक मिठास है, एक सादापन है, एक निर्मलता है ।

----

१. सरस्वती १९२८ ई०, पृ० ६२१

२. वही, पृ० ६२५

श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ के 'पुराणों पर एक दृष्टि '[1] लेख में पुराणों के पर्याप्त उद्धरण देकर पुराणों की प्रामाणिकता उसकी संख्या, उसकी अन्तर्वस्तु तथा उस पर वेदों के प्रभाव को स्पष्ट किया गया है । पुराणों के सन्दर्भ में पाश्चात्य लेखकों एवं विद्वानों के विचारों को भी औचित्य के निकष पर परखने की सफल चेष्टा की गई है । इस सन्दर्भ में उनके विचारों का जहां खण्डन किया गया है वे तार्किकता से सम्पुष्ट हैं । लेख की भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा शैली पाण्डित्य-पूर्ण एवं गम्भीर है ।

श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'चौरासी-सिद्ध'[2] हिन्दी के आदि-कवि एवं वज्रयान सम्प्रदाय की नींव डालकर बौद्धदर्शन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने वाले चौरासी सिद्धों के सन्दर्भ में तिब्बती साक्ष्यों के आधार विद्वान, जिज्ञासु एवं अनुसंधित्सु लेखक ने महत्वपूर्ण जानकारियां इस विषयनिष्ठ लेख में प्रदान की है । इस निबन्ध में प्रवाहपूर्ण शैली में चौरासी सिद्ध कवियों की भाषा, दर्शन तथा उपासनापद्धति पर प्रकाश डाला गया है ।

श्री परमानन्द ने 'हिन्दू-शब्द'[3] निबन्ध में 'हिन्दू शब्द की सांस्कृतिक अस्मिता का जिक्र करते हुए लेखक ने भाषा वैज्ञानिक व्युत्पत्ति का ध्यान रखा है । लेखक के अनुसार हिन्दू शब्द का मजहब से कोई सम्बन्ध नहीं है । यह स्थान विशेष के निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला जातिवाचक शब्द है । इस शब्द का प्रयोग चन्दवरदाई ने भी

---

१. सरस्वती १९३० ई०, पृ० ६२९

२. वही १९३१ ई०, पृ० ६३३

३. वही १९३१ ई०, पृ० ६३६

किया है । लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा शैली इतिवृत्तात्मक है ।

श्री नलिनीमोहन सान्याल में 'नदिया-गौरव'[1] भौगोलिक कारणों से समय के थपेड़ों से अपने वैभवसूर्य की प्रचण्डता को खो देने वाला नवद्वीप जोकि श्री चैतन्यदेव एवं रघुनाथशिरोमणि के समय में गौरव की चोटी पर था अब नदिया जिले के रूप में जाना जाता है उस स्थान विशेष का वर्णन किया है । लेखक ने इस विवेचनात्मक वर्णनप्रधान शैली वाले लेख में नदिया की गौरवगाथा को सामाजिक संस्कारों एवं समृद्धि के सन्दर्भ में चित्रित किया है । लेख की भाषा, विषयवस्तु के प्रति लेखक की अभिरुचि की स्पृहणीयता को अभिव्यक्त करती है ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के उद्भट विद्वान, समालोचक तथा सफलतम सम्पादक ने सरल संयत तथा सुबोध भाषा-शैली में अपना जीवन चरित तथा सम्पादन सिद्धान्त अपने आत्म-निवेदन[2] नामक निबन्ध में निरूपित किया है । यह लेख न केवल उनकी आत्मकथा है वरन् उनके जीवन एवं व्यक्तित्व की जानकारी देने वाला महत्वपूर्ण निबन्ध है ।

श्री आर० एस० पण्डित ने 'कल्हण की राजतरंगिणी'[3] जो ११४८ ई० में विरचित साहित्यिक कृति का वर्णन किया है । यद्यपि कश्मीर का इसमें इतिहास है तथापि यह ग्रन्थ तद्युगीन सारे भारत की हिन्दू

---

१. सरस्वती १६३१ ई०, पृ० ६२८

२. वही १६३३ ई०, पृ० ६४१

३. वही , पृ० ६४५

संस्कृति का दर्शन कराने वाला प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस लेख में लेखक ने कृति का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें भाषा सरल एवं शैली विवरणात्मक तथा विश्लेषण प्रधान है।

पण्डित कृष्णकान्त मालवीय का 'कारण क्या है'[१] यह लेख परमानन्द की एक रचना पर आलोचनात्मक टिप्पणी है। जिसमें तार्किक रीति से लेखक ने अपनी सम्मति सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रदत्त की है। लेखक ने जाति विशेष के प्रति अन्धप्रेम को अतिभावुकतापूर्ण होने के कारण घातक बताया है। उनका कथन है कि 'हिन्दू जाति को हितरक्षा करने वालों को सबसे पहले इस समस्या पर विचार करना चाहिए.. हमारी अधोगति के कारण क्या हैं? लेखक की शीर्षकोपयुक्तता को साबित करते हैं।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का 'देहरादून जेल से अन्तिम पत्र'[२] यह लेख विद्वतापूर्ण गहन अध्ययन के प्रतिफलन के रूप में अध्यवसाय प्राय: जेलयात्रा में ही विकास पाता था क्योंकि राजनैतिक एवं सामाजिक व्यस्तता से परे यह स्थान उनके लिए साहित्य सर्जन का स्वर्ण था। इस लम्बे पत्र में लेखक ने प्रकृति, साहित्य, तथा संस्कृति को अनेकानेक रूपों में स्थान दिया है तथा उनका स्वतंत्र चिन्तन भी यत्र-तत्र प्रकट हुआ है। लेखक ने उपसंहारक अनुच्छेद में उक्त लेख के शीर्षक को उपयुक्तता व्यतिरिके शैली प्रयोग के माध्यम से दी है 'और यह अन्तिमपत्र भी खत्म हो गया। अन्तिम पत्र। निस्सन्देह नहीं।'

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने 'पानी में भी मनि प्यासी'[३] लेख

---

१. सरस्वती १९३३ ई०, पृ० ६४८

२. वही १९३४ ई०, पृ० ६५३

३. वही १९३४ ई०, पृ० ६५७

में सुप्रसिद्ध उद्योगपति के आर्थिक जीवन की अनेक समस्याओं को सामने रखकर उनको दूर करने के लिए देश-काल की मान्यताओं के अनुरूप समाधान प्रस्तुत किया है जोकि मूल्य-वृद्धि, मुद्रा-व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में नितान्त व्यावहारिक है किन्तु अन्त में विकृत अर्थव्यवस्था का कारण फिरंगी शासक को बताकर लेखक ने देशप्रेम तथा अन्याय-विरोध का मार्ग निर्भीकतापूर्वक अंगीकार किया है। लेख में क्रमबद्ध रीति से वर्णन शैली तथा तदनुरूप उचित शब्दप्रयोग दृष्टव्य है।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के 'नाटक-समस्या'[१] विवेचना प्रधान इस लेख में हिन्दी साहित्य के क्रान्तिकारी विचारक 'निराला' ने साहित्यिक विधा 'नाटक' की समस्याओं के विभिन्न दृष्टियों से मूल्यांकित किया है तथा इस विषयनिष्ठ लेख में यत्र-तत्र अपने निजी सिद्धान्तों को भी वाणी दी है। उनका उदार कथन नाटकों की विषय-विविधता के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। नाटक को रंगमंचीय चेतना से सम्पृक्त करने की उनकी अभिलाषा कलाप्रियता की द्योतक है तथा नाटककार को साहित्य के सभी अंगों का ज्ञान उनकी नाटक सम्बन्धिनी कसौटी है। लेख की भाषा प्राञ्जल तथा शैली विवरणप्रधान किन्तु संवेदनशील व तार्किक है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने 'सुई दो रानी डोरा दो रानी' यात्रा विवरण इस लेख को काव्यमयी, रोचक तथा मर्मस्पर्शिनी भाषा-शैली में वर्णित किया है। लेखिका ने घटनाओं को अपनी कुशल लेखनी से शब्दचित्र का रूप दे दिया है। बदरीनाथ की यात्रा में स्थान विशेष की परम्परा को चित्रित करने वाला इस लेख का शीर्षक अब अपनी भौतिक मूल्यवत्ता को

----

१. सरस्वती १६३४ ई०, पृ० ६६१

२. वही १६३४ ई०, पृ० ६६५

चुका है । लेखिका ने तीर्थस्थानों पर कतिपय पुरोहितों-पण्डों द्वारा की जाने वाली आडम्बरयुक्त क्रियाओं का शिष्ट हास्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है ।

श्री नानालाल चमनलाल मेहता के 'हिन्दू-चित्रकला'[१] शोधपरक, विवेचनात्मक लेख, चित्रकला को समाज में प्रचलित दिखाने के लिए साहित्यिक साक्ष्यों का आश्रय ग्रहण किया है । हिन्दू चित्रकला के विकासकाल के रूप में लेखक ने १८वीं- १६वीं शताब्दी का समय माना है । लेख की भाषा सहज तथा शैली विवरण प्रधान है ।

पं० मोतीलाल नेहरू के 'नारी अपहरण में हिन्दू समाज की जिम्मेदारी'[२] सामाजिक समस्या से सम्बद्ध लेख में जातीय तथा साम्प्रदायिक अन्धविश्वासजन्य रूढ़िवादिता को हानिकारक तथा अपराध-मूलक निरूपित किया गया है । भाषा सरल तथा प्रसाद गुण सम्पन्न है। लेखक ने अन्तिम अनुच्छेद में जो उपसंहार प्रस्तुत किया है वह समस्त लेख का सारतत्व है --"मैं चरित्र सम्बन्धी शिक्षा उसे समझता हूं x x x जो अपराधी या भावी अपराधी को दण्ड दे सके । उस शिक्षा की न केवल स्त्रियों को जरूरत है अपितु हिन्दू पुरुषों को भी । x x x जब अपनी आत्मरक्षा का भार हम अपने ऊपर उठा लेंगे तब दूसरा आसानी से हमारे घरों पर आक्रमण नहीं कर सकता ।

श्री राधामोहन गोकुल जी का 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्'[३]

---

१. सरस्वती १६३५ ई० पृ० ६६७

२. वही पृ० ६७१

३. वही १६३५ ई०,पृ० ६७३

विश्लेषण प्रधान विषयनिष्ठ निबन्ध है । भाषा-शैली प्रसादगुण सम्पन्न तथा चिन्तनप्रधान है । कला में सौन्दर्य तथा समाज कल्याण की चेतना स्वत: भरी रहती है । यह सौन्दर्य कृत्रिम न होकर स्वत: संपूर्त होता है । लेख में लेखक ने अपने विचारों को अनेक साहित्यिक उक्तियों तथा सार्वभौमिक कथनों के द्वारा सम्पुट किया है ।

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का `मीराबाई-नाम`[1] यह शोधपरक लेख है । `मीरा` शब्द का साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा भाषा वैज्ञानिक व्युत्पत्ति तथा परिभाषाएं देकर विद्वान् लेखक ने यह सुझाव अपने विचार के रूप में सामने रखा है कि --`मीराबाई उसका नाम न होकर उसकी व्यक्तिगत विशेषता की द्योतक उपाधि ( उपनाम ) मात्र थी, जो सम्भवत: साधुसन्तों के द्वारा उसे मिली हो और जिसके आगे उसका असली नाम विस्मृति के गह्वर में चला गया हो ।`

पं० देवीप्रसाद शुक्ल का `पुण्य-स्मृति`[2] लेख श्रद्धा जलि के रूप में अर्पित आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक सेवा एवं तत्सम्बन्धित व्यक्तित्व की विभिन्न जानकारियों का रोचक वर्णन है । इस विवरणप्रधान लेख में देवीप्रसाद शुक्ल जी ने आचार्य के स्वभाव का उनके जीवन-परिचय के सापेक्ष वर्णन किया है । लेख की भाषा सरल, तथा भावानुकूल है ।

प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा ने `आग पर चलना`[3] लेख में रांची जिले की उंराव एवं मुण्डा जातियों के लोकप्रचलित विश्वास आग

----

१. सरस्वती १६३६ ई०, पृ० ६७६
२. वही १६३६ ई०, पृ० ६७८
३. वही १६३६ ई०, पृ० ६८२

पर चलना को लेखक ने अनेक देशों की अनेक जातियों में प्रचलित बताया है । इस विवरण प्रधान लेख में `आग पर चलने` की क्रिया को वैज्ञानिकों के समक्ष एवं पहेली के रूप में प्रस्तुत किया गया है । लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न है । सत्य घटना को इस लेख में रोमांचक रीति से प्रयुक्त किया गया है । लेख का कलेवर विशद है ।

पं० वेंकटेशनारायण तिवारी ने `हिन्दुस्तानी की ओट में उर्दू का प्रचार`[1] में `हिन्दू-हिन्दू-हिन्दुस्तान` के हिमायती अपने प्रबल तर्कों द्वारा इस लेख में हिन्दी को ही हिन्दुस्तानी भाषा में निरूपित किया है । उसके स्थान पर यदि उर्दू का प्रचार होता है तो वह दिन-दहाड़े साम्प्रदायिक कठमुल्लों का दुष्प्रयास है । लेखक ने हिन्दुस्तानी ओट में उर्दू के प्रचार को इसलिए अनुपयुक्त बताया है क्योंकि वह राष्ट्रीय उत्थान की संहारिणी तथा जातीय उत्थान की जड़ खोदने वाली है । संकीर्णता में ही उसका जन्म हुआ है संकीर्णता का ही वह सन्देश सुनाती है ।

पं० सूर्यनारायण व्यास का `नीलाम्बर से नक्षत्र वर्षण`[2] खगोलशास्त्रीय ज्ञान एवं जिज्ञासा से युक्त यह लेख उल्कापातों का विभिन्न दृष्टिकोणों से(अर्थात् उल्कापात के कारण, उनका प्रभाव तथा अनेक अवशिष्टों के स्वरूप) विवेचन प्रस्तुत करता है । लेख में वैज्ञानिकता का समावेश है तथा सरल सुबोधमयी भाषा शैली में विषय का स्पष्टीकरण किया गया है ।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने `हिन्दू संस्कृति की रक्षा`[3] में हिन्दू-----------

१. सरस्वती १९३९ ई०, पृ० ६८८
२. वही १९४० ई०, पृ० ६६३
३. वही १९४० ई०, पृ० ६६५

हिन्दू संस्कृति एवं भारतीय राष्ट्र को अन्योन्याश्रित घोषित कर इस विश्लेषण प्रधान विषयनिष्ठ निबन्ध में हिन्दू संस्कृति के विकास में समय-समय पर पड़ने वाले बाह्यप्रभावों से उद्भूत परिवर्तनों का भी जिक्र किया है । राष्ट्र प्रेम की भावना को लेखक ने अत्यन्त प्रवाहपूर्ण चिन्तन-प्रधान शैली में उचित शब्द प्रयोगों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है ।

श्री सम्पूर्णानन्द ने 'हमारे सांस्कृतिक पतन का एक चित्र'[१] निबन्ध में अतीत के स्वर्णिम सांस्कृतिक काल की प्रेरणा से प्रेरित होकर संस्कृति के विधायक अनेक तत्वों के मूल्य ह्रास की ओर विद्वान लेखक ने संकेत कर आर्य संस्कृति के आधार पर उस भारतीय संस्कृति को खड़ा करने का सन्देश दिया है । जो भावी विश्वसंस्कृति का मुख्यतम अंग है । लेख की भाषा व्याकरणसम्मत, भावानुकूल तथा संस्कृतनिष्ठ है । व्यास शैली को इस लेख में प्राय: अपनाया गया है ।

श्री दिल्ली रमण रेग्मी का 'नेपाल की नेवार-जाति'[२] शोधपरक ऐतिहासिक लेख, नेपाल के इतिहास से प्रत्येक स्तर पर गम्भीर रीति से सम्पृक्त नेवार जाति के रस्म-रिवाज, प्रवृत्तियों तथा धर्म एवं संस्कृति का इस लेख में अत्यन्त विवेचनात्मक विवरण प्राप्त होता है । लेख की भाषा सामान्य बोलचाल की है तथा शैली प्रसादगुण सम्पन्न है ।

श्री मुकुन्दीलाल का 'दानवीर देशभक्त शिवप्रसाद गुप्त की स्मृति'[३] गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित, असहयोग आन्दोलन के

----

१. सरस्वती १६४२ ई०, पृ० ६६६

२. वही १६४२ ई०, पृ० ७०६

३. वही १६४४ ई०, पृ० ७९०

कर्णधारों में से एक उद्भट हिन्दी प्रेमी, दानवीर शिवप्रसाद गुप्त के स्वदेश प्रेम पर प्रकाश डालने वाला यह विवरणात्मक सूचनाप्रधान लेख सामान्य बोल चाल की भाषा में लिखा गया है ।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ने 'महाभारत पर विचार'[१] विश्लेषणपूर्ण इस लेख में महाभारत की रचनाप्रक्रिया, उसके कलेवर में निबद्ध तथाकथित प्रक्षिप्त देशों और 'महाभारत' में निहित व्यावहारिक राजनीति का औचित्यपरक युक्तियुक्त विवेचन प्राप्त होता है । भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा सूचनात्मक प्रकृति की है तथा शैली में प्रवाह है । लेखक के विवेचन से उसका महाभारत विषयक गहन अध्ययन स्पष्ट होता है ।

पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय का 'हिन्दी भाषा का प्रदेश'[२] भाषा वैज्ञानिक यह लेख हिन्दी भाषा के प्रदेश की सीमा को निर्धारित करने के लिए हिन्दी भाषा की उपभाषाओं एवं बोलियों का स्थान सापेक्ष प्रवृत्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है । हिन्दी शब्द को संकीर्ण परिभाषा से उन्मुक्त कर विद्वान लेखक ने अनेक पाश्चात्य विद्वानों जिनमें सर जार्ज ग्रियर्सन भी हैं के उन विचारों का खण्डन किया है जो कि पक्षपातपूर्ण है तथा हिन्दी भाषा की गरिमा को कहीं से भी लांछित करते हैं । लेख की भाषा शैली प्रसाद गुण सम्पन्न है जिसमें तर्कपूर्ण विचारों को क्रमबद्ध रीति से प्रस्तुत किया गया है ।

----

१. सरस्वती १९४४ ई०, पृ० ७९१

२. वही १९४४ ई०, पृ० ७९६

सन्तनिहाल सिंह ने 'दादा भाई नौरोजी के साथ कुछ दिन'[1] इस संस्मरणात्मक लेख में कांग्रेस के संस्थापक स्तम्भ दादा भाई नौरोजी के साथ व्यतीत किए गये कतिपय दिवसों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । यह लेख दादा भाई नौरोजी के व्यक्तित्व की कतिपय विशेषताओं को चित्रित करता है । भाषा सरल एवं सुबोध तथा शैली घटना वर्णन प्रधान है ।

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'रवीन्द्रनाथ की हिन्दी सेवा'[2], कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्योपरान्त श्रद्धा जलि रूप में वर्णित यह विवरण विद्याव्यसनी लेखक द्वारा संस्कृत निष्ठ चिन्तनप्रधान भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है । लेखक महोदय ने रवीन्द्रनाथ द्वारा की गई हिन्दी सेवाओं का जो वर्णन किया है उसमें साहित्य सृजन तथा साहित्यिक सृजन में सहायक दोनों ही तत्वों का समावेश किया गया है । स्थान-स्थान पर आंकड़ों को देकर लेखक ने विषयाधिकार प्रदर्शित किया है ।

पंडित द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी का 'परलोक गत रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास'[3] विवरणात्मक यह लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सफलतापूर्वक उन्नति के पथ पर आरूढ़ करने वाले हिन्दी के सेवक, उन्नायक एवं प्रकाण्ड विद्वान बाबू श्यामसुन्दर दास के जीवन एवं व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है । लेख की भाषा

----

१. सरस्वती १६४५ ई०, पृ० ७२२

२. वही १६४५ ई०

३. वही १६४५ ई०, पृ० ७२८

सुबोधमयी तथा शैली सर्वजन सुलभ एवं सुग्राह्य है। बाबू श्यामसुन्दरदास की महानता को व्यंजित करने वाला लेख का यह अन्तिम वाक्य उद्धरणीय है -- `बाबू श्यामसुन्दरदास का परलोक गमन उनके गुणों से परिचित जनों के लिए सचमुच मर्मवेदना कारक है।`

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा का `गांधीजी और राज्य`[१] स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व देश में राजनीतिक परिस्थिति के मूल्यांकन से सम्बद्ध उसे सकारात्मक दिशा निर्देश देने वाला यह समालोचनात्मक लेख अनेक स्वतन्त्र देशों की प्रचलित शासन प्रणालियों की तुलना में गांधीवादी विचारधारा तथा राज्य की संकल्पना कर उसे ही शान्ति का विधायक एवं मानवता के विनाश के परित्राण का उपाय मानता है। इस लेख की भाषा विवेचनात्मक शैली में निबद्ध होने के कारण पाठक से अनिश्चित सजगता की मांग करती है।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का `सुभाष मानव सुभाष महामानव`[२] यह लेख काव्यात्मक भाषा में सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु पर उनकी प्रशस्ति के माध्यम से श्रद्धांजलि है। इस लेख के दो एक उद्धरण भाषा शैली के माधुर्य को दर्शाने के लिए निम्नलिखित है -- `गीता के विश्वासी, भारतवासी मरण पर नहीं अवतरण पर विश्वास किए आए हैं; विश्वास किए जायेंगे।` < < < उसकी अनन्त असफलताएं और मोदभरी अगणित सफलताएं भारत को सम्पूर्ण सफल बनाकर मोदमयी गौरवमयी हो गयी है।`

श्री रामधारीसिंह `दिनकर` के `धर्म की साकार प्रतिमा परमहंस`[३] निबन्ध में समाजसुधारकों की अवली में सरलता एवं चमत्कारी

---

१. सरस्वती १९४८ ई० पृ० ७३१
२. वही १९५५ ई० पृ० ७३४
३. वही १९५५ ई० पृ० ७३७

था[1] निबन्ध लोकमान्य बालगंगाधर के उत्सर्गपूर्ण साहसिक जीवन का वृत्तान्त प्रस्तुत करने वाला विषयनिष्ठ, उनकी दार्शनिक चेतना एवं चिन्तन को भी स्पष्ट करता है। गीता के सम्बन्ध में उनका समर्पित व्यक्तित्व तथा उनका अध्ययन गीता-रहस्य में स्पष्ट हुआ है। भाषा-शैली सुबोधमयी है तथा सुग्राह्य है। इस लेख से तिलक के व्यक्तित्व की विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

श्री विद्यानिवास मिश्र ने 'बेचिरागी गांव'[2] निबन्ध में एक उजाड़ बस्ती जो कि जोत (कृषि भूमि) आ गई थी बेचिरागी गांव के रूप में ज्ञात होती है। वह इस नाम को प्रतीकात्मक बनाकर भावनात्मक एवं कल्पनात्मक विचारों में खो जाता है। भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के विभिन्न घटनाओं एवं तत्वों का विवेचन करते हुए वह पुन: लेख के शीर्षक पर रोचक तरीके से आता है और वह यह कामना करता है कि 'बेचिरागी अभिधान के द्वारा दयनीय बनाने वालों की बुद्धि पर जो पाला पड़ गया है वह दूर हो।'

डा० हेमचन्द्र जोशी का 'संस्कृत के महापण्डित ये जर्मन'[3] कुर्टिउस तथा वाकरनागल नामक जर्मन के संस्कृत विद्वानों की प्रतिभा का दिग्दर्शन करने वाला यह सूचनात्मक शोधपरक लेख भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से लिखा गया है। व्याकरणिक विषयों का विवेचन करने वाला यह लेख सामान्य बोलचाल की भाषा में तथा वर्णनात्मक शैली में निबद्ध है। इस

---

१. सरस्वती १९५६ ई०, पृ० ७४६

२. वही १९५६ ई, पृ० ७५१

३. वही १९५७ ई०, पृ० ७५६

लेख के उद्देश्य के सम्बन्ध में विद्वान लेखक का कथन है कि × < × "यह छोटा लेख लिखा है जिससे हिन्दी भाषी पाठक जर्मन विद्वानों के अगाध पाण्डित्य, तथा वैदिक संस्कृत हिन्दी आदि पर उनके महान उपकार से परिचित हो सकें।"

पं० गंगाशंकर मिश्र के 'प्राचीन भारत में पुलिस'[१] निबन्ध में प्रजापालन तथा दुष्टों के निग्रहण हेतु पुलिस संस्था के स्वरूप सी संस्था प्राचीन भारत में विद्यमान थी उसका वर्णन है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त संस्कृत के उद्धरणों द्वारा इसे प्रमाणिक कर विद्वान लेखक ने 'पुलिस' शव्द की व्युत्पत्ति पर भी प्रकाश डाला है। यह लेख शोधपरक है। भाषा-शैली संस्कृतनिष्ठ तथा न्याय एवं दण्डसम्बन्धी तकनीकी शव्दावली से युक्त है।

श्रीमती शीला शर्मा ने 'अमरीकन गृहिणी की समस्याएं'[२] निबन्ध में अमरीकन गृहिणी के जीवन में आने वाली तमाम सारी समस्याओं को समालोचनात्मक रीति से व्यक्त किया है। इस लेख में यत्र-तत्र समस्या के स्वरूप का भारतीय गृहिणी से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा उनकी समस्याओं के निदान का सरलभाषा में तथा प्राञ्जल शैली में उपाय बताया गया है। लेखिका ने अपने कथन को सम्मत बनाने के लिए अंग्रेजी तरजुमें का भी प्रयोग किया है --"अमरीका में सबसे अधिक विवाह व विच्छेद स्त्री-पुरुष की रुचि की पटरी न बैठने (Imcompetibility of temperament) के कारण होती है।"

---

१. सरस्वती १९५७ ई०, पृ० ७५९

२. वही १९५८ ई०, पृ० ७६३

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' के 'धर्म की साकार प्रतिमा परमहंस'[1] निबन्ध में समाजसुधारकों की अवली में सरलता एवं चमत्कारी व्यक्तित्व के माध्यम से सर्वश्रेष्ठ स्थान पाने वाले रामकृष्ण युग-युग तक आदर तथा श्रद्धा के पात्र रहेंगे। स्वामीविवेकानन्द के गुरु के रूप में विश्व-विश्रुत इस प्रतिभा में आकर ही देवी-देवता, पौराणिक आचार और अनुष्ठान, धर्म की विविध साधनाएं साकार हो गई। लेखक ने प्रवाहपूर्ण शैली में यह उल्लिखित किया है कि साधना करते-करते शरीर को उन्होंने इतना शुद्ध कर लिया था कि वह ईश्वरत्व का निर्मलयन्त्र हो गया। लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न है।

म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के 'संस्कृत ग्रन्थों में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त'[2] निबन्ध में संस्कृतनिष्ठ शैली, विषयनिष्ठ लेख लेखक की वैज्ञानिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराती है। शोधपरक इस निबन्ध में न्यूटन से कहीं बहुत पहले संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को लेखक उद्धरणों के माध्यम से व्यक्त किया है।

श्री जी० एस० पथिक ने 'नींव के चिरस्मरणीय पत्थर'[3] निबन्ध में राष्ट्र के नव-निर्माण छोटे-छोटे व्यक्तियों के योगदान को भी अत्यन्त पटुता से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है। इस विवरणात्मक घटनाप्रधान लेख में मालवीय जी की महानता का उनकी सहृदयता का वर्णन करने के लिए विद्वान लेखक ने चौधरी लंगड़ूदीन के प्रति उनकी स्नेहसिक्तता तथा चौधरी का उनके प्रति श्रद्धाभाव दिखाया है। लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न है।

---

१. सरस्वती १९५५ ई०, पृ० ७३७
२. वही १९५६ ई०, पृ० ७४१
३. वही १९५६ ई०, पृ० ७४४

श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे का `तिलक-जिनका जीवन अर्पित था`[१] निबन्ध लोकमान्य बालगंगाधर के उत्सर्गपूर्ण साहसिक जीवन का वृतान्त प्रस्तुत करने वाला विषयनिष्ठ, उनकी दार्शनिक चेतना एवं चिन्तन को भी स्पष्ट करता है। गीत के सम्बन्ध में उनका समर्पित व्यक्तित्व तथा उनका अध्ययन गीता-रहस्य में स्पष्ट हुआ है। भाषा-शैली सुबोधमयी है तथा सुग्राह्य है। इस लेख से तिलक के व्यक्तित्व की विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

श्री मनमोहन गुप्त के `पं० मोतीलाल नेहरू ने अखबार की एक प्रति के पांच सौ रूपये दिये`[२] घटना-प्रधान इस लेख में सामान्य बोलचाल की भाषा तथा वर्णनप्रधान शैली में पं० मोतीलाल नेहरू की राजनीतिक अभिरुचि तथा देश स्वातन्त्र्य हेतु संलग्न अखबार की एक प्रति के लिए पांच सौ रूपये कीमत देने का जिक्र करता है। लेख पं० मोतीलाल नेहरू के व्यक्तित्व के अन्य अंगों पर भी प्रकाश डालता है।

डा०उदयनारायण तिवारी के, `पाणिनी के नये उत्तराधिकारी`[३] भाषा वैज्ञानिक इस लेख में भारतीय भाषा शक्तियों को उत्साह दिलाया गया है। पाश्चात्य भाषा-शास्त्रियों की उपलब्धियों तथा प्रयासों के वर्णन के द्वारा लेखक ने व्याकरण विषयक लेख एवं सामग्री का इतिवृत्तात्मक वर्णन किया है। लेख की प्रकृति विषयनिष्ठ, भाषा विशुद्ध खड़ीबोली तथा शैली वर्णनप्रधान है।

---

१. सरस्वती १६५६ ई०, पृ० ७४६

२. वही १६५८ ई०, पृ० ७६७

३. वही , पृ० ७७२

सेठ गोविन्ददास के `उत्तराखण्ड की यात्रा`[1] नामक वस्तुनिष्ठ लेख में सरल किन्तु प्रवाहमयी भाषा शैली में उत्तराखण्ड की यात्रा को भारतीय मानसिकता के साथ सम्पृक्त कर संवहनीय सजीव संस्कृति का प्रतीक बताया है तथा तथ्यपरक आंकड़ों के माध्यम से स्थान विशेष का भौतिक महत्व भी प्रतिपादित किया है ।

डा० श्यामसुन्दरदास का `हिन्दी महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण`[2] विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति वाला यह लेख उनकी कसावट भरी शैली में एक ऐसा स्वरूप ग्रहण करता है जहाँ नारी को सामाजिक रंगमंच पर `तिरिया भूमि खड्ग की चेरी`, `हे सर्वमंगले तुम महती` की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित करता है । लेख की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी सुबोध है ।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने `मेरे आत्मीय नवीन`[3] में अपने मित्र प्रवर बालकृष्ण शर्मा नवीन की मृत्यु से मर्माहत इस लेख में उनके व्यक्तित्व को विश्लेषित किया है । वस्तुत: मार्मिकता के क्षण में नि:सृत कुछ शब्द ही लेखक को भावमय भूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं । सारांशत: लेखक ने अपने बिछोही मित्र के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है जो कि प्रसाद गुण प्रधान इस लेख की अन्तिम पंक्ति में अपना चूडान्त स्वरूप अभिदर्शित करता है --`अब मेरे सिर पर हाथ रखने वाला कोई नहीं रहा ।`

---

१. सरस्वती १९६०, पृ० सं० १६
२. वही १९६०, पृ० सं० ४०
३. वही १९६०, पृ० सं० ३६२

श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने शोधपरक, विषयनिष्ठ निबन्ध `जैन विद्वानों की बौद्ध साहित्य की सेवा`[१] में तथ्यों को आधार बनाकर साहित्योपासना में जैन विद्वानों की उदारता तथा गुणग्राही प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है। न्याय, दर्शन, व्याकरण तथा अन्य शास्त्रों पर बौद्ध साहित्य सेवा में जैन विद्वानों की निष्कपट सेवा इस लेख में सरल,सुबोध भाषा शैली में नियोजित की गई है।

प्रोफेसर देवेन्द्र कुमार जैन ने `विभक्ति और परसर्ग`[२] विद्वतापूर्ण, विश्लेषण प्रधान अपने इस लेख में व्याकरणिक शब्दों का भाषिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। पाद-टिप्पणियों में संस्कृत के मूल विचारों को समायोजित कर लेख का कलेवर नितान्त वैज्ञानिक बनाया गया है। भाषा संस्कृत-निष्ठ तथा शैली विवेचनात्मक है।

प्रोफेसर गौरीशंकर मिश्र `द्विजेन्द्र` `भवभूति की भावाभिव्यक्ति`[३] इस विवेचन प्रधान संस्कृत-निष्ठ लेख में काव्य को बाह्य जगत् में चित्रोपम तथा अन्तर्जगत में मर्मस्पर्शी गुणों की अनिवार्यता से संयुक्त करके भवभूति में उक्त गुणों का चरमोन्मेष अभिदर्शित किया है। संस्कृत साहित्य में भवभूति का स्थान कवियों में निर्दिष्ट करते हुए लेखक का कथन उद्धरणीय है कि --

`कवय: कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकवि: ।`

श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डे का `पंडित मोतीलाल नेहरू एक महान् व्यक्तित्व`[४] एक विवरण प्रधान विषय-निष्ठ निबन्ध है जिससे भारतीय

---

१. सरस्वती १९६० अगस्त, पृ० सं० १३५

२. वही १९६० नवम्बर पृ० सं० ३४४

३. वही १९६१ फरवरी,पृ० सं० ८१

४. वही १९६१ मई ,पृ० सं० ३५२

स्वातन्त्र्य संग्राम के कुछ समय के इतिवृत्त पर प्रामाणिक जानकारियां होती हैं। प्रसाद-गुण सम्पन्न प्रवहमान शैली में लिखित यह लेख पं० मोतीलाल नेहरू के चरित्र के औदात्य को उनकी प्रवृत्तियों एवं सेवाओं के प्रकाश में उद्घाटित करता है।

श्री मनमोहनगुप्त के `देखा सुना`[१] में संस्मरणों को तूलिका से चित्रित करने से जो वैशिष्ट्य स्वत: आगमित हुआ है वह यह है कि लेखक के साथ पाठक घटनाओं में साझेदारी करता है तथा उसके मस्तिष्क पर चित्रोपम शैली ऐसा प्रभाव निरूपित करती है कि पाठक को यत्र-तत्र समाज प्रचलित प्रवृत्तियों एवं शब्दों का सान्निध्य प्राप्त होता है। संस्मरण सामाजिक चेतना से परिप्लुत है।

श्री वेंकटेश नारायण तिवारी ने अपने लेख, `भारत के सर्वश्रेष्ठ गायक तानसेन`[२] में संगीत गायन में निष्णात तानसेन की सांगीतिक प्रतिभा का वर्णन जन-प्रचलित उक्तियों को देकर तथा संगीत के तत्वों की कसौटी पर उनके गायन को विश्लेषित किया है साथ ही साथ इस विषयनिष्ठ निबन्ध में सरल तथा सुबोध शैली में तानसेन के जीवन व्यक्तित्व को भी विवेचित किया है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के `स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्णमिशन`[३] विवरणप्रधान सूचनात्मक इस लेख में विद्वान लेखक ने स्वामी-विवेकानन्द की प्रभावशाली वक्तृत्वशैली का उल्लेख करते हुए उनके जीवन तथा

---

१. सरस्वती सितम्बर १९५१ ई०, पृ० २०५

२. वही नवम्बर १९५१ ई०, पृ० ३२२

३. वही जनवरी १९५३ ई०, पृ० ३५

व्यक्तित्व के सन्दर्भ में अनेक घटनापरक तथ्यों पर विचार किया है । सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में स्वामीविवेकानन्द तथा उनके विचारानुयायियों (रामकृष्णमिशन के कार्यकर्ता) की महनीय सेवायें आदर्शवादिता की परिसीमा में इस कदर सम्मिश्रित हो गई हैं कि वहां मनुष्यमात्र में देवत्व के अनुसन्धान तथा प्रतिष्ठापन का प्रयास दृष्टिगत होता है ।

पं० चन्द्रकान्त बाली के `शककाल: एक नई शोध`[1] शोधपरक संस्कृतनिष्ठ एवं गणनाप्रधान इस तथ्यात्मक विषयनिष्ठ निबन्ध में विद्वान लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं के सापेक्ष शककाल की ऐतिहासिकता विवेचित की है । भाषा-शैली तर्क एवं युक्तिप्रधान है ।

डा० अरविन्द मोहन का `मंगल हमारा रहस्यमय पड़ोसी`[2] वैज्ञानिक शब्दावली व अनुसन्धान के आधार पर विरचित यह लेख अन्तरिक्ष विज्ञान की अनेकानेक घटनाओं को शब्दचित्रित कर तथ्यों के उद्घाटन का सफल प्रयास है । मंगल ग्रह की भौगोलिक स्थिति के सापेक्ष वहां जीवन की संभावना को विवेचित करना इस लेख का लक्ष्य है । लेख की भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा शैली विवरण प्रधान है ।

श्री प्रभुदयाल मीत्तल का, `ब्रजभाषा का एक ज्ञानकोश`[3] शोधपरक निबन्ध, विश्लेषणप्रधान शैली, तर्कपूर्ण निगमित निर्णयों से युक्त यह लेख उस संक्रमणकाल का प्रतिनिधित्व करता है जबकि खड़ीबोली हिन्दी-साहित्य में ब्रज भाषा को स्थानच्युत करने में प्रयत्नशील थी । दम्पत्ति वाक्य-विलास` नामक

----

१. सरस्वती फरवरी १९६३ ई०, पृ० १२३

२. वही मार्च १९६३ ई०, पृ० २५५

३. वही जून १९६३ ई०, पृ० ५०३

ग्रन्थ के उल्लेख से विद्वान लेखक ने सामाजिक ज्ञान सम्बन्धी तथ्यों से ब्रजभाषा काव्य के पूर्ण निरूपित किया है ।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद शर्मा का `परमाणु उर्जा की उत्पत्ति और विकास`[1] निबन्ध सरल भाषा तथा सुबोध शैली में विरचित है । इस लेख में प्रसादगुण का प्राधान्य है । वैज्ञानिक शब्दावली से युक्त यह विवेचनात्मक तथा सूचनाप्रधान निबन्ध मानव जीवन में ऊर्जा की प्रयोजनीयता तथा उपयुक्तता का तर्कसंगत विश्लेषणपरक अध्ययन करवाता है ।

श्री केशवानन्द ममगाई का `हिन्दी के पहले डी० लिट्- डा० पीताम्बर बड़थ्वाल`[2] निबन्ध संस्मरण, जीवनवृत्त तथा व्यक्तित्व विश्लेषण के गुणों से परिपूर्ण अपनी शैली के मार्दव एवं औदात्य के लिए उल्लेखनीय है । विद्वान लेखक ने यत्र तत्र डा० बड़थ्वाल की साहित्यिक उपलब्धि को उद्धरणों एवं उपयुक्त उदाहरणों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । लेख में बड़थ्वाल की न केवल जन्मभूमि अपितु कर्मभूमि से सन्दर्भित भौगोलिक जानकारियां दी गई हैं । हिन्दी साहित्य के `शोध` क्षेत्र में इस लेख की मूल्यवत्ता ऐतिहासिक है ।

प्रोफेसर राजनाथ पाण्डेय का, `नेपाली भाषा के प्रथम कवि भानुभक्ताचार्य`[3] शोधपरक ऐतिहासिक निबन्ध जो कि नेपाली भाषा के प्रथम कवि कृतित्व एवं व्यक्तित्व का घटनापरक उदाहरणसहित विश्लेषण प्रस्तुत करता है । इस नेपाली कवि के द्वारा सृजित रामकथा का स्थान एवं युग सापेक्ष विवरण विवेचनात्मक शैली में अत्यन्त नैपुण्य के साथ सम्पादित किया गया है ।

---

१. सरस्वती १९६४ अगस्त, पृ० १३१

२. वही १९६४ दिसम्बर, पृ० ५२७

३. वही १९६४ फरवरी, पृ० १३९

प्रो० कुबेरनाथ राय हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ निबन्धकार ने `सनातन का पुनर्गठन`[1] इस लेख में संस्कारों का वह कोलाहल लेखनी के माध्यम से प्रतिध्वनित हुआ है जिसे कि हिन्दुत्व का वास्तविक भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है। हिन्दू पुनर्जागरण की निष्कम्प दीपशिखा के आलोक में राजनैतिक घटनाओं के आधार में सांस्कृतिक अवचेतन की कचोट इस लेख में भावपूर्ण तथा तर्कानुमोदित शैली में निष्पन्न हुई है।

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा के `बिहारी का काव्य और युग`[2] विश्लेषण प्रधान इस निबन्ध में लेखक ने बिहारी के काव्य की महत्ता का उपादान गुणवत्ता एवं गुणग्राहिता को ही निर्णीत किया है न कि काव्य या साहित्य सर्जन के परिमाणात्मक स्वरूप को। उपयुक्त उद्धरणों का यथास्थान सन्निवेश कर लेखक ने बिहारी के काव्य-सौष्ठव को वर्णित किया है।

डा० रामगोपाल शर्मा `दिनेश` के `आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का अनूदित शिवकाव्य`[3] निबन्ध में हिन्दू काव्य परम्परा एवं काव्य-धर्मिता में शिवकाव्य की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए द्विवेदी जी द्वारा अनुदित तीन संस्कृत शिवकाव्यों `महिम्न स्तोत्र`, `गंगालहरी` व `कुमारसंभव` के अनुवाद में द्विवेदी जी की दक्षता तथा उदारता को प्रतिबिम्बित करने वाला यह लेख गवेषणात्मक शैली में लिखा गया है। भाषा में मार्दव तथा शैली में सहज प्रवाह है।

प्रोफेसर श्याम वर्मा का, `हिन्दी की साहित्यिक रचनाओं में

---

१. सरस्वती, अप्रैल १९६४ ई०, पृ० ३२१

२. वही , जनवरी १९६५ ई०, पृ० ५५

३. वही, फरवरी १९६५ ई०, पृ० १३४

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग [1] उपर्युक्त उद्धरणों से समन्वित यह विवेचनात्मक लेख भाषा वैज्ञानिक शोध की प्रकृति से परिप्लावित है । हिन्दी की साहित्यिक अस्मिता के संरक्षण हेतु अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में ठूंसना राष्ट्रघात है । लेखक ने अंग्रेजी शब्द प्रयोग को अनुचित माना है तथा ऐसे किस्म के साहित्यकारों को समष्टिहित से आंख मूंद कर व्यष्टिवादी जीवन जीने वाला बताया है । भाषा में खण्डनात्मक प्रवृत्ति के कारण अनायास ही ओजस्वर प्रधान हो गया है ।

डा० विश्वनाथप्रसाद वर्मा का, `वैदिक राजनीतिशास्त्र का दार्शनिक विवेचन` [2] सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुशीलन प्रस्तुत करने वाला यह संस्कृतनिष्ठ शैली में लिखित लेख वस्तुत: संहिताओं को आधारग्रन्थ बनाकर अग्रसरित होता है । वैदिक राजनीतिशास्त्र की दार्शनिक व्याख्या करने का दुरूह कार्य विद्वान लेखक ने प्रस्तुत किया है । लेख से गहन अध्ययन तथा मनन का आभास एवं विश्वास होता है । लेख की शैली तर्कपूर्ण तथा लेख विषयनिष्ठ प्रकृति का है ।

डा० प्रेमप्रकाश गौतम का, `तुलसी की काव्यदृष्टि एवं हिन्दी आलोचना` [3] निबन्ध आलोचना के प्रतिमान पर तुलसी की काव्यदृष्टि का मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाला, विषयनिष्ठ प्रकृति का है । लेखक ने काव्यतत्वों पर तुलसी की काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं को सोदाहरण विवेचित किया है । लेखक के अध्ययन का आधार प्रमुखतया `रामचरितमानस` और `विनयपत्रिका` ही रहा है ।

---

१. सरस्वती, अप्रैल १९६५ ई०, पृ० ३०९
२. वही , जून १९६५ ई०, पृ० ४४१
३. वही , मार्च १९६६ ई०, पृ० १९६

श्री मूरचन्द जैन का, 'सिसकते पाषाणों की नगरी किराडू'[१] निबन्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों की अवली में राजस्थान का 'किराडू' स्थान अनेक जानकारियों को अन्तर्मुक्त किए हुए है। वस्तुत: शौर्य एवं शृङ्गार का परम्पराश्रित सम्बन्ध कलाप्रियता का कारक होता है। इस लेख में सहज सुबोध शैली में बारहवीं शताब्दी ईसा पूर्व के किरात कूप के कलात्मक ऐश्वर्य तथा उसके आज पाये जाने वाले भग्नावशेषों का मार्मिक वर्णन प्राप्त होता है।

डा० विद्यावती मालविया का, 'कबीर की उलटबासियां सिद्धों की देन'[२] निबन्ध कबीर की वाणी में प्राप्त होने वाली उलटबासियों को बौद्ध-साहित्य तथा सिद्धों की देन निरूपित करने वाला, तथ्यपरक, उद्धरणों से युक्त, तथा अन्य विद्वानों की मान्यताओं एवं विचारों पर तर्क से निर्णयों पर निर्मित शोधपरक है। अध्ययनशील व्यक्तित्व को स्पष्ट करने वाला यह लेख कबीर साहित्य मीमांसा का एक प्रयास है।

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा विचारशील लेखक ने 'चन्द्रमा पर मनुष्य के चरण'[३] विषयनिष्ठ निबन्ध में मानवीय चिरन्तन मान्यताओं से निहित जिज्ञासाभाव की परिपूर्णता को वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा सम्भव होते देखकर तथ्यपरक विवरण प्रस्तुत किया है। चन्द्रमा पर पहुंचने के प्रयासों का इस लेख में विकासात्मक विवरण है। यह लेख विषय से सम्बन्धित तमाम सारे आंकड़े प्रस्तुत करता है।

---

१. सरस्वती, मार्च, १९६९ ई०, पृ० २३३

२. वही , अगस्त, १९६९ ई०, पृ० १२३

३. वही , अगस्त, १९६९ ई०, पृ० ३९०

श्री मण्डन मिश्र के `प्रशान्त महासागर में लघु भारत`[1] निबन्ध में प्रशान्त महासागर के अनेकानेक द्वीप-समूहों में भारतीय संस्कृति के विधायक तत्वों को अन्वेषित कर विद्वान लेखक ने इस विषयनिष्ठ निबन्ध में प्रसादगुण प्रधान भाषा शैली में फिजी, चीन, हिन्दचीन, कम्बोडिया, थाईलैण्ड,मलाया, मलक्का प्रभृति देशों के रीति-रिवाज, संस्कार, पर्व-त्योहारों में भारतीयता को जीवन्त रूप में अभिवर्णित किया है ।

डा० रूपचन्द्र पारीक ने `हिन्दी साहित्य का एक विस्तृत पर महत्वपूर्ण कविवृत्त संग्रह`[2] निबन्ध में भाषिक एवं साहित्यिक इतिवृत्त को अध्ययन का आधार बनाकर इस शोधपरक लेख में `भाषा-काव्य संग्रह` के अस्तित्व एवं महत्व को निरूपित किया है । शिवसिंह सेंगर कृत `शिवसिंह सरोज` के मूलकारण एवं प्रसिद्धि का आधार लेखक ने भाषाकाव्य संग्रह को ही माना है । हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में इसकी महत्ता अक्षुण्ण तथा गौरवपूर्ण है ।

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा का `श्रीलंका और भारत`[3] निबन्ध मई १९७२ में श्री लंका के स्वतन्त्र गणराज्य बनने पर राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना से सम्पृक्त विषयनिष्ठ लेख श्री लंका की भौगोलिक स्थिति, प्रगति, साहित्यिक उपलब्धि तथा धार्मिक मान्यताओं का उदाहरण सहित, आंकडेपरक तथा यथातथ्य विवरण प्रस्तुत करता है । लेख की भाषा-शैली में विषयानुरूप कसावट तथा प्रवाह है ।

डा० रेनु सिंह चौहान के `ब्रजभाषा का रेखता साहित्य`[4]

---

१. सरस्वती ,जनवरी १९७२ ई०, पृ० ४३
२. वही , मार्च १९७२ ई०, पृ० १९५
३. वही ,सितम्बर १९७२ ई०, पृ० १८३
४. वही ,नवम्बर १९७२ ई०, पृ० ३४८

निबन्ध में `रेखता` की शाब्दिक एवं व्युत्पत्तिपरक अर्थवत्ता को स्पष्ट करते हुए उर्दू भाषा-काव्य के संसर्ग से हिन्दी काव्यक्षेत्र विशेषत: ब्रजभाषा काव्य में रेखता की तर्ज की कविता का प्रचलन दिखाया है। घनानन्द जी ने इस प्रकार के काव्य को विरह लीला के माध्यम से स्वर दिया तथा वह तत्कालीन एवं परवर्ती हिन्दी ब्रजभाषा कवियों के माध्यम से प्रकृति, भक्ति, दर्शन, तथा अनेकानेक क्षेत्रों में अभिसारित हुई। लेख शोधपरक तथा भाषा-शैली सरल तथा सुबोधपरक है।

श्री विजयलक्ष्मी मिश्रा का `बुन्देलखण्डी लोक गीतों में रामचरित्र`[1] विषयनिष्ठ लेख, भारतीय संस्कार में रामचरित्र की पावनता अपने औदात्य के समावेश के कारण प्रभुविष्णु क्षमता रखती है। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों से इस स्वाभाविक सम्पृक्ति एवं संस्कृति इस लेख में सुबोध शैली तथा प्रसादगुण सम्पन्न भाषा में अभिव्यक्त की गई है। स्थानोचित उद्धरणों को प्रस्तुत कर लेख की कथनधर्मिता में चरितार्थता के पक्ष को परिपुष्ट किया गया है।

डा० दामोदर झा के `श्रीमद्भागवत में कालगणना`[2] में भक्तिरस प्रधान इस महाग्रन्थ में आनुषंगिक रूप से काल विज्ञान तथा ज्योतिष का प्रयोग अभिदर्शित करने के लिए लेखक ने इस शोधपरक लेख में कालगणना के विभिन्न अवयवों एवं कालगणना की प्रणाली का सप्रमाण अध्ययन अपनी विद्वतापूर्ण विश्लेषण-परक शैली में प्रस्तुत किया है। निष्कर्षत: लेखक ने श्रीमद्भागवत् की कालगणना को अत्यन्त वैज्ञानिक तथा ज्योतिष के सिद्धान्तों पर समीचीन माना है।

श्री कुबेरनाथ राय के `नटराज`[3] विषयनिष्ठ निबन्ध में चिन्तन

---

१. सरस्वती, फरवरी १९७३ ई०, पृ० १३८
२. वही , मार्च १९७३ ई०, पृ० १८०
३. वही , अगस्त १९७३ ई०, पृ० ९७

की प्रणाली सर्वथा नवीनता एवं तरंगमयता से परिपूर्ण है । `नटराज` का विवेचन कला, स्थापत्य, धर्म तथा दर्शन के आलोक में सामाजिकता के सापेक्ष किया गया है । लेख की भाषा तर्कप्रधान, प्रसादगुण सम्पन्न तथा शैली विषयानुरूप है ।

श्री यमुनादत्त वैष्णव `अशोक` का `सुमेरु सम्यता पर भारतीय प्रभाव`[१] शोधपरक, साक्ष्य सम्मत ऐतिहासिक लेख है । इस लेख में प्राचीन विश्व सम्यता के सापेक्ष विवेचन करते हुए तर्क-प्रणाली पर आश्रित शैली द्वारा दजला-फरात की घाटी में विकसित सुमेरियन सम्यता पर भौगोलिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भारतीयता का संकेत किया गया है तथा सुमेरियन सम्यता के साथ इस प्रकार साहचर्य की घोषणा कर लेखक ने उस सम्यता पर भारतीय प्रभाव निरूपित किया है ।

श्री हरिशंकर चतुर्वेदी का `महाकवि कृत्तिदास व उनकी रामायण`[२] विषयनिष्ठ लेख, रामचरित की बंगला रामायण के लिखने वाले कवि कृत्तिदास का परिचय उनकी कलात्मक प्रतिभा के उद्घाटन द्वारा हुआ है । काव्य की भाषा प्रांजल, शैली सुबोध तथा तथ्यपरक है । तुलनात्मक समीक्षा का यह लेख उदाहरण है ।

श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी का `अपघर्षक पदार्थ`[३] वैज्ञानिक लेख है । इस लेख में कठोरता तथा तीखेपन की गुणवत्ता धारण करने वाले पदार्थों के द्वारा मानवोपयोगी जनजीवन की वस्तुओं के निर्माण एवं उपादेयता का वर्णन किया गया है । लेख की भाषा विषयोपयुक्त है । इसमें यत्र-तत्र वैज्ञानिक

----

१. सरस्वती, नवम्बर १९७३ ई०, पृ० ३८१
२. वही , फरवरी १९७४ ई०, पृ० ११८
३. वही, मार्च १९७४ ई०, पृ० २०४

एवं तकनीकी शब्दावली का प्रयोग है । लेख की शैली प्रवाहमयी तथा सुगम है । कथन भंगिमा के बजाय सपाट बयानी का ही आश्रय लिया गया है ।

श्री निरंकुश का 'बहस जारी रहेगी'[1] निबन्ध आत्मनिष्ठ तथा चिन्तनप्रधान है । व्यंग्यों के माध्यम से सामाजिक विद्रूपताओं पर आक्षेप लगाये गये हैं । लेखक ने अपनी पूरी जिन्दादिली व तरंगमयता को इस लेख में अभिचित्रित किया है । उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग इस लेख में प्राप्त होता है जो उस सामाजिक स्थिति का उद्घाटन करती है जिसके तहत ज्ञात होता है कि अदालतों की भाषा प्राय: उर्दू बहुल शब्दों की थी ।

श्री राजमणि राय का 'प्राचीन भारत में ग्राम शासन'[2] शोधपरक ऐतिहासिक एवं राजनीतिक लेख जोकि शास्त्रानुमोदित है । लेख की भाषा संयत तर्कप्रधान तथा शैली गवेषणात्मक है । ग्राम शासन को भौगोलिक सीमाओं के अनुसार भी वर्गीकृत किया गया है तथा वर्णन तथ्यपरक तथा विद्वतापूर्ण है ।

डा० बालेन्दुशेखर तिवारी का 'हिन्दी की हास्य कविता का विकास'[3] हास्य कविता का हिन्दी साहित्य में विकासात्मक इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाला यह शोधपरक लेख अनेकानेक उद्धरणों से अलंकृत है । इस लेख में लेखक ने कालपरक विवरण देते हुए हास्यकविता के विकास में साधक व बाधक अवयवों का युक्तिसंगत विवेचन किया है । लेख की भाषा शैली में समालोचनात्मक दृष्टि का दर्शन होता है ।

डा० अमरेन्द्रनाथ राय के 'बीस सूत्रीय कार्यक्रम एवं ग्रामउद्योग'[4]

----

१. सरस्वती, अगस्त १९७४ ई०, पृ० १७३

२. वही , नवम्बर,१९७४ ई०, पृ० ३४०

३. वही , जनवरी-मार्च, १९७६ ई०, पृ० २४

४. वही , अप्रैल-जून, १९७६ ई०, पृ० १५५

निबन्ध में समय की करवट के साथ साहित्य का मूल स्वर भी संपरिवर्तित हो जाता है। वह विविधमुखी तो होती ही है तथा राष्ट्रीय उत्थान की सरकारी कोशिशों को वह समाज कल्याण के लिए अपरिहार्य घोषित करता है। इस प्रकार से यह लेख सूचनात्मक हो जाता है। प्रस्तुत लेख राष्ट्रोन्नति हेतु कुटीर उद्योग की आवश्यकता पर बल देता है। लेख की भाषा-शैली सहज व सामान्य है।

श्री चन्द्रप्रकाश मिश्र का 'रामायण में परराष्ट्र नीति'[1] विश्लेषणपरक, शोधपरक प्रवृत्ति का यह लेख महर्षि कवि वाल्मीकि विरचित रामायण में राजनीति के उस पहलू पर विद्वतापूर्ण विवरण प्रदान करता है जोकि परराष्ट्र नीति या विदेशनीति के रूप में अभिज्ञेय है। भाषा-शैली प्रसादगुण सम्पन्न किन्तु संस्कृत के उद्धरणों से युक्त है।

डा० रामशंकर शर्मा ने 'पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का साहित्य दर्शन'[2] निबन्ध में हिन्दी साहित्य में संस्कारक साहित्यकारों में अग्रगण्य द्विवेदी जी की साहित्यिक मान्यताओं का वर्णन किया है। साहित्य-साधना राष्ट्र-साधना है और इसका तात्पर्य है जनसमूह का उत्थान। वस्तुत: साहित्य ने भारतीयता का प्रतिनिधित्व करने वाले द्विवेदी जी के साहित्य दर्शन में उनका अजेय व्यक्तित्व ही दीख पड़ता है।

डा० उदयनारायण तिवारी हिन्दी साहित्य के विख्यात भाषा-विद् हैं। उनके तथ्यपरक, विषयनिष्ठ लेख 'आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : एक संस्मरण'[3] मे महान् साहित्यकार के प्रति श्रद्धांजलि है जिसके कृतित्व एवं

---

१. सरस्वती, सितम्बर १६७६ ई०, पृ० ६६

२. वही , अक्टूबर १६७६ ई०, पृ० १५७

३. वही , जुलाई १६७६ ई०, पृ० ६

व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए सद्गुणों को अभिव्यक्त करने वाले विशेषणों की कमी पड़ जाती है। लेख की भाषा-शैली विषयोपयुक्त सहज है।

श्री रामचन्द्र मालवीय का `कविता में भाव और अभिव्यक्ति`[1] निबन्ध साहित्यिक है। काव्य की चेतना और उसकी पृष्ठभूमि के साथ-साथ उसके परिणाम व प्रभाव को स्पष्ट करने वाला यह लेख विषयनिष्ठ होते हुए भी मौलिक चिन्तन एवं विचारों से युक्त है। लेख में समीक्षात्मक दृष्टि का सर्वत्र आधिपत्य है।

डा० रामशंकर द्विवेदी ने `हिन्दी में पत्र-साहित्य`[2] निबन्ध में पत्र-साहित्य को विकसित होने की अवस्था में अर्थात् अपरिपक्व अवस्था में ही चित्रित किया है। पत्र-साहित्य का इतिवृत्त इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। अत: यह शोधपरक सूचनात्मक लेख है। भाषा प्रसादगुण सम्पन्न तथा शैली यथास्थान उद्धरणयुक्त एवं प्रवाहमयी है।

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया का `पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता की समस्या`[3] निबन्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी को व्यवहारिक स्तर पर सार्वजनीन बनाने का प्रयत्न करने वाला, आवश्यकतापरक दृष्टिकोण से लिखा गया है। विवेचना तथा विश्लेषण का आश्रय लेते हुए इस लेख का मूल स्वर भाषा वैज्ञानिक है। इस क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रयासों का जिक्र अत्यन्त भावपूर्ण रीति से तथ्यपरक होकर अभिप्रस्तुत किया गया है।

---

१. सरस्वती, अगस्त, १६७६ ई०, पृ० ८२
२. वही , सितम्बर, १६७६ ई०, पृ० १२३
३. वही , दिसम्बर, १६७६ ई०, पृ० २६२

डा० हर्षनन्दिनी भाटिया के `पन्त जी की कोमल भाषा`[1] इस लेख में प्रसादगुण सम्पन्न भाषा व प्रवाहमयी शैली के माध्यम से पन्त जी के काव्यकृतियों व पन्त जी का भाषा के सन्दर्भ में विचार विवेचित किया गया है। निष्कर्षत: हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में भाषा की आर्द्रता, मसृणता, स्निग्धता तथा प्रांजलता को पन्त जी का ही दाय बताया गया है।

श्री कृष्णदत्त का `लेन-देन`[2] व्यक्तिनिष्ठ लेख, तरंगमयता से परिपूर्णभाषा शैली में विरचित है। इस लेख में संस्मरणों को परस्पर संवेष्टित कर सामाजिक चेतना को अभिदर्शित किया गया है। लेखक की विवशता वह भी दूसरों की त्रुटि से लेख में व्यंग्यभाव को तथा स्मितहास्य को अन्तर्विष्ट कराती है।

श्री विश्वम्भर `मानव` के `अस्तित्ववाद`[3] निबन्ध में फ्रान्स के ज्यापाल सार्त्र की दार्शनिक मान्यताओं का साहित्य में विशेषत: हिन्दी साहित्य में प्रयोग किस प्रकृति एवं मात्रा में हुआ इसका चित्रण हुआ है। लेखक ने आस्तिकता में संकोच तो व्यक्त किया है किन्तु नास्तिकता से इन्कार भी किया है। लेख की भाषा-शैली तर्कसंगत तथा प्रवाहपूर्ण है।

डा० रामस्वरूप `रसिकेश` ने `वैदिक-युग में सुरापान`[4] निबन्ध में मद्यनिषेध के सामाजिक नारे में जिसमें कि राजनीतिक स्वर मुख्य था लेखक को वैदिक युग में सुरापान की प्रणाली, परम्परा व विधि के सन्दर्भ में जानकारी के लिए प्रेरित किया। यह शोधपरक लेख संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली में उद्धरणों से समन्वित है।

---

१ `सरस्वती`, १९७९
२ वही , १९८०
३. वही , १९७९
४. वही , १९८०

अध्याय ६

अन्य गद्य रूप

अन्य गद्य रूप

उपन्यास —

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता दृष्टिगोचर होता है । पहला १९५० ई० तक के उपन्यास जो फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित हैं, दूसरा १९५० ई० से १९६० तक के उपन्यास जो आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित है, तथा तीसरा साठोत्तरी उपन्यास ।

फ्रायड से प्रभावित होकर जिस कथा-साहित्य की रचना की गयी, उसकी पृष्ठभूमि जैनेन्द्र पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे । जहाँ प्रेमचन्द ने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत होने के प्रश्न को अधिक महत्व दिया वहाँ जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभारकर सामने रखा । आलोच्य युग में प्रकाशित उनके उपन्यासों में -- कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन आदि हैं ।

जैनेन्द्र जी के उपरान्त अज्ञेय जी का नाम आता है । इनके `शेखर: एक जीवनी ` (१९४१) उपन्यास प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास दिशा में एक नया मोड़ आया जिसे आधुनिकता की संज्ञा दी जाती है, उसका सर्वप्रथम समावेश इसी उपन्यास में दिखाई देता है । इनके दूसरे उपन्यास `नदी के द्वीप ` (१९५१), `अपने-अपने अजनबी` आदि हैं ।

जहाँ जैनेन्द्र और अज्ञेय फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं वहाँ इलाचन्द्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से । इनके उपन्यासों में `सन्यासी`, `पर्दे की रानी `, `प्रेत और छाया`, `मुक्तिपथ`, `जहाज का पंछी `, `ऋतुचक्र ` आदि मुख्य हैं ।

प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना लिया है। उनका प्रारम्भिक जीवन क्रान्तिकारी दल से सम्बद्ध था फलस्वरूप मार्क्सवादी विचारधारा का उन पर प्रभाव पड़ा। इनके `अमिता और दिव्या`, `दादा कामरेड `, `मनुष्य के रूप`, `झूठा सच ` आदि हैं।

यशपाल जी की परम्परा के उपन्यासकारों में रामेश्वर शुक्ल `अंचल` का नाम उल्लेखनीय है। `चढ़ती धूप`, `नयी इमारत`, `उल्का` और `मरुप्रदीप` उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास प्रेमचन्द की परम्परा में रखा जा सकता है। इनके उपन्यासों में `टेढ़े-मेढ़े रास्ते `, `आखरी दांव `, `रेखा `, `सबहिं नचावत राम गुसाईं ` मुख्य हैं। वर्मा जी की भाँति उपेन्द्रनाथ अश्क को भी प्रेमचन्द परम्परा का उपन्यासकार कहा जा सकता है, पर समग्र अर्थ में वे इस परम्परा से जुड़ नहीं पाते। इनके उपन्यासों में `गिरती दीवारें ` सर्वोत्तम है। इनके अतिरिक्त `शहर में घूमता आईना`, `एक नन्ही कन्दील `, `गरम राख` उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

इधर के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर विशेष स्थान रखते हैं। इनके उपन्यासों में `बूंद और समुद्र `, `अमृत और विष `, `शतरंज के मोहरे`, `सुहाग के नूपुर `, `मानस का हंस `, मुख्य हैं जिनमें व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया है।

हिन्दी-उपन्यासों के विकास के इस दौर में इतिहास सम्बन्धी नया दृष्टिकोण सामने आया। इनमें वृन्दावनलाल वर्मा ने यों तो सामाजिक उपन्यास भी लिखे किन्तु इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में `विराट की पद्मिनी`, `झांसी की रानी`, `कचनार`, `मृगनयनी` मुख्य हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के दूसरे उल्लेखनीय नामों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं । इनके 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख' उपन्यास उल्लेखनीय हैं । यशपाल कृत 'दिव्या' कल्पनाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास है । राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, तथा चतुरसेन शास्त्री के 'सिंह सेनापति', 'जययौधेय', 'वैशाली की नगरवधू' उल्लेखनीय हैं ।

ग्रामांचल के उपन्यासों को आंचलिक कहकर सीमित कर दिया जाता है । फणीश्वररेणु का 'मैला आंचल', नागार्जुन का 'बलचनमा', 'बाबा बटेरनाथ', 'दुखमोचन', उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा आदि उल्लेखनीय हैं ।

मनोविज्ञान को प्रमुखता देने वाले उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती, देवराज हैं । इसी प्रकार सामाजिक चेतना के उपन्यासकारों में मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायणलाल, राजेन्द्र यादव आदि हैं । कविता में नये प्रयोगों के साथ-साथ कहानी, उपन्यास आदि में भी नये प्रयोगशील उपन्यासों की रचना हुई जिन्हें प्रयोगशील उपन्यास कहा गया । इन उपन्यासों में प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद मिश्र, गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि के उल्लेखनीय उपन्यास हैं । आधुनिकता बोध के उपन्यास जिनमें यन्त्रीकरण, दो महायुद्धों, और अस्तित्ववादी चिन्तन के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसे लेकर भी उपन्यासों की रचना हुई । इस प्रकार के उपन्यासकारों में मोहन-राकेश, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी, नरेश मेहता, श्री लाल शुक्ल, मन्नू भंडारी, भीष्म सहानी, शिवानी, गिरिराज किशोर, रमेश बक्षी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, मधुकरगंगाधर, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित आदि का नाम उल्लेखनीय है ।

नाटक —

हिन्दी नाटक रंगमंच और जीवन के यथार्थ से जुड़कर नयी दिशा की ओर उन्मुख हुआ। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी यह प्रयास किया था परन्तु उस प्रारम्भिक विकास-काल में उनके नाटकों से बड़ी अपेक्षाएं नहीं की जा सकती थीं। भारतेन्दु जी के उपरान्त जयशंकरप्रसाद जी को दिशा-प्रवर्तक नाटककार माना जा सकता है, किन्तु नाटकों को रंगमंच नहीं मिला।

वस्तुत: उपेन्द्रनाथ अश्क पहले नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांस के कठघरे से निकालकर किसी सीमा तक आधुनिक भावबोध के साथ जोड़ा। इनके नाटकों में छठा बेटा, (१९४०), कैद (१९४५), उड़ान (१९४६) आदि उल्लेखनीय हैं। अश्क जी की सर्वाधिक प्रौढ़ नाटकीय कृति `अंजो दीदी` (१९५४) है।

अश्क जी के उपरान्त विष्णुप्रभाकर का नाम उल्लेखनीय है। इनके द्वारा विरचित `डाक्टर` बहुचर्चित नाटक है। नाटक के विकास से अन्य कई नाटककारों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता जिनमें जगदीशचन्द्र माथुर, जिनका `कोणार्क` तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित नाटक `शारदीया` उल्लेखनीय है।

आधुनिक भावबोध को रूपायित करने वाले नाटककारों में धर्मवीर भारती, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, मोहन राकेश आदि मुख्यरूप से आते हैं। धर्मवीर भारती जी का गीति नाट्य `अन्धा युग` (१९५५), डा० लक्ष्मीनारायणलाल का `अन्धाकुआं` (१९५५), मादा कैक्टस (१९५९), मिस्टर अभिमन्यु (१९७१), करफ्यू (१९७२) आदि तथा मोहन राकेश का `आषाढ़ का एक दिन` (१९५८), `लहरों के राजहंस` (१९६३),

आधे-अधूरे (१९६९) आदि उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त नाटककारों के अतिरिक्त सेठ गोविन्दास, लक्ष्मीनाराय मिश्र, हरिकृष्ण `प्रेमी`, गोविन्दवल्लभ पन्त, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विनोद रस्तोगी, नरेश मेहता, मन्नूभंडारी, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद `मिलिन्द`, शिवप्रसाद सिंह तथा ज्ञानदेव अग्निहोत्री मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

सेठ गोविन्ददास ने `कर्ण` (१९४२), `शशिगुप्त` (१९४२) आदि पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों और `हिंसा और अहिंसा` (१९४०), `सन्तोष कहां` (१९४१) आदि सामाजिक नाटकों की रचना की है, जिनमें यथार्थ का तीखापन न होकर आदर्श का स्वारस्य है। गोविन्दवल्लभपन्त ने दो उल्लेखनीय नाटकों की रचना की - पहला `ययाति` (१९४७) और `सुहागबिन्दी` (१९४०), चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का `न्याय की रात`, विनोद रस्तोगी का `आजादी के बाद` तथा `नया हाथ`, उल्लेखनीय है। नरेश मेहता का `सुबह के घन्टे`, `खंडित यात्राएं`, तथा मन्नू भण्डारी का `बिना दीवार का घर`, उदयशंकरभट्ट का `शक विजय` (१९५३), `क्रान्तिकारी` (१९५४), जगन्नाथप्रसाद `मिलिन्द` का `समर्पण` (१९५०), `गौतम बन्द`, (१९५२), शिवप्रसाद सिंह का `घाटियां गूंजती हैं`, तथा ज्ञानदेव अग्निहोत्री का `नेफा की एक शाम` आदि नाटक अविस्मरणीय हैं।

एकांकी --

छायावाद-युग तक हिन्दी-एकांकी दो सीमान्त पार कर चुका था। १९३६ ई० में दिल्ली में और १९३८ ई० में लखनऊ में आकाशवाणी के अस्तित्व में आने के फलस्वरूप पहले उर्दू- लेखकों और फिर १९४० ई० के

लगभग हिन्दी लेखकों को भी रेडियो पर एकांकियों के प्रसारण का अवसर दिया गया था । इसके पूर्व 'हंस' के एकांकी नाटक विशेषांक में श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपने एक पत्र में लिखा है -- 'मेरी स्थापना यह है कि एकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी (जो और किसी की न हो) टेकनीक न तो अभी तक बन पायी है और न बन सकती है ।'[1] इसी अंक में अश्क जी ने एकांकी को नाटक, कहानी और संभाषण से पृथक् एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकृति दी किन्तु जैनेन्द्र जी ने इसके विरुद्ध अपने विचार प्रकट किए कि, 'भारत में एकांकी परिस्थितियों की सहज उपज नहीं है -- विलायतवाले अपनी जानें । उनके हालात यहां से जुदा हैं ।..... किसी बाह्य रूप को, जब तक वह अन्त:प्रेरित न हो, खींच लाने का आग्रह जरूरी नहीं है ।'[2]

किन्तु यह उल्लेखनीय है कि भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा, उदयशंकरभट्ट, अश्क, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि एकांकी-लेखन का समारम्भ प्राय: १६३५-३६ के लगभग कर चुके थे, पर इनमें अधिकांश के मुख्य एकांकी-संकलन १६४० ई० के बाद ही प्रकाशित हुए ।

छायावादोत्तर काल में प्रकाशित एकांकियों में भुवनेश्वर का 'तांबे के कीड़े', 'आजादी की नींद', रामकुमार वर्मा का 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'दीपदान', 'ऋतुराज', 'इन्द्रधनुष', 'कौमुदी महोत्सव' १६४० ई० के बाद प्रकाशित हुए । उदयशंकरभट्ट का 'स्त्री का हृदय',

----

१. 'हंस' मई, १६३८ ई०

२. वही ।

इधर के एकांकीकारों में विष्णुप्रभाकर, जिन्होंने आदर्शवाद, सांस्कृतिक चेतना नैतिक मूल्यों और मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर सामाजिक एकांकियों की रचना की है। इनके एकांकियों में `प्रकाश और परछाई`, `इन्सान`, `क्या वह दोषी था` आदि उल्लेखनीय है। धर्मवीर भारती `नदी प्यासी थी`, मोहन राकेश `अंडे के छिलके` तथा लक्ष्मीनारायणलाल का `ताजमहल के आंसू` आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं-- उपन्यास, नाटक, एकांकी और नवीन गद्य रूपों का सम्यक् प्रतिनिधित्व `सरस्वती-पत्रिका` द्वारा नहीं हो सका है। कारण यह है कि जहां उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि विधाएं रचनात्मक दृष्टि से वृहत् होती हैं और मासिक-पत्रिका के कलेवर में वे उपयुक्त नहीं बैठतीं, वहीं अन्य गद्य-रूप जैसे रेडियो रूपक, रिपोर्ताज़ आदि सर्वथा नवीन गद्य रूप हैं। फिर भी उपन्यास साहित्य का प्रतिबिम्ब `सरस्वती` में पं० ठाकुरदत्त मिश्र तथा निशीथ कुमार राय आदि के अनुदित और मौलिक उपन्यासों द्वारा हो जाता है। इसी प्रकार नाटक-साहित्य का प्रतिनिधित्व भी डा० हरिदत्त भट्ट और एकांकी साहित्य का प्रतिनिधित्व योगेन्द्र शर्मा, प्रोफेसर चन्द्रप्रकाश वर्मा, डा० धर्मवीर, मधुकर खरे और जितेन्द्र कुमार तथा कुमारी विपुला देवी, रामेश्वरदयाल दुबे, श्री सम्सुद्दीन आदि के एकांकियों द्वारा हो जाता है। अब हम `सरस्वती-पत्रिका` में उपलब्ध प्रस्तुत गद्य-रूपों पर प्रकाश डालेंगे —

<u>उपन्यास -</u>

पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र द्वारा अनुवादित `रिक्ता`[1] उपन्यास में सविता एक डिप्टी कलक्टर की कन्या थी। बुटपन में ही पिता की गोद से बिछुड़ जाने के बाद समृद्ध और साधन-सम्पन्न पितृव्यों से उपेक्षित होने के

---

१. सरस्वती १६३६, पृ० ५६६

कारण उसे माता के साथ अपने धनहीन किन्तु सम्मान-प्रिय एवं धर्मप्राण नाना के ही यहां आश्रय लेना पड़ा । इसलिए शिक्षा और सदाचार से युक्त होने पर भी ऊपरी तड़क-भड़क से वह वांछित रही और यही कारण था कि अपने सुशिक्षित और रूप-गुण सम्पन्न पति के प्रिय न हो सकी । फल यह हुआ कि सविता घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुई और अरुण उसके घर से दूर-दूर रहने लगा ।

निशीथ कुमारराय का 'यही लोग'[1] धारावाहिक उपन्यास सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुआ जिसमें विषयवस्तु तथा चरित्रावली सर्वथा मौलिक एवं काल्पनिक है । किसी व्यक्ति विशेष अथवा दल विशेष के प्रति कटाक्ष अथवा आक्षेप करना लेखक का उद्देश्य नहीं है । उपन्यास का विषय मनुष्य की दुर्बलता एवं महान् उद्देश्य की पूर्ति के समय किसी आदर्श को सामने रखकर चलते समय उन दुर्बलताओं पर सामयिक रूप से विजय पाना है ।

श्री शिवसरन सिंह यादव का 'मैं प्यार करती हूं' एक सम्पूर्ण मनोरंजक उपन्यास है । ये जंगल की पृष्ठभूमि में लिखा गया रोचक उपन्यास है । इसमें बन्धक, मजदूरी, भूमिहीन मजदूरों का धनी उत्तमर्णों द्वारा शोषण का चित्र जहां एक ओर प्रस्तुत किया गया है वहीं परिवार-नियोजन न करने की बुराइयों पर भी कटाक्ष किया गया है । उपन्यास यद्यपि उद्देश्यमूलक है फिर भी इसके लिखने के ढंग से चरित्र-चित्रण की शक्ति में वे बातें इस प्रकार स्वाभाविक ढंग से लाई गई हैं कि कहीं उपन्यास का रंगभंग नहीं हुआ ।

श्री निशीथ कुमारराय जी का 'जन्मान्तर'[3] एक लघु उपन्यास है

---

१. सरस्वती १९७६, पृ० २९१
२. वही १९७६, पृ० १२८
३. वही १९७६ , पृ० ८

जिसमें जाति भेद तथा छुआछूत का दूर होना आवश्यक है। देश की एकता के लिए भी इस प्रथा का उच्छेद अत्यावश्यक है। इस उपन्यास में मार्मिक ढंग से इसी बात को दर्शाया है।

श्री निशीथ कुमार राय जी का ही एक और मनोरंजक उपन्यास `ढहती दीवारें`[1] है। इस उपन्यास की मुख्य विषय-वस्तु है अब तक की प्रथाओं व सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं का आमूल परिवर्तन, जो क्रान्तिकारी परिवर्तन चारों ओर परिलक्षित हो रहा है। उससे असन्तुष्ट अथवा दुखी न होकर हमें उसे मान लेना चाहिए अपने आपको उसमें खपा लेना चाहिए।

नाटक—

डा० हरिदत्त भट्ट `शैलेश` के `गिरगिट`[2] नाटक में मन्त्री महोदय (भैया जी) एक दलबदलू नेता हैं जिनकी प्रबल आकांक्षा है, किसी प्रकार मुख्यमन्त्री पद की प्राप्ति। उन्हीं के दल के दो सदस्यों दारूमल और दमड़ीमल के साथ हुए उनके वार्तालाप से उनकी मतलबपरस्त, दलबदलू प्रवृत्ति का परिचय हो जाता है। दारूमल तथा दमड़ीमल के प्रस्थान के पश्चात् प्यारेलाल प्रविष्ट होकर मन्त्री जी को सावधान करता हुआ उनकी गिरगिट के रंग बदलने की तरह दलबदलने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने का प्रयत्न करता है। प्यारेलाल के समस्त तर्कों को भैया जी अपने वाक्चातुर्य से निरस्त करते जाते हैं। मन्त्री जी निष्कर्ष रूप में यही कहते हैं कि चुनाव में, राजनीति में सर्वत्र बेईमानी ही विजय प्राप्त करती है। द्वितीय

---

१. सरस्वती १९७६, पृष्ठ संख्या १२६

२. वही १९६६, पृष्ठ संख्या ३३२

दृश्य में मन्त्री जी की पत्नी कमला उन्हें ताने-उलाहने देती है जिससे विदित होता है कि मंत्री जी पदच्युत हो चुके हैं। दोनों एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। पार्टी में हेरबदल करने के चक्कर में मंत्री जी कहीं के नहीं रह जाते हैं। इसी समय दारुमल आकर मंत्री जी को उनके चुनाव के रद्द किये जाने तथा गलत तरीके प्रयोग करने के कारण उन्हें दण्डित करने की सूचना देता है। मंत्री जी के अत्यन्त दुखित होकर पश्चाताप करने के साथ ही नाटक समाप्त होता है।

एकांकी —

श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा रचित 'कारागार में मुक्ति'[१] एकांकी नाटक ऐतिहासिक है। इसमें तैलप जो तैलंगाना का राजा है वह मालवा के युवराज मंजु को बन्दी बनाता है क्योंकि मालवा का युवराज प्रयाग में एकबार तैलंग कुमारी मृणाल को देखता है तब उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो वह मन ही मन उसे प्यार करने लगता है और यह सोचकर तैलंगाना पर आक्रमण करता है कि विजयी होने पर उसको मृणाल हासिल हो जायेगी। किन्तु आक्रमण में सफलता न मिलने पर उसे बन्दी बना दिया जाता है। इधर राजकुमारी मृणाल भी उसे प्रेम करने लगती है जिसके कारण एक दिन वह बन्दी-गृह में प्रहरी का रूप धारण कर मालवा के युवराज को मुक्त करने जाती है किन्तु वह करने से रोक देता है और न ही तैलंगाना के युवराज से क्षमा मांगने को तैयार होता है। जिसके परिणामस्वरूप बन्दीगृह में ही मृणाल उसे वरमाला पहना कर आजीवन कुमारी रहने का संकल्प करती है तथा कहती है कि वह प्रतिदिन प्रहरी के रूप में उससे मिलने आयेगी। मालवा कुमार भी

---

१. सरस्वती १९३९, पृ० सं० ५१५

इस बात से प्रसन्न होता है। उसे क्षमा याचना न मांगने के कारण अन्धा करने का आदेश होता है किन्तु वह राजकुमारी से कहता है कि अब तुम्हारी आँखों द्वारा ही देखूंगा तथा मुझे अब कारागार से मुक्ति नहीं चाहिए। वह मुक्त होते हुए भी मुक्त नहीं होता।

श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा रचित 'बेकारी का पिशाच'[१] एकांकी में आलोक एम० ए० पास बेकार युवक है। अपनी पत्नी प्रभा के साथ किसी तरह जीवन-यापन कर रहा है। वह सारे दिन नौकरी की तलाश में भटकता रहता है और उसकी पत्नी के सारे जेवर गिरवी रखे जा चुके हैं। एक दिन आलोक का एक घनिष्ठ मित्र अपनी मंगेतर के साथ आलोक की पत्नी से मिलने के लिए आने वाला होता है किन्तु उसकी पत्नी के पास ऐसी कोई साबुत धोती न थी जिसे वह पहनती। वह रात-दिन चरखे से सूत कातती रहती है और शीत में ठिठुरती रहती है जिसके फलस्वरूप वह बीमार पड़ जाती है। एक महिला डाक्टर आलोक से प्रभा को लखनऊ में दूसरी डाक्टर को दिखाने के लिए कहती है। आलोक घर को गिरवी रखकर प्रभा को लखनऊ ले जाना चाहता है पर प्रभा अन्त में यह कहते हुए प्राण छोड़ देती है कि घर भी नहीं होगा तो रहोगे कहां। इस प्रकार बेकारी का पिशाच प्रभा की जान ले लेता है।

प्रो० चन्द्रप्रकाश वर्मा के एकांकी 'स्वर्ग का शपथ'[२] में स्वर्ग के विश्राम कक्ष में गन्धर्व चित्रसेन प्रदत्त वाद्ययन्त्रों का निरीक्षण कर रहे अर्जुन के समक्ष उनके शौर्य पर मोहित उर्वशी हृदय में प्रेम का अपार सागर लिए

---

१. सरस्वती १६३६ पृ० सं० २२१

२. वही १६५३ पृ० सं० ३१५

प्रविष्ट होती है । अर्जुन उर्वशी के प्रति हृदय मेंश्रद्धा का भाव लिए रहते हैं किन्तु उर्वशी अर्जुन के प्रति आसक्त है । उर्वशी अर्जुन के समक्ष प्रणय-निवेदन कर उसे अभिसार के लिए आमन्त्रित करती है । अर्जुन द्वारा इस प्रेम को धर्म-विरुद्ध बतलाने पर उर्वशी नाना युक्तियों द्वारा अपने प्रेम को धर्मानुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न करती है । उर्वशी अर्जुन को 'प्रियतम' सम्बोधित कर पार्थ को स्वयं के लिए 'प्रिये' उच्चरित करने के लिए कहती है किन्तु अर्जुन द्वारा 'मां', 'पूज्या' इस प्रकार के सम्बोधनों को सुनकर प्रेम अस्वीकृत हो जाने के कारण आहत हृदया उर्वशी अर्जुन को क्रोधित होकर एक वर्ष तक पौरुष-विहीन होकर नारियों के मध्य भूतल पर वास करने का शाप देकर प्रस्थान करती है । वास्तव में उस शाप में भी एक मंगलमय आशीर्वाद ही निहित है ।

श्री धर्मवीर के 'भारत-विजय'[१] एकांकी में अफगानिस्तान की राजधानी गजनी के अधिपति भाग्यसेन की चिन्ता का कारण पूछती हुई हंसवती से एकांकी का प्रारम्भ होता है । दम्पत्ति के वार्तालाप के मध्य में ही गुप्तचर सूर्यबल प्रविष्ट होकर ईरान-नरेश दारा गजनी पर आक्रमण की योजना की सूचना देता है । द्वितीय दृश्य में कृष्णविक्रम व चन्द्रधर के वार्तालाप से विदित होता है कि गजनी में नागरिकों ने युद्ध के लिए स्वयं को पूर्णरूपेण तैयार कर लिया है तथा गजनी के समीपस्थ ग्राम में दारा द्वारा प्रेषित जासूसों को मृत्युदण्ड दिया गया है । तृतीय दृश्य के प्रारम्भ में कृष्णविक्रम तथा चन्द्रधर के वार्तालाप से विदित होता है कि युद्ध में ईरान पराजित हुआ तथा युद्ध के दिनों में राजकार्यों का संचालन महारानी हंसवती ने किया । चन्द्रधर युद्ध का समस्त वृतान्त वर्णित के पश्चात् कृष्णविक्रम से

---

१. सरस्वती १९५३, पृ० सं० ३३९

कहता है कि भाग्यसेन का कथन है कि यद्यपि भारत ने सदैव अहिंसा की ही नीति अपनायी है परन्तु यदि कोई शत्रु उस पर कुदृष्टि रख आक्रमण करता है तब उसे दृष्टिहीन बनाने में वह पूर्णरूपेण हिंस्त्र हो जाता है । ईरानी तो हमारे देश के अन्दर प्रविष्ट होने के पूर्व ही पराजित हो गये । तत्पश्चात् सैन्यगीत की ध्वनि का श्रवण कर दोनों विजय-प्रदर्शन में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान करते हैं ।

श्री मधुकर खरे का एकांकी `अधिकार रक्षा`[1] में लेखक ने आज के आधुनिक समाज की समस्या दहेज प्रथा को लेकर कथा को बढ़ाया है । कथा में शीला के पिता रामनाथ जी अपनी कन्या की शादी तय करने के लिए परेशान हैं किन्तु वही समाज की समस्या सभी पैसा अधिक मांगते हैं जिससे वह दुखी रहते हैं । किन्तु एकबार सब बातें ठीक होते हुए एक बैरिस्टर साहब शीला को देखने आते हैं और वह उसका नृत्य-गीत, कला-कौशल सारा परीक्षण करते हैं और अन्त में यह कहकर कि `लड़की की कमर थोड़ी मोटी है उससे रिश्ता तय नहीं करते । इन्हीं कारणों से शीला भी दुखी हो जाती है और जब रमेश के साथ उसका सम्बन्ध तय होता है और रमेश स्वीकृति भी देता है तो वह स्वयं यह कह देती है कि `लड़के की कमर कुछ मोटी है` और सम्बन्ध वहीं स्थापित होने देती । इस प्रकार उसने भी लड़कों की भांति लड़कियों की पसन्द भी महत्व रखती है, उन्हें भी लड़कों की भांति चुनाव का अधिकार है यह सिद्ध करती है ।

जितेन्द्रकुमार के `गिरती दीवारें`[2] एकांकी में मूलकथा इस प्रकार है । सागरमल एक धनी सेठ है उनका भूतपूर्व मुनीम रामकिशन एक

----

१. सरस्वती १९५४ पृ० सं० ३७८

२. वही १९५४ पृ० सं० ३१५

स्वतन्त्र व्यवसायी बन गया है। उनकी पुत्री का नाम मंजु है। सागरमल की दूसरी पत्नी है जिनके एक पुत्र है नन्दू। सेठ जी बड़े पुत्र का नाम पूरनमल है जो पहली पत्नी द्वारा है वह रामकिशन की पुत्री से प्रेम करता है और उससे विवाह करने का इच्छुक है। रामकिशन सेठ को समझाने का प्रयत्न करते हैं पर सेठ जी अपनी पत्नी और धन के घमण्ड में डूबे हुए उनकी बातों पर ध्यान नहीं देते तथा अपने पुत्र को जायदाद से वंचित करने की धमकी देते हैं। पूरनमल मंजू से विवाह कर लेता है और नन्दू से अत्यधिक प्रेम करने के कारण जायदाद भी उसे देने के लिए तैयार हो जाता है। विवाह के दूसरे दिन नन्दू किसी तरह भागकर उससे मिलने आता है और अपने भाई-भाभी से घर चलने का आग्रह करता है पर वह उसे प्यार से भेज देते हैं तो वह माँ से पूछकर भैया-भाभी को घर ले जाने की बात कह कर चला जाता है। ये कहने पर माँ उसे मारती है और वह अबोध बालक रात को खूंटी से लटककर आत्महत्या कर लेता है। इसके बाद पुलिस आ जाती है सेठ जी और उनकी पत्नी तब दुखी होकर पूरनमल और उसकी पत्नी को हरकारे द्वारा बुला भेजते हैं और उन्हें नन्दू की अन्तिम इच्छा मानकर तथा पश्चाताप करते हुए अपना लेते हैं।

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा द्वारा लिखित 'यम-सावित्री'[१] नामक एकांकी का मूल-कथानक प्राचीन होते हुए भी जिस सुन्दरता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है सम्भवत: वह अपने में अद्वितीय है। वास्तव में संवाद की उत्कृष्टता तथा भाषा का लालित्य ही इस एकांकी को प्राणवन्त करने में समर्थ हो सका है। इस एकांकी का प्रथम दृश्य वनखण्ड में ही समुपस्थित किया गया है। सत्यवान गीत गुनगुनाता हुआ लकड़ी काट रहा है तथा शिलाखण्ड

----

१. सरस्वती १९६०, पृ० सं० ११८

पर बैठी सावित्री माला गूंथ रही है । इतने में सत्यवान शिरोवेदना से पीड़ित हो जाता है । जीवन-शृंखला के समापन का अवसर जानकर एवं मूर्तिमान मृत्यु रूपी यम को सामने देखकर सावित्री यम से तर्क-वितर्क तथा यम से मृत्यु की निरंकुशता का प्रबल-विरोध, सत्यवान के जीव को कालपाश से मुक्त करना ही इस एकांकी का मूल कथानक है ।

कुमारी विपुलादेवी के 'लोकेश्वर शनि'[१] एकांकी में शनि और सूर्य पिता-पुत्र हैं, फिर भी उनके मध्य में सदैव संघर्ष चला करता है । ज्योतिष और पुराण कथाओं में भी इसका कोई उचित कारण नहीं मिलता । यह एकांकी उसी संघर्ष की पृष्ठभूमि पर आधारित है ।

श्री रामेश्वरदयाल दुबे के 'अहल्या'[२] नामक एकांकी में रामचन्द्र जी विश्वामित्र और लक्ष्मण के साथ गौतम ऋषि के आश्रम को जाते हैं किन्तु उस आश्रम की नीरवता और निस्तब्धता को देखकर तथा स्त्रीशून्य उस आश्रम को देखकर पूछते हैं कि क्या यही गौतम ऋषि का आश्रम है ? गौतम ऋषि के आगमन में सदैव पशु-पक्षी का कलरव रहता है इसलिए राम को आश्चर्य होता है । वहां पर वह शाप ग्रस्त अहल्या को देखते हैं किन्तु वह वास्तव में शापग्रस्त न होकर स्वयं इन्द्र के द्वारा छले जाने पर संकल्प करती है कि वह पत्थर के समान भावनाशून्य तथा स्थिर रहेगी । गौतम भी अहल्या से विमुख रहते हैं किन्तु जब राम वहां पहुंचते हैं तो अहल्या का संकल्प समाप्त होता है, उसका उद्धार होता है तथा गौतम भी अपने व्यवहार के प्रति पश्चाताप करते हैं ।

----

१. सरस्वती १९६६, पृ० सं० ३९२

२. वही १९६६, पृ० सं० ३३५

'महावीर का निष्क्रमण'[1] एकांकी नाटक श्री शम्सुद्दीन द्वारा रचित है। इस एकांकी में महावीर जैन जी के अन्दर किस प्रकार वैराग्य उत्पन्न हुआ इसका चित्रण बड़ी ही सफलतापूर्वक हुआ है। महावीर दुखी व्यक्ति को देखते हैं और उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि प्राणी क्यों दुखी है? उसकी तृष्णाओं का कहां अन्त है? इसी प्रकार पशु-बलि क्यों दी जाती है जबकि पशु बोल नहीं सकता, कुछ कह नहीं सकता और न ही मनुष्य का विरोध कर सकता है। महावीर की माता जब तक जीवित रहती है वह उन्हें वैराग्य न लेने की कसम देती है और वैराग्य बिना मां की आज्ञा बिना नहीं लिया जा सकता इसलिए अपनी मां की मृत्यु के उपरान्त उनकी बहन उन्हें उसे कसम से मुक्त कर देती है और महावीर का निष्क्रमण होता है। यही इसकी मूल कथा है।

---

१. सरस्वती १९६६, पृ०

अध्याय ७

उपसंहार

ने बंगला भाषा के माध्यम से `संवाद कौमुदी` (१८२०) तथा इसके बाद अंग्रेजी और बंगला में `ब्राह्मैनिकल मैगजीन` का प्रकाशन किया । तदुपरान्त अपने विचारों के बहुमुखी प्रचारार्थ राजा साहब ने फारसी भाषा में `मीरात-उल-अखबार` भी निकाला । क्रमश: राजाराममोहन राय के पक्षधरों में भी दो दल बन गये । प्रथम उदारवादी विचारकों के तथा दूसरे रूढ़िवादियों का । इस द्वितीय दल के समर्थकों के विचार `समाचार चन्द्रिका`, `ज्ञानजल और एशियाटिक जरनल द्वारा होता था । अभी तक समाचारपत्रों पर सरकार का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न था । अप्रैल १८२३ ई० को ऐडम नामक व्यक्ति के द्वारा समाचार पत्रों पर सरकार के नियन्त्रण का प्रस्ताव रखे जाने पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया । अतएव सरकार का सर्वप्रथम वार राजा साहब के ही समाचार पत्रों पर हुआ ।

किन्तु ठीक इसके विपरीत उदारवादियों के समाचारपत्रों को बन्द कर देने पर भी सती प्रथा को केन्द्र-बिन्दु बना लिए जाने पर इन्हें फिर एक बार जनता के समक्ष समुपस्थित होने का सुअवसर मिला ।

इसी सन्दर्भ में यह कहना अत्युक्ति न होगा कि पत्रिकाओं के जागरण का सर्वप्रथम प्रभाव कलकत्ते के हिन्दी भाषा-भाषियों पर ही पड़ा । इसी कारण हिन्दी के पहले समाचार-पत्रों को कलकत्ते से ही प्रकाशित होने का सुअवसर मिला । १६वीं शती के अन्तिम दशक में बम्बई में हिन्दी भाषी सेठ श्री खेमराज कृष्णदास जी का `श्री वेंकटेश्वर` प्रेस भी चल निकला ।

उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु जी ने हिन्दी-भाषियों में जो राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना समुत्पन्न की तथा जिस हिन्दी क्रान्ति रूपी आन्दोलन को चलाया तथा जिसे प्रतापसिंह, रामपाल सिंह, लौहपुरुष मदनमोहन मालवीय आदि ने उसे अग्रसारित करने में अपार सहयोग देकर जनता में मात्र भाषा के प्रति आकर्षण बढ़ाया । इसी समय अम्बिकादत्त व्यास ने `पीयूष प्रवाह`

और पं० प्रताप नारायण मिश्र ने `ब्राह्मण` निकाला । कलकत्ते से पं० देवी प्रसाद मिश्र ने `धर्मदिवाकर` का प्रकाशन साप्ताहिक करते रहे । इसी अन्तराल में कलकत्ते का `बंगवासी` भी लोकप्रियता के चरम शिखर पर पहुंच गया । किन्तु अद्यावधि मासिक पत्रों की दशा में पर्याप्त सुधार परिलक्षित नहीं होता ।

सरस्वती के सम्पादन और विकास के सन्दर्भ में इंडियन प्रेस को उपेक्षित नहीं किया जा सकता । सन १८८४ में इलाहाबाद में श्री चिन्तामणि घोष ने इसकी स्थापना की थी । श्री घोष महोदय ने हिन्दी के उन्नयन के लिए एक उत्कृष्ट हिन्दी मासिक पत्रिका की आवश्यकता समझी अतएव श्री चिन्तामणि जी ने अपने और अपने मित्रों की सलाह से इस प्रस्तावित पत्रिका का `सरस्वती` नामकरण किया । यद्यपि सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने सम्पादन का कार्य काशी से ही किया ।

वस्तुत: इस मासिक पत्रिका का `सरस्वती` नामकरण का कारण नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के महावाक्य का ही भाव अन्तर्निहित रहा होगा । अर्थात् सरस्वती ऐसी महति श्रुति है जोकि कभी नाशवान् नहीं है ।

३० फरवरी १८२६ ई० को `उदंत मार्तण्ड` नामक पहला पत्र हिन्दी में प्रकाशित हुआ जिसकी सफलता और लोकप्रियता के कारण अन्य पत्र भी निकले । १० मई १८२६ को `बंगदूत` साप्ताहिक निकाला गया जिसके सम्पादक का कार्यभार नीलरतन हलदार ने संभाला । १८४५ ई० में `बनारस अखबार` का प्रकाशन हुआ । इसमें प्रकाशित होने वाले लेख देवनागरी लिपि में अवश्य छपते थे किन्तु भाषा इसकी उर्दू ही थी । जिसके उत्तरदायी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द स्वयं थे जोकि इसके मालिक थे । १८५० ई० में तारामोहन मैत्र ने `सुधाकर` का प्रकाशन किया । १८४६ ई० में `इंडियन सन` प्रकाशित हुआ जो पांच भाषाओं में प्रकाशित होता था । १८४८ ई० में

प्रेमनारायण ने `मालवा` अखबार हिन्दी,उर्दू में निकाला । १८५२ ई० में `बुद्धिप्रकाश` का सम्पादन लाला सदासुखलाल ने किया । १८५३ ई० में `ग्वालियर गजट` मुंशी लक्ष्मणदास ने ग्वालियर से निकाला । १८५४ ई० में श्यामसुन्दर सेन ने `समाचार सुधावर्षण` दैनिक पत्र प्रकाशित किया । १८५६ ई० में मनसुखराम ने अहमदाबाद से `धर्मप्रकाश` का सम्पादन और प्रकाशन किया । `भारतखंडामृत` १८६४ ई० में आगरे से प्रकाशित किया गया जिसका सम्पादन कार्य पंडित वंशीधर ने किया । १८६४ में `जोधपुर गवर्नमेन्ट गजट`, १८६५ ई० में `तत्वबोधिनी पत्रिका`, १८६६ ई० में `ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका `, १८६६ ई० में मारवाड़ गजट` तथा `शक्तिदीपक` तथा १८६७ ई० में `वृतान्तविलास `, `सर्वजनोपकारक` और `रतनप्रकाश ` आदि पत्र प्रकाशित हुए जो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रथम उत्थान था ।

द्वितीय उत्थान का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के १८६८ ई० में प्रकाशित `कविवचन सुधा` से हुआ । १८६८ ई० में ही प्रयाग से `वृतान्तदर्पण` निकला जिसका सम्पादन सदासुखलाल जी ने किया । १८७० में `हिन्दू प्रकाश`, और `प्रयागदूत` आदि अनेक पत्र प्रकाशित हुए । १८७२ ई० में बाबू कीर्तिप्रसाद ने `हिन्दी दीप्ति प्रकाश` निकाला । इसी समय `बिहार बन्धु` भी पं० मदन-मोहन भट्ट द्वारा प्रकाशित किया गया । १८७३ में भारतेन्दु जी ने `हरिश्चन्द्र मैगजीन` का प्रकाशन किया । १८७४ ई० में इसी का नाम `हरिश्चन्द्र चन्द्रिका` कर दिया गया ।

अमृतसर से `हिन्दी प्रकाश`, जबलपुर से `जबलपुर समाचार`, लखनऊ से `भारत पत्रिका`, तथा आगरे से `मर्यादा परिपाटी समाचार` आदि पत्र प्रकाशित हुए । १८७४ ई० में भारतेन्दु जी ने ही `बालबोधिनी ` का प्रकाशन किया जो स्त्रियों के लिए था । १८७५ ई० में शिवनारायण शुक्ल ने `धर्मप्रकाश` मासिक प्रकाशित किया । १८७६ ई० में `काशीपत्रिका` भी निकाली गई । १८७७ में `मित्रविलास`, पं० मुकुंदराम के समपादकत्व में

प्रकाशित हुआ । ये `भारतदीपिका` तथा `भारतहितैषी` भी इसी वर्ष प्रकाशित होने वाले पत्रों में से हैं । १८७८ ई० में `भारतमित्र` का प्रकाशन हुआ । यह पत्र अपने समय का सबसे प्रभावशाली पत्र था । १८७९ ई० में `जगत मित्र`, `शुभचिन्तक`, तथा `ज्ञानचन्द्रोदय` प्रकाशित हुए । १८८० ई० में `जैनपत्रिका` `धर्मनीतितत्त्व`, `क्षात्रियपत्रिका` प्रकाशित हुए । १८८१ ई० में `नवीनवाचक`, `आरोग्यदर्पण` तथा `आनन्दकादम्बिनी` प्रकाशित हुए । १८८३ ई० में `हिन्दोस्थान` नामक पत्र निकला तथा इसी वर्ष `ब्राह्मण` नामक पत्र पं० प्रतापनारायण मिश्र ने प्रकाशित किया । १८८४ ई० में `वैष्णव पत्रिका` पं० अम्बिादत्त व्यास के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई । इसी का नाम `पीयूष-प्रवाह` कर दिया गया ।

बीसवीं शताब्दी में अधिकांशत: पत्र साहित्य और राजनीति को लेकर ही चले । `भारतमित्र` (१८७८ ई०), पं० छोटूलाल मिश्र द्वारा सम्पादित पत्र था । `आनन्दकादम्बिनी` (१८८१ ई०), पं० बदरीनारायण उपाध्याय के सम्पादकत्व में निकलती थी । `भारतजीवन` (१८८४ ई०) काशी से प्रकाशित रामकृष्णवर्मा द्वारा सम्पादित पत्र था । १८८८ ई० में बाबू बालमुकुन्द शर्मा के सम्पादकत्व में `मित्र` प्रकाशित हुआ । इस पत्र में कविता, लेख,आदि विविध विषय प्रकाशित होते थे । १८८८-१९०६ ई० में `भारत-भगिनी` श्रीमती महादेवी नामक महिला के सम्पादकत्व में इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी । `हिन्दी बंगवासी` (१८९० ई०) का सम्पादन पं० अमृतलाल चक्रवर्ती ने किया । `नागरीप्रचारिणी पत्रिका` (१८९६ से अब तक) नामक पत्रिका त्रैमासिक रूप में बाबूश्यामसुन्दरदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, श्री कालिदास और राधाकृष्णदास के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई । इसमें इतिहास, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते थे । `भाषाचन्द्रिका` (१९०० ई०) में, छत्तीसगढ़ मित्र` (१९०० ई०) में प्रकाशित

हुई । १९०० ई० में `सुदर्शन ` प्रकाशित हुआ जिसका सम्पादकत्व पं० माधवप्रसाद मिश्र तथा बाबू देवकीनन्दन खत्री ने किया । १९०१ ई० में `समालोचक` मासिक पत्र पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ । `हितवार्ता `(१९०३ ई०) में, `लक्ष्मी` (१९०३), `अबला हितकारक`(१९०३), `स्त्रीदर्पण` (१९०३ ई०) में पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं । `वैश्योपकारक` (१९०४ ई०) में शिवचन्द्र जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई । `भारतेन्दु` (१९०५ ई०), `बालप्रभाकर` (१९०६ ई०)जिसका सम्पादन पं०किशोरी-लाल गोस्वामी जी ने किया तथा `हिन्दीकेसरी `(१९०७ ई०), `नृसिंह` (१९०७ ई०), `अभ्युदय` (१९०७ ई०), `देवनागर` (१९०७ ई०) आदि प्रकाशित हुए । १९०८ ई० में `कमला` तथा १९०९ ई० में `इन्दु` का प्रकाशन हुआ । इन्दु का सम्पादन जयशंकरप्रसाद जी ने किया । `चांद` (१९२०) का सम्पादकत्व श्री रामरखसिंह सहगल ने किया । `माधुरी` १९२२ ई० में मासिक पत्रिका के रूप श्री दुलारे लाल भार्गव और श्री रूपनारायण पाण्डेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई । `सुधा` (१९२७ई ०) का सम्पादकत्व श्री दुलारेलाल भार्गव जी ने माधुरी का कार्य छोड़ने के उपरान्त किया । `विशालभारत` (१९२८ई०), श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने प्रकाशित किया । यह साहित्यिक राजनैतिक,और सामाजिक विषयों का उच्चकोटि का मासिक पत्र था । `हंस` (१९०३ ई०) श्री प्रेमचन्द जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित पत्रिका थी । १९३० ई० में ही `गंगा` नामक पत्रिका का प्रकाशन बनैली राज के कुमार कृष्णानन्द सिंह के सम्पादकत्व में हुआ । १९३१ई० में `हिन्दुस्तानी` त्रैमासिक शोधपत्रिका प्रकाशित हुई । इसके सम्पादक मण्डल में डा० ताराचन्द, डा० बेनीप्रसाद, डा० धीरेन्द्रवर्मा, श्रीकृष्णदेव वर्मा और श्री रामचन्द्र टंडन थे । `सरस्वती (१९०० ई० ) का प्रकाशन इलाहाबाद के इंडियन प्रेस के स्वामी चिन्तामणि घोष की अध्यक्षता में तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के संस्थापक श्री श्यामसुन्दरदास के सम्पादकत्व में हुआ । `सरस्वती ` में गद्य-पद्य,काव्य, नाटक,उपन्यास,इतिहास,जीवन चरित, हास्य-परिहास, कौतुक आदि साहित्य के विषयों का यथावकाश समावेश रहा तथा ग्रन्थादि की

यथोचित समालोचना की गई । १९०३ ई० में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने `सरस्वती` का सम्पादकत्वभार वहन किया तथा इसे विविध विषय समन्वित पत्रिका बनाने का भगीरथ प्रयास किया ।

शोधप्रबन्ध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सरस्वती पत्रिका के स्वरूप और क्रमिक विकास पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है । हिन्दी भाषियों के विशेष प्रयत्नों से `सरस्वती` पत्रिका का आविर्भाव सन् १९०० ई० में हुआ । चिन्तामणि घोष के विशेष आग्रह से तथा अनुरोध से नागरी प्रचारिणी सभा ने बाबू जगन्नाथदास `रत्नाकर`, बाबूश्यामसुन्दरदास, बाबूरायकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी तथा बाबू कीर्तिप्रसाद खत्री जी के सम्पादकत्व तथा प्रयत्नों से `सरस्वती` पत्रिका के रूप में सम्पादित हुई ।

सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर अंक में विविध वार्ता के प्रसंग से ज्ञात होता है कि दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके सम्पादन का भार बाबू श्यामसुन्दरदास पर ही था । परन्तु चौथे वर्ष के प्रारम्भ में यह कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध मूर्धन्य-विद्वान् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के अधीन रहा ।

यद्यपि यह अकाट्य सत्य है कि `सरस्वती` हिन्दी साहित्याकाश में एक प्रखर ज्ञान-ज्योति लेकर आयी और उसकी ज्ञान-ज्योति के आश्रय प्रकाश में हिन्दी भाषा ने अभ्युदय और नि:श्रेयस प्राप्त किया । वस्तुत: निर्पक्ष होकर कहा जा सकता है हिन्दी को सरस्वती ने सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का रूप प्रदान किया । वस्तुत: सरस्वती पत्रिका ने सारस्वत-सरस्वती को साकार किया। यही नहीं खड़ी बोली में कविता लिखने का श्रेय सरस्वती को ही रहा और सरस्वती एक ऐसी सर्वमान्य पत्रिका रही जिसने की हिन्दी को शैशव से प्रौढ़ता में पदार्पण कराया । सरस्वती में प्रकाशित जीवन-दर्शन, भाषा एवं हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न विषयक लेख अद्यावधि साहित्य सेवियों के लिए सदुपयोगी सिद्ध हुआ है तथा सुचिर भविष्य होता रहा है ।

सरस्वती पत्रिका की परम लोकप्रियता का एक मुख्य कारण

द्विवेदी जी की युगान्तकारी भूमिका एवं उत्सर्ग की भावना थी । यदि निरपेक्ष दृष्टि से देखा जाये, गम्भीरता से विवेचन किया जाय तो यह परिलक्षित होता है कि द्विवेदी जी ने इस सरस्वती पत्रिका के माध्यम से देश के विभिन्न अंचलों में बिखरी हुई साहित्यिक शक्तियों को एकता के सूत्र में पिरो सा दिया ।

सरस्वती पत्रिका ज्ञानवर्द्धन होने के साथ-साथ कलात्मक पत्रिका भी रही क्योंकि उसमें ऐसे साहित्य का प्रयोग किया गया है जिसमें सामाजिक और सांस्कृतिक रूढ़िवादी रीतियों को समाप्त करके नूतन सामाजिक,सांस्कृतिक और समाज के अनुरूप रीतियों को ही प्रस्तुत किया गया है ।

उपरोक्त इन्हीं विशेषताओं के कारण ही सरस्वती पत्रिका को २०वीं शती की सर्वमान्य पत्रिका बनने का श्रेय प्राप्त हुआ । प्रेमचन्द और कृष्णाबिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित `माधुरी` एवं महाकवि निराला द्वारा सम्पादित `सुधा` तथा प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में सम्पादित `हंस` इत्यादि अनेकानेक पत्रिका के होते हुए भी सरस्वती को सर्वमान्य जातीय पत्रिका होने का गौरव प्राप्त हुआ ।

सरस्वती पत्रिका एक ऐसी सर्वमान्य पत्रिका थी जिसमें सभी विषयों से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते थे यथा -- गद्य, पद्य, काव्य, इतिहास, जीवनचरित, पंचहास, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, कलाकौशल आदि विषयों का समावेश रहा साथ ही विषयों की समालोचना भी प्रस्तुत की जाती थी । भाषा की दृष्टि से सरस्वती पत्रिका अपने में अनुपम थी । हिन्दी साहित्य के सभी अंगों को प्रस्तुत कर पाठकों की

रुचि को जागृत करना तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लेखों से सामाजिकों का ज्ञान बढ़ाना ही इसका मुख्य उद्देश्य था ।

सम्पादक मण्डल के सदस्यों के सफल सम्पादकत्व तथा मनोयोग के फलस्वरूप ही सरस्वती के प्रथम वर्ष में छप्पन लेख प्रकाशित हुए । सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित होने वाले स्थालीपुलाकन्यायेन उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं यथा -- यात्रा भौगोलिक तथा स्थान वर्णन सम्बन्धित लेखों में काश्मीर यात्रा एवं उत्तरीध्रुव भ्रमण इत्यादि । भाषा साहित्य की दृष्टि से महाकवि भारवी, नैषध-चरित चर्चा तथा सरस्वती में नागरी अक्षर का प्रचार इत्यादि । इतिहास पुरातत्व से सम्बन्धित लंका का आविष्कार, दामोदरराय की आत्म-कहानी । विज्ञान, विदेशी साहित्य से सम्बन्धित प्रकृति की विचित्रता और भारतवर्ष की शिल्पविद्या आदि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य सेवियों ने सरस्वती के प्रारम्भिक काल से ही उसे अखिल भारतीय बनाने का प्रयत्न किया । नियमित रूप से सम्पादकीय टिप्पणी करना, लिखना सर्वप्रथम सरस्वती ने ही प्रारम्भ किया था इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी उल्लेखनीय हैं ।

द्विवेदी जी के बाद सन् १६२१ ई० में सरस्वती के सम्पादक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी हुए, क्रमशः १६२६ ई० में देवीदत्त शुक्ल जी को यह भार ग्रहण करना पड़ा । १६२७ ई० से डेढ़ वर्ष की अवधि के लिए सम्पादत्व करने के पश्चात् शुक्ल जी पूर्ववत् सम्पादन का कार्य करते रहे । द्विवेदी जी के समय में ही सहायक सम्पादक के पद भी बनाए गये जिन्हें कि पं० उदयनारायण बाजपेयी, पं० हरिभाऊ उपाध्याय और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, पं० ठाकुर प्रसाद मिश्र तथा शम्भूनाथ शुक्ल इत्यादियों ने इन

पदों को सुशोभित किया । नेहरु जी के भी कई लेख सरस्वती में छपे । सन् १६३५ में ठाकुर श्रीनाथ सिंह जी के हल के सम्पादक बनकर चले जाने पर उमेश मिश्र सम्पादक नियुक्त किये गये । शुक्ल जी ने १६२५ से १६२७ तक और फिर १६२६ से १६४६ तक लगातार सरस्वती का सम्पादन किया। जून सन् १६५५ तक पं० देवीदयाल चतुर्वेदी जी ने इस कार्य को संभाला इनके उपरान्त श्रीनारायण चतुर्वेदी जी सरस्वती के सम्पादक हुए तथा चतुर्वेदी जी के बाद १६८० तक `निशीथ कुमारराय` ने इसका सम्पादकत्व किया । कविता के क्षेत्र में छायावाद को सरस्वती के माध्यम से हिन्दी भाषा-भाषियों तक पहुंचाने का श्रेय पन्त जी को है और इसी सन्दर्भ में जयशंकर प्रसाद, निराला, और सुश्री महादेवी जी को भी भारतीय जनता सामने पहुंचाने का गौरव सरस्वती पत्रिका को ही है । बच्चन जी की `मधुशाला` का प्रथम प्रकाशन सरस्वती में ही हुआ । श्री स्नेही, श्री हितैषी, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा आदि सभी कवियों की कविता प्रकाशित करने का श्रेय सरस्वती को ही है । `इन्दुमती` एवं `उसने कहा था` कहानी सर्वप्रथम सरस्वती में ही प्रकाशित हुई ।

यदि इसके कलात्मक पक्ष की ओर दृष्टिनिक्षेप किया जाय तो ये पत्रिका बंगाल शैली की कलात्मक अभिरुचियों से युक्त पत्रिका रही । जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बोस, जामिनी मोहन राय, असिथालदार, क्षितिज मजुमदार के कला की सौन्दर्य बोध का सुमधुर रसास्वादन भी हिन्दी भाषी कर सकते थे ।

यह निर्विवाद सत्य है कि मानव अपने हृदयावस्थितभावों को किसी न किसी रूप में सामाजिकों के समक्ष समुपस्थित करने का सहज ही प्रयत्न करता है। यद्यपि देखा जाये तो यह अकाट्य सत्य है कि अपने मन की किसी कोमल भावना को चित्रकार अपनी तूलिका के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, संगीतज्ञ आरोह-अवरोह एवं मूर्च्छनाओं के माध्यम से राग के स्वरूप को स्पष्ट करता है, नर्तकी नृत्य एवं वाद्य के माध्यम से, लेखक अपनी लेखनी के माध्यम से तथा कवि उसी प्रकार अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

यद्यपि कवि शब्द के व्युत्पत्ति-मूलक अर्थानुसार कवि का भाव ही काव्य है। कवि अपने काव्य-साम्राज्य का निरंकुश सम्राट् है। उसकी काव्य रूपी कृति विधाता की कृति की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है क्योंकि वह पाषाण में भी पुष्प प्रस्फुटित कर सकता है। नायिका के मुख रूपी कमल में नेत्र रूपी नीलकमल, अधरोष्ठरूपी रक्तकमल इत्यादि की भी परिकल्पना कर लेता है। इस प्रकार संक्षेपत: यह कहना ही न्यायसंगत है कि काव्य की सृष्टि विधाता की सृष्टि की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

यद्यपि लक्षण ग्रन्थों[1] के अनुसार[2] काव्य के सम्बन्ध में आनन्दवर्द्धनाचार्य, मम्मट, जयदेव, वामन, भामह, दण्डी, कुन्तक इत्यादि ने काव्य से सम्बन्धित अनेक परिभाषायें दी हैं। किसी ने रस को काव्य की आत्मा माना, किसी ने शब्द और अर्थ की समष्टि को काव्य की आत्मा माना, आनन्दवर्द्धनाचार्य ने 'काव्यस्य आत्मा ध्वनिरिति' कहकर ध्वनि को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया। किन्तु साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, दशरूपक इत्यादि लक्षणग्रन्थों के गहन अध्ययन से निष्कर्षत: इस बिन्दु तक पहुंचा जा सकता है कि काव्यप्रकाशकार

---

१. दण्डी ने कहा 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'।

२. वक्रोक्ति जीवितकार 'कुन्तक' ने कहा —
शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् - - - - - - ।।

आचार्य मम्मट के द्वारा परिभाषित काव्य की परिभाषा ही अपने में पूर्ण एवं समीचीन है । वस्तुत: आचार्य मम्मट ने 'तददोषौशब्दार्थौ सगुणावनलंकृतीपुन: क्वापि' कहकर काव्य के प्रति एक समन्वयात्मक दृष्टि रखी । वस्तुत: इनके इस लक्षण के अन्तर्गत आचार्य विश्वनाथ, रुद्रट[1], वामन, भामह इत्यादि सभी लक्षणग्रन्थकारों के लक्षणों की त्रुटियों की उपेक्षा करते हुए एक समन्वयवाद का उद्घोष सा है ।

इसी अध्याय के अन्तर्गत रीति परम्परागत काव्यधारा पर प्रकाश डाला गया है । सरस्वती के प्रारम्भिक अंकों में रीतिकालीन परम्परा की कवितायें ही मिलती हैं क्योंकि सरस्वती का जन्म उस समय हुआ जब हिन्दी कविता रीतिकालीन शृंगारात्मक लक्ष्मण रेखा को पार कर आधुनिकता की ओर शनै: शनै: अग्रसरित हो रही थी । साथ ही साथ उदीयमान छायावादी काव्य की भी प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं । दूसरे शब्दों में यूं कहा जा सकता है कि सरस्वती में प्रकाशित कवितायें हिन्दी के संक्रान्ति बेला की कवितायें थीं ।

भक्तिकाल के पराविद्यास्वरूपा राधा तथा घट-घट वासी योगेश्वर श्रीकृष्ण को रीतिकाल सामान्य नायिक और नायिका के रूप में चित्रित किया गया । रीतिकाल की एक विशेषता उक्ति वैचित्र्य है । यथा रहस्य काव्य शृंगार पर आधारित 'प्रतिज्ञा' । इसी प्रकार रीतिकाल में प्रकृति की विविध रूपता के वर्णन मिलते हैं । प्रत्येक ऋतु का वर्णन तथा ऋतु के सौन्दर्य और उसके मनोभावों का संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों पर प्रभाव पड़ा ।

संक्षेपत: रीतिकाल एक प्रकार से सूक्ष्म के प्रति स्थूल का विद्रोह

----

१ रुद्रट ने कहा - 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'

था । किन्तु यह स्थूल हिन्दी साहित्य में इतना अधिक व्यापक हो गया कि सूक्ष्म ने पुनः विद्रोह किया परिणामस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ । जयशंकरप्रसाद जी ने इस सन्दर्भ में कहा, `वेदना के आधार पर जब स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया । छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में इतिवृत्तात्मकता, आशावाद, गान्धीदर्शन, प्रकृति पर उन्नत अलक्ष्य परमात्मा की छाया का आरोप की अवगणना की जाती है और सरस्वती में प्रकाशित छायावादी रचनाओं में मुख्य रूप उपर्युक्त विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं । छन्दों की दृष्टि से भी यदि हम कविताओं का उन्मूलन करें तो यह प्रत्यक्ष है कि रीतिकाल में ही रचनाओं में छन्दों के बन्धन को तोड़ने के प्रयत्न आरम्भ हो गये थे तथा छायावादी काव्य में मुक्त छन्दों का प्रयोग होने लगा । यद्यपि कुछ लोगों का यह आक्षेप कि `छन्द का प्रयोग छायावाद में नहीं किया गया` ऐसा सर्वथा निर्मूल है । वास्तविकता तो यह थी कि अपनी रचनाओं में छन्दों के प्रयोग के लिए छायावादी कवि स्वतन्त्र थे इस परिप्रेक्ष्य में उनके साथ कोई बाध्यता नहीं थी । सरस्वती में प्रकाशित रीतिकालीन कविताओं के कुछ कवि उल्लेखनीय हैं जिन्होंने इसी पत्रिका के माध्यम से अपना स्थान हिन्दी साहित्य के काव्य जगत में बनाया । यथा -- राधाकृष्णदास, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, पं० रामचन्द्रशुक्ल, पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पं० मन्नन द्विवेदी, श्री श्रीधर पाठक, बाबू सत्यशरण रतूड़ी, पं० सत्यनारायण कविरत्न आदि ।

छायावादी काव्यधारा के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली कविताओं के मुख्य कवियों के नाम इस प्रकार हैं -- श्री जानकीवल्लभ शास्त्री `नाविक`, श्री सुमित्रानन्दनपन्त, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय `हरिऔध`,

पाण्डेय लोचन प्रसाद, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० सोहनलाल द्विवेदी, पं० मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, पं० पद्मकान्त मालवीय, पं० जगदम्बा प्रसाद मिश्र, श्री भगवतीचरण वर्मा, केशवप्रसाद पाठक, प्रणयेश शुक्ल, श्री रामकुमार वर्मा, श्री नगेन्द्र, श्रीमती महादेवी वर्मा, उदयशंकर भट्ट, श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, डा० रामविलास शर्मा, दिनकर, अज्ञेय, श्रीमती तारापण्डेय, श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा, श्री नर्मदाप्रसाद खरे, पं० माखनलाल चतुर्वेदी आदि ।

हिन्दी काव्य साहित्य में छायावाद के बाद प्रगतिवाद का स्थान आता है । समाज और साहित्य की प्रगति के लिए प्रतिक्रियावादी तत्वों की आलोचना करके उन्हें समूल नष्ट करना ही कर्त्तव्यनिष्ठ साहित्यकार का लक्षण है । वस्तुत: इसी दृष्टि से प्रगतिवाद ने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य परम्परा तथा तत्कालीन साहित्य का विश्लेषण करके प्रगतिवाद को जन्म दिया ।

हिन्दी में प्रगतिवाद १९३० के बाद उत्पन्न हुआ । कविता में भी कल्पना के स्थान पर ठोस वास्तविकता और वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता का आग्रह ही प्रगतिवाद का मूल सिद्धान्त था । प्रगतिशील साहित्य एक निरन्तर विकासशील साहित्यधारा है । प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अन्त:प्रेरणा से उद्भूत नहीं होता बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित होता रहता है ।

कविता में पहली बार इतनी व्यापक सहानुभूति का प्रवेश हुआ कि इस साहित्य में मजदूर वर्ग को भी नायक के रूप में स्वीकार किया गया । यद्यपि परिस्थितिवश यह सहानुभूति बौद्धिक सहानुभूति ही थी, मानवता के भी प्रति इसके अन्तराल में ह सहानुभूति की भावना थी फिर भी क्रान्तिदर्शी

कवियों की हृदय की विशालता ने साहित्य के क्षेत्र में जो नवजीवन का संचार किया वही प्रगतिवाद का बीज है ।

जिस प्रकार कल्पना, प्राण, अन्तर्दृष्टि छायावाद की विशेषता थी और जिस प्रकार अन्तरबौद्धदृष्टि प्रयोगवाद की विशेषता थी उसी तरह समाज के प्रति यथार्थ की दृष्टि प्रगति विशेषता रही । प्रगतिशील कवि की कविता में निराशा में आशा का धूमिल प्रकाश दिखलाई पड़ता है । प्रगतिशील कवि अराष्ट्रीयता के विपरीत अपने गांव और जनपद से अगाध स्नेह करते हैं और उसी स्नेह के माध्यम से देश-प्रेम के प्रति अपने हृदयार्व स्नेहमयी सुप्त भावना को अभिव्यंजित करते हैं । ठीक इसके विपरीत प्रगतिशील कवि जब अपनी लेखनी से व्यंग्य करके समाज पर प्रहार करते हैं तो उनकी भाषा की व्यंग्यता दर्शनीय होती है । हिन्दी कविता के प्रगतिवाद की कविता में व्यंग्य का जितना विकास हुआ उतना अन्यत्र दुर्लभ है । प्रगतिशील कवि प्रयोगवादियों की भांति कला पक्ष पर बहुत बल नहीं देते इसलिए प्रगतिशील मुक्त छन्दोबद्ध प्रयोगवादी की अपेक्षा पर्याप्त शिथिल मिलेंगे किन्तु उनकी यह सहसता, सरलता और भाषा की स्वाभाविकता ही उसकी शोभा है । प्रगतिवाद के कुछ उल्लेखनीय कवि हैं जिनकी कवितायें सरस्वती में प्रकाशित हुईं तथा इसी से उनका परिचय प्राप्त होता है यथा- श्री विजयसिंह राठौर, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री बंशीधर शुक्ल, श्री रामगोपाल विजय, श्री प्रभाकर माचवे, श्री गिरजाकुमार माथुर आदि । इस प्रकार सरस्वती ही एक मात्र ऐसी पत्रिका रही जिसने सर्वांगीण साहित्य का विकास करने में योगदान दिया ।

इसी सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कवितायें ह्रासोन्मुख मध्यम वर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण हैं । इसमें मध्यम वर्ग की दीनता, अनास्था, कटुता, अन्तर्मुखता, पलायन, आदि का बड़ा ही सहज

और मार्मिक चित्रण हुआ है। प्रयोगवाद के पन्द्रह वर्षों का इतिहास वैयक्तिकवाद के दो सीमान्तों के बीच में विस्तृत था - एक सीमान्त मध्यम-वर्गीय लोगों के प्रति मध्यमवर्गीय कवि का वैयक्तिक असन्तोष तथा दूसरा सीमान्त जनसामान्य से भयभीत कवि की आत्मरक्षा की भावना का। निष्कर्षत: यह चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोग का बिन्दु है। प्रयोगवादी कविता में कल्पनाशीलता के विपरीत यथार्थवाद का आग्रह था। छायावादी कवि जिस प्रकार चान्दनी का भव्य दृश्य उपस्थित करते हैं वहीं प्रयोगवादी कवि शिशिर ऋतु की रात में चन्द्रमा का दृश्य उपस्थित करते हैं। प्रयोगवादी कवि का प्रकृति और नारी के प्रति दृष्टिकोण यथार्थ के नाम पर वस्तुत: नग्न यथार्थवाद है।

सरस्वती पत्रिका के अन्तर्गत श्री रघुवंशलाल गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र आदि प्रमुख कवियों की कवितायें प्रकाशित हुईं तथा इनकी रचनाओं द्वारा काव्य को इनका अमूल्य योगदान है।

कतिपय विद्वान् नयी कविता को प्रयोगवाद की ही एक शैली मानते हैं तथा ठीक इसके विपरीत कुछ लोग नयी कविता के विकास को एक पृथक आन्दोलन के रूप में गृहीत करते हैं। वास्तव में नूतन कविता मानव के, लघु मानव के लघु एवं जटिल परिवेश की एक अभिव्यक्ति है। इस जटिल समाज के उस जटिल मानव की भावनाओं का वर्णन है जो वर्तमान समाज की विकतता एवं विषमता को तो भोग ही रहा है तथा साथ ही साथ उन समस्त विकतताओं के बीच वह अपने वैयक्तितत्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है। नयी कविता की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं —

प्रथम आधुनिकता में विश्वास, द्वितीय नूतन कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है उसमें वर्णनों और कुंठाओं की अपेक्षा मुक्त

यथार्थ का समन्वय । तीसरा, मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह अपने विवेक के आधार पर करना ही अधिक तर्कसंगत भावना, चौथा समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करना । किन्तु यह विचारणीय है कि यहां आधुनिकता का अर्थ किस परिप्रेक्ष्य में लिया गया है । समाधानस्वरूप, आधुनिकता का अर्थ विकृतियों से न होकर उसके उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है जो विवेचना और विवेक के बल पर हमें प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवीय दृष्टि, यथार्थ की दृष्टि देती है ।

भाव-बोध की दृष्टि से नूतन कविता का जीवन के प्रवाह में उसकी सन्दर्भयुक्त अभिव्यक्ति ही उसका भाव-बोध रूप सौन्दर्य है । नयी कविता का सौन्दर्यवाद बौद्धिक अनुभूति और बुद्धिवाद को भी स्वीकार करता है ।

नयी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां पांच श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं -- प्रथम प्रवृत्ति यथार्थवादी अहंवाद की है जिसमें यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ कवि अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानकर उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्ति देता है । दूसरी प्रवृत्ति व्यक्ति-अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जिसमें आत्मानुभूति की समस्त संवेदना का सायास रखने का प्रयत्न किया जाता है । तीसरी प्रवृत्ति आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि है जिसमें वर्तमान कटुताओं और विषमताओं के प्रति कवि की व्यंग्यपूर्ण भावनायें व्यक्त हुई हैं । चौथी प्रवृत्ति ऐसे कवियों की है जिनमें रस परिपाक और रोमांच के साथ-साथ आधुनिकता और समसामयिकता का प्रतिनिधित्वसम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हुआ है । पांचवी प्रवृत्ति उस विभ्रमयता और अनुशासित शिल्प की है जो आधुनिकता के सन्दर्भ में होते हुए भी समस्त यथार्थ को केवल बिम्बात्मक रूप में ग्रहण करता है।

यद्यपि सरस्वती के परिप्रेक्ष्य में देखने से यह ज्ञात होता है कि प्रयोगवादी और नयी काव्यधारा का प्रवाह उतना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर

नहीं होता जितना सुस्पष्ट रूप से काव्य की अन्य पूर्ववर्ती धारायें दृष्टिगोचर होती हैं तथापि प्रयोगवाद और नयी कविता की स्थिति का आभास अन्तर्धाराओं के रूप में देखा जा सकता है ।

कुल मिलाकर कविता के क्षेत्र में सरस्वती का महान योगदान है । छायावाद से लेकर प्रगतिवाद के प्रारम्भिक अवधि तक की सम्पूर्ण हिन्दी काव्य-यात्रा सरस्वती में मूर्तिमान हो उठी है ।

सरस्वती में प्रकाशित आठवें दशक की कविताओं में कहीं प्रकृति-चित्रण, कहीं राष्ट्रप्रेम, कहीं मानव मन की कुंठा, संत्रास, निराशा आदि का चित्रण मिलता है साथ ही साथ शैली में भी विविधता परिलक्षित होती है क्योंकि कहीं छन्दबद्ध कवितायें प्राप्य हैं तो कहीं छन्दमुक्त । वस्तुत: सरस्वती की ये कवितायें हिन्दी साहित्य की प्रौढ़तम कविताओं में रखी जा सकती हैं ।

नयी कविता से सम्बन्धित कवितायें सरस्वती में प्रकाशित हुईं जिनमें कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है । इन कवियों में श्री गिरजा कुमार माथुर, जगदीशगुप्त, केदारनाथ सिंह, शमशेरबहादुर सिंह, अज्ञेय, गजानन मुक्ति बोध, कुंवर नारायण, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रभाकर माचवे, मदन-वात्स्यायन, नेमिचन्द्र जैन, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि उल्लेखनीय हैं ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि रीतिकाल, छायावाद-रहस्यवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नयी कविता सभी से सम्बन्धित कवितायें समय-समय पर जन-सामान्य के समक्ष सरस्वती के माध्यम से प्रस्तुत होती रहीं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के काव्य क्षेत्र की उन्नति का श्रेय 'सरस्वती पत्रिका' को है जिसके माध्यम से हमें उत्कृष्ट कोटि के कवि तथा उत्कृष्ट साहित्य प्राप्त हुआ ।

इसी परिप्रेक्ष्य में सरस्वती पत्रिका में कहानी के क्षेत्र को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। क्योंकि काव्य, कहानी एवं निबन्ध ये तीनों ही शब्द भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होने पर भी अन्योन्याश्रित हैं। रथ जिस प्रकार चक्र्के पर आधारित होता है उसी प्रकार हिन्दी साहित्यरूपी रथ कविता, कहानी एवं निबन्ध रूपी त्रिकोण पर आधृत है।

हिन्दी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली सबसे पहली रचना `रानी केतकी की हानी` है जो सन् १८०३ में लिखी गई। इसके अनन्तर राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के `राजाभोज का सपना`, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के `अद्भुत अपूर्व स्वप्न` का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कहानी की सी रोचकता मिलती है। आधुनिक ढंग की कहानियों का आरम्भ आचार्य शुक्ल ने सरस्वती के प्रकाश से माना है। प्रारम्भिक कहानियों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है। पहला `इन्दुमति` किशोरीलाल गोस्वामी (१६००), दूसरा `गुलबहार` किशोरीलाल गोस्वामी (१६०२), तीसरा `प्लेट की चुड़ैल` मास्टर भगवानदास (१६०२), चौथा `ग्यारह वर्ष का समय` रामचन्द्रशुक्ल (१६०३), पांचवा `पंडित और पंडितानी` गिरिजादत्त बाजपेयी (१६०३), छठां `दुलाईवाली` बंगमहिला। ये सभी कहानियां सरस्वती में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार हिन्दी के प्रथम कहानीकार किशोरीलाल गोस्वामी ही सिद्ध होते हैं।

इसके अनन्तर हिन्दी में अनेक उच्चकोटि के लेखकों - जयशंकरप्रसाद, प्रेमचन्द, चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, विश्वम्भरनाथ कौशिक, सुदर्शन, पाण्डेय बेचनशर्मा `उग्र`, आचार्य चतुरसेनशास्त्री आदि का आविर्भावकाल आता है। इसी सन्दर्भ में जैनेन्द्रकुमार, श्री ज्वालादत्त शर्मा, जनार्दनप्रसाद झा `द्विज`, श्री चंडीप्रसाद `हृदयेश`, श्री गोविन्दवल्लभपन्त, सियारामशरण गुप्त, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन `अज्ञेय,` इलाचन्द जोशी, उपेन्द्रनाथ `अश्क`,

श्रीयशपाल, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि कहानीकार उल्लेखनीय हैं जिनकी कहानी सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई ।

हास्य-रस के कहानीकार में श्री जी० पी० श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव प्रसाद गौण, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द, मिर्जाअजीमबेग, चगुताई और जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

हिन्दी कहानी साहित्य के अभिवृद्धि महिला लेखिकाओं का भी पर्याप्त योगदान रहा यथा -- सुभद्राकुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवानी देवी, तेजरानी पाठक, उमादेवी मित्रा, सत्यवतीमलिक, कमलादेवी चौधरी रानी, महादेवीवर्मा, चन्द्रप्रभा, तारापाण्डेय, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पामहाजन, विद्यावती शर्मा आदि हैं ।

हिन्दी साहित्य में सन् १९५० से नयी कहानी का प्रादुर्भाव हुआ। नयी कहानी के कहानीकारों को विषयगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न वर्गों में रखा जा सकता है । प्रथम वर्ग में राजेन्द्र यादव, मोहन-राकेश, धर्मवीर भारती, निर्मला वर्मा, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, रमेश वक्षी, शैलेश मटियानी, नरेशमेहता, मन्नूभंडारी आदि कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कथाओं की कथावस्तु में मध्यमवर्गीय शहरी व्यक्ति के जीवन की आन्तरिक परिस्थितियों का चित्रण है । इनका दृष्टिकोण मुख्य रूप में यथार्थवादी है तथा लक्ष्य यौन-विकृतियों, कुंठाओं, अभावों आदि को चित्रित करना था । दूसरे वर्ग के अन्तर्गत फणीश्वरनाथ `रेणु`, राजेन्द्रअवस्थी तृषित, शिव-प्रसाद सिंह, शेखरजोशी, आदि कहानीकार हैं जिन्होंने आंचलिक पृष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है । तीसरे वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जिन्होंने हास्य-व्यंग्यमयी कहानियों की रचना की । इन लेखकों में केशवचन्द्र वर्मा, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शान्ति

मेहरोत्रा उल्लेखनीय हैं। चतुर्थ वर्ग में कृष्णचन्द, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त उल्लेखनीय हैं जिन्होंने व्यापक प्रगतिशील दृष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी कहानियों में रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कहानीकार भी हैं जिन्हें हम किसी वर्ग विशेष में नहीं रख सकते जिनमें विष्णुप्रभाकर तथा सत्यपाल के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम प्रत्यक्षत: कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में कहानी की प्रथम कही जाने वाली कहानी तथा अन्य अनेकों उल्लेखनीय कहानियाँ सरस्वतीपत्रिका में ही प्रथमबार प्रकाशित हुई जिनसे उन्हें तथा उनके रचनाकारों को लोकप्रियता प्राप्त हुई। 'सरस्वतीपत्रिका' की इस अमूल्य देन को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

कहानी के अनन्तर प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में आधुनिक युग की देन स्वरूप निबन्ध-साहित्य एवं समालोचना पर प्रकाश डाला गया है। कालक्रमानुसार भारतेन्दु युग से ही निबन्ध साहित्य का विकास माना जाता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र स्वयं भी उच्चकोटि के निबन्धकार होने के साथ-साथ इनके अनेकानेक लेख प्रकाशित हुए। इन लेखों का विषय कहीं तो समाजशास्त्र से था, कहीं राजनीति से सम्बन्धित था, और कहीं धर्म के विषय पर इनकी लेखनी चली थी। यही नहीं उपर्युक्त विषयों पर जो भी लेख लिखे गये उन सबकी भाषा अधिकारपूर्ण ही रही। इनके निबन्ध उनके द्वारा ही सम्पादित (कवि सुधा), हरिश्चन्द्र मैगजीन, तथा हरिश्चन्द्र चन्द्रिका से प्रकाशित होते थे। उनके अतिरिक्त उत्कृष्ट निबन्धकारों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमघन, राधाकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी, इत्यादि उल्लेखनीय रहे हैं।

किन्तु द्विवेदी युग में आत्म-व्यंजना प्रधान अनौपचारिक निबन्धों

की परम्परा प्रचलित हुई । इस युग के निबन्ध लेखकों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, मिश्रबन्धु, सरदारपूर्ण सिंह, बाबूश्यामसुन्दरदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । द्विवेदी जी के अधिकांश निबन्धों में भारतेन्दुयुगीन निबन्धकारों की सी वैयक्तिकता, रोचकता तथा सजीवता का अभाव रहा । इसी कारण उनके लेख `बातों का संग्रह`, या `सूचनात्मक गद्य` के ही प्रतीक बने रहे । इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं पाण्डित्यपूर्ण होने के कारण द्विवेदी जी युग प्रवर्तक एवं युगनिर्माता, आचार्य, पहले हैं, साहित्यकार तदुपरान्त।

द्विवेदी युग के उपरान्त काव्य क्षेत्र में छायावादी युग का आविर्भाव होता है । गद्य और विशेष रूप से आलोचना के क्षेत्र में इसे शुक्लयुग की संज्ञा दी जा सकती है । इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र-शुक्ल (१८८४-१९४१ ई०) है । अपनी `चिन्तामणि` में शुक्ल जी नये विचार, नयी शैली लेकर उपस्थित हुए । `कविता क्या है`, `साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद` रसात्मकबोध इत्यादि इनके साहित्य समीक्षात्मक तथा मनोवैज्ञानिक उत्कृष्ट निबन्ध के उदाहरण हैं ।

शुक्लयुग के अनन्तर शोधप्रबन्ध में शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्धों पर प्रकाश डाला गया है । शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्धकारों में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, रामधारी सिंह दिनकर, वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० नगेन्द्र, डा० विनयमोहन शर्मा, रामवृक्षबेनीपुरी, सच्चिदानन्द वात्स्यायन, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, यशपाल, प्रकाशचन्द्रगुप्त, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, डा० सत्येन्द्र, डा० देवराज उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, भगवतशरण उपाध्याय इत्यादि हैं ।

शुक्लोत्तर युग के सबसे महत्त्वपूर्ण निबन्धकार आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों की आधारभूमि सांस्कृतिक रही है। इनकी दृष्टि में जीवन ही एक प्रत्येक सांस्कृतिक समस्या का पहलू है। द्विवेदी जी के निबन्धों में सांस्कृतिक-परम्परा तथा आधुनिक जीवन-बोध का अपूर्व सामन्जस्य प्राप्त होता है। वे इतिहास, पुराण आदि का वृत्त उपस्थित करते हुए उसे समसामयिकता से मिला देते हैं। उनके निबन्ध जीवनोन्मुखता, मानवता का सुमधुर सन्देश देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं सरस्वती पत्रिका के प्रारम्भिक काल से ही निबन्ध प्रकाशित होते रहे हैं। सन् १६०० से लेकर १६८० तक सरस्वती पत्रिका प्रकाशित हुई जिसमें निबन्ध-साहित्य से सम्बन्धित लेख प्रकाशित हुए। सरस्वती में प्रकाशित निबन्धों के निबन्धकारों में मुख्यरूप से बाबूराधाकृष्णदास, कीर्तिप्रसाद खत्री, पं० श्यामबिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र, बाबूश्यामसुन्दरदास, राजर्षिपुरुषोत्तमदासटण्डन, श्री कामताप्रसाद गुरु, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, बाबू जगन्मोहन वर्मा, श्री सरदारपूर्णसिंह, बालकृष्णभट्ट, पं० गंगानाथ झा, डा० बेनीप्रसाद, श्री हीरानन्दशास्त्री, श्री सन्तराम, श्री राधाकृष्ण गोस्वामी, श्रीयुत एदविन ग्रीव्स, श्री गौरीशंकरहीराचन्द ओझा, बाबू बृजनन्दन सहाय, लालाहरदयाल, बाबू काशीप्रसाद जयसवाल, श्री गोविन्दवल्लभपन्त, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री जनार्दनभट्ट, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, माधवराव सप्रे, सालग्राम शास्त्री, प्रो० अमरनाथ झा, डा० रामप्रसाद खत्री, पं० देवीदत्त शुक्ल, पं० रामदहिन मिश्र, द्वारकाप्रसाद मिश्र, गिरिजाशंकर बाजपेयी, वियोगीहरि, श्री राहुल सांकृत्यायन, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० जवाहरलाल नेहरु, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, महादेवी वर्मा, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, देवीप्रसाद शुक्ल, पं० वेंकटेश्वर नारायण तिवारी, श्री इन्द्रविद्या वाचस्पति, श्री सम्पूर्णानन्द, पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी, श्री परिपूर्णानन्द, पं० माखनलाल चतुर्वेदी इत्यादि हैं।

द्विवेदी युग में यद्यपि समालोचना में वह प्रौढ़ता नहीं आ सकी जो उसके उत्तरवर्ती शुक्लयुग में स्वभावत: दिखाई पड़ती है । द्विवेदी युग में समालोचना के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों पक्षों का विवेचन किया गया। सैद्धान्तिक पक्ष रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदायों से अनुप्राणित था तथा दूसरी ओर पाश्चात्य जगत में विकसित होने वाली व्याख्यात्मक समालोचना का भी पर्याप्त अंश था । द्विवेदी युग की समालोचना की जागरूकता, वाद-विवाद की प्रवृत्ति, भाषा संशुद्धि आदि मुख्य विशेषतायें थीं । द्विवेदी युग के उपरान्त शुक्लयुग आता है । शुक्ल युग के समालोचकों में श्री गुलाबराय, पं० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख',पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० रामकुमार वर्मा मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं । इस युग को समालोचना का विकास काल माना गया है । शुक्लयुग का निर्धारण काल १६२१-१६४० तक रखा गया है । इस युग की समालोचना में भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा तत्वों का सुन्दर समन्वय है । इस युग की समालोचना एक प्रकार से द्विवेदी युग का ही विकसित रूप है जिसको स्वतन्त्र विधान में प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य शुक्ल जी को है । इस विकास काल के अन्य समालोचकों में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्री गणेशशंकर द्विवेदी, श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पं० परशुराम चतुर्वेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० भगीरथ मिश्र, श्री राहुल सांकृत्यायन, डा० रामरतन भटनागर, पं० रामदहिन मिश्र, डा० सत्येन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं ।

समालोचना में शुक्लयुग के उपरान्त शुक्लोत्तर युग आता है जिसे समालोचना का प्रसारकाल कहा जाता है । शुक्लोत्तर युग में छायावादी काव्य के कवियों की समीक्षा तथा उनकी समालोचनायें होती थीं जिनमें प्रसाद, पन्त, निराला आदि मुख्य कवि उल्लेखनीय हैं । भक्तिकाल के कवियों की समीक्षा तथा समालोचनायें भी इस युग में प्रकाश में आती हैं ।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता है। पहला १६५० ई० तक के उपन्यास जो फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित हैं। दूसरा १६५० से १६६० तक के उपन्यास जो आधुनिकता विचारधारा से प्रभावित है तथा तीसरा साठोत्तरीय उपन्यास। प्रेमचन्द जहाँ समाज के साथ एकीकृत होने के प्रश्न को अधिक महत्त्व देते हैं वहीं पर जैनेन्द्र व्यक्ति की लुप्त होती हुई पहचान को उभार कर रखते हैं। इस युग के उपन्यासों में `कल्याणी`, `सुखदा`, विवर्त`, `व्यतीत`, `जयवर्द्धन इत्यादि।

जैनेन्द्र जी के उपरान्त अज्ञेय जी का नाम स्मरणीय है। इनका `शेखर एक जीवनी` उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य में आधुनिकता की तरफ एक सफल प्रयास रहा। इसी क्रम में इलाचन्द जोशी महोदय का नाम भी उल्लेखनीय है। वस्तुत: वह फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित थे एवं इनके उपन्यासों में `सन्यासी`, `पर्दे की रानी`, `प्रेत और छाया`, `मुक्तिपथ`, `जहाज का पंछी`, `ऋतुचक्र` आदि हैं।

प्रेमचन्द के अनन्तर उपन्यासकारों में यशपाल के मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित `अमिता और दिव्या`, `मनुष्य के रूप`, `झूठ-सच` अविस्मरणीय हैं।

प्रेमचन्द की परम्परा में भगवतीचरण वर्मा (टेढ़े मेढ़े रास्ते) इत्यादि उपन्यास, उपेन्द्रनाथ अश्क (गिरती दीवारें) इत्यादि उपन्यासकार आते हैं।

नवयुग के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर, वृन्दावनलाल वर्मा इत्यादि उल्लेखनीय हैं। किन्तु इसी परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक उपन्यासकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में ग्रामांचल उपन्यासों को आंचलिक कहकर सीमाबद्ध कर दिया गया है। किन्तु फिर भी फणीश्वररेणु, नागार्जुन, उदयशंकर भट्ट, रांगेय राघव, भैरवप्रसादगुप्त उल्लेखनीय हैं।

धर्मवीर भारती और देवराज दोनों ही उपन्यासकार मनोविज्ञान के प्रमुखता देने वाले हैं। इसी प्रकार सामाजिक चेतना के उपन्यासकारों में लक्ष्मीनारायण, राजेन्द्र यादव आदि हैं। प्रयोगशील उपन्यासों की रचना करने वाले उपन्यासकारों में धर्मवीरभारती, प्रभाकर माचवे, गिरिधरगोपाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सैना आदि उल्लेखनीय हैं। आधुनिक उपन्यास जिनमें यन्त्रीकरण, अस्तित्ववादी चिन्तन के फलस्वरूप आधुनिकता की स्थिति का जो चित्रण किया गया है उनमें नरेश मेहता, मोहन-राकेश, राजकमल चौधरी, मन्नूभंडारी, शिवानी, भीष्मसहानी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, मधुकर गंगाधर इत्यादि नाम अविस्मरणीय हैं।

उपन्यास के अनन्तर हिन्दी साहित्य में नाटक का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। हिन्दी नाटक रंगमंच और जीवन के यथार्थ से जुड़कर नयी दिशा की ओर उन्मुख हुआ। भारतेन्दु जी के उपरान्त जयशंकरप्रसाद जी को दिशा प्रवर्त्तक नाटककार कहा जा सकता है। उपेन्द्रनाथ अश्क प्रथम नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांस के कटघरे से निकालकर किसी सीमा तक आधुनिक भावबोध के साथ समन्वित किया। अश्क जी के उपरान्त नाटककारों में विष्णुप्रभाकर उल्लेखनीय हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ऐतिहासिक नाटककार हैं। आधुनिक भावबोध को रूपायित करने वाले नाटककारों में धर्मवीर भारती, डा० लक्ष्मीनारयणलाल, मोहन राकेश, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण लाल, हरिकृष्णप्रेमी, गोविन्दवल्लभपन्त, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्नूभंडारी, नरेश मेहता इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

नाटकों के बाद नाटकों के ही अंगस्वरूप एकांकी का अस्तित्व है।

१९३६ ई० में दिल्ली में और १९३८ में लखनऊ में आकाशवाणी के अस्तित्व में आने के कारण पहले उर्दू लेखकों और फिर १९४० के लगभग हिन्दी लेखकों को भी रेडियो पर एकांकी प्रसारण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।

एकांकी के सन्दर्भ में डा० रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, अश्क, सेठगोविन्ददास आदि एकांकी लेखन का शुभारम्भक प्राय: १९३५-३६ के लगभग कर चुके थे । किन्तु इसी सन्दर्भ में एकांकीकारों में विष्णुप्रभाकर के आदर्शवादी, सांस्कृतिक चेतनायुक्त, नैतिक मूल्यों और मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर सामाजिक एकांकियों की रचना की ।

उपन्यास साहित्य प्रतिबिम्ब सरस्वती पत्रिका में पं० ठाकुरदत्त मिश्र, निशीथ कुमार राय आदि के मौलिक एवं अनुदित उपन्यासों से होता है । सरस्वती में प्रकाशित नाटक हरिदत्त भट्ट का `गिरमिट` तथा एकांकी में योगेन्द्रनाथ शर्मा की `कारागार में मुक्ति` ऐतिहासिक नाटक प्रकाशित हुए । प्रो० चन्द्रप्रकाश वर्मा के `स्वर्ग के शाप` आदि एकांकी, श्री धर्मवीर के `भारत विजय` एकांकी, श्री मधुकर खरे का `अधिकार रक्षा`, जितेन्द्रकुमार की `गिरती दीवारें`, श्री चन्द्रप्रकाश शर्मा का `यमसावित्री`, कु० विपुलादेवी का `लोकेश्वर शनि`, श्री रामेश्वरदयाल दुबे `अहिल्या`, श्री शम्सुद्दीन का `महावीर का निष्क्रमण` उल्लेखनीय हैं ।

निष्कर्षत: हम देखें तो यह ज्ञात होगा कि सरस्वती पत्रिका एक ऐसी सर्वमान्य तथा लोकप्रिय पत्रिका थी जिसे जन-सामान्य भी पढ़ सकता था तथा उससे अपना ज्ञानवर्द्धन भी कर सकता था । सरस्वती पत्रिका ही वह पत्रिका है जिसने हमारे सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को एकबद्ध किया तथा हमें अपने माध्यम से कविता, लेख, कहानी, निबन्ध तथा अन्य गद्य विधाओं से अवगत कराया । इस प्रकार हमें सरस्वती पत्रिका का आभारी रहना चाहिए, जिसने हमें इतने महान् लेखक और कवि तथा उत्कृष्ट साहित्य से अवगत कराया । हम सरस्वती पत्रिका के ऋणी हैं । `सरस्वती` के आदर्श से परवर्ती पत्रिकाओं `मर्यादा` `प्रभा` `चांद`, `माधुरी` आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं ने भी बहुत कुछ सीखा । इसलिए सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य एवं पत्रकारिता पर उसकी छाप बैठ गई ।

सहायकग्रन्थ सूची

(परिशिष्ट)

परिशिष्ट

१- प० बालकृष्णभट्ट, व्यक्तित्व और कृतित्व, लेखक डा० मधुकर भट्ट, बालकृष्ण प्रकाशन, वाराणसी ।

२- पत्रकार प्रेमचन्द और हंस, डा० रत्नाकर पाण्डेय, राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली- ५१ ।

३- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, लेखक - रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना ।

४- आधुनिक हिन्दी गद्य, डा० खेलचन्द आनन्द सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली- ११०००६ ।

५- हिन्दी साहित्य का विकास, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, अध्यक्ष ,हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-३, लोक भारती प्रकाशन, १५- ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद -१ ।

६- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अध्यक्ष हिन्दी विभाग (१६६४), अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज़, देहली ।

७- हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ (पारिभाषिक शब्दावली)
सम्पादक : धीरेन्द्रवर्मा (प्रधान), ब्रजेश्वर वर्मा, धर्मवीर भारती,
रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवंश (संयोजक) ।
वाराणसी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड

८- हिन्दी समाचार जगत, शिक्षा-मन्त्रालय, नई दिल्ली ।

९- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
लेखक- डा० रामकुमार वर्मा (१९३८), इलाहाबाद ।

१०- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक - डा० रामकुमार वर्मा
इलाहाबाद (१९३९) ।

११- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक - डा० रामकुमार
वर्मा, संवत् ७५०-१७५०, इलाहाबाद ।

१२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक - रामनारायन लाल
प्रयाग (१९४८), १९५८ चतुर्थ संस्करण ।

१३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक रामनारायनलाल,
प्रयाग १९५४ ।

१४- हिन्दी साहित्य का अतीत, लेखक - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

१५- हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लेखक- नन्ददुलारे वाजपेयी,
इण्डियन बुक डिपो, लखनऊ ।

१६- हिन्दी साहित्य एक अध्ययन : लेखक - रामरतन भटनागर,
किताबमहल (१९४८), इलाहाबाद ।

१७- हिन्दी साहित्य सम्मेलनपत्रिका, वाल्यूम १ से ८ और १० ।

१८- हिन्दी समाचारपत्र निर्देशिका (१९५६), हिन्दी प्रेस ईयर बुक,
लेखक - बनकल लाल ओझा ।

१६- हिन्दी समाचारपत्र सूची (१८२६-१६२५),
लेखक- बनकल लाल ओभा, हैदराबाद ।

२०- हिन्दी साहित्य की रूपरेखा,
लेखक - सूर्यकान्त (१६४०), लाहौर

२१- हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास
लेखक - यदुनन्दन मिश्र, कलकत्ता (१६६१) ।

२२- हिन्दी साहित्य कुछ विचार
लेखक - प्रेमनारायन टण्डन

२३- हिन्दी में निबन्ध साहित्य
(द्वितीय संस्करण), लेखक- जनार्दन स्वरूप अग्रवाल,
साहित्य भवन (१६५३), इलाहाबाद ।

२४- हिन्दी साहित्य की भूमिका : लेखक - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी,
हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, बम्बई (१६४०)

२५- हिन्दी साहित्य की भूमिका,
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (१६५०-१६५४, १६५७),
कार्यालय- बम्बई ।

२६- हिन्दी निबन्ध
लेखक - यज्ञदत्त एवं रतनलाल शर्मा

२७- हिन्दी साहित्य की रूपरेखा,
लेखक - डा० हरदेव बाहरी (१६५५)
प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, बनारस ।

२८- हिन्दी साहित्य की रूपरेखा

लेखक- डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग

२९- हिन्दी साहित्य का इतिहास,

लेखक - डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

३०- हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक - पं० रामचन्द्र शुक्ल,(प्रकाशक)काशी नागरी प्रचारिणी सभा

३१- हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक - डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (१९५६)

प्रकाशक - मालवीय पुस्तक भवन, लखनऊ

३२- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास

लेखक - पाण्डेय, बाजपेयी (संस्करण)

३३- हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक - मिश्रबन्धु

प्रकाशक - गंगाग्रन्थागार (१९९९ वि० सं०), लखनऊ

३४- हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक - रामशंकर शुक्ल रसाल

प्रकाशक - रामदयाल अग्रवाल (१९३१), इलाहाबाद

३५- हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक- ब्रजरतनदास

प्रकाशक - हिन्दी साहित्य कुटीर,२००५ वि० सं०, बनारस।

३६- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास
रामबहोरी, भगीरथ मिश्र

३७- हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास
लेखक - ग्रियर्सन

३८- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
लेखक - आर० आर० भटनागर
प्रकाशक- इलाहाबाद प्रेस, इलाहाबाद

३६- सरस्वती पत्रिका, हीरक जयन्ती विशेषांक
(१६००-१६५६)
प्रकाशक - इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

४०- सरस्वती पत्रिका (१६०० से १६८० तक)
प्रकाशक - इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद